प्रसीडेन्ट
देवराज सुराणा

सेक्रेट्री
अभयराज नाहर

श्री जैनदिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाज़ार, ब्यावर (राज०)



मुद्रक:—
पं० बालकृष्ण उपाध्याय
श्री नारायण प्रिन्टिंग प्रेस, ब्यावर।

सहायकगण की शुभ नामावली



दिवाकर दिव्य ज्योति के नाम से स्व० श्री जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित रत्न मुनि श्री चौथमलजी महाराज के प्रभावशाली व्याख्यान सीरिज रूप में प्रकाशित कराने के लिए निम्नलिखित महानुभावों ने सहायता देकर अपूर्व लाभ लिया, इसके लिए सहर्ष धन्यवाद हैं:—

रुपये:—

५०१) श्रीमान् सेठ सिरेमलजी नन्दलालजी पीतलिया, सिहोर की छावनी

५००) „ „ गुलराजजी पूनमचन्दजी, मदनगंज

३००) „ „ चौथमलजी सुराणा, नाथद्वारा

२५०) { „ „ कुंवर मदनलालजी संचेती, ब्यावर
„ „ सेठ जीवराजजी कोठारी, नसीराबाद }

२००) „ „ शभूमलजी गंगारामजी बंबई फर्म की तरफ से श्रीमान् केवलचन्दजी सा० चोपड़ा, सोजत सीटी

१५०) „ „ राजमलजी नन्दलालजी भुसावल

१५०) „ हस्तीमलजी जेठमलजी, जोधपुर

१२५) „ जिनगर अमरचन्दजी इन्दरमलजी गौतमचन्द जैन, गंगापुर

१२५) श्रीमान् सेठ कस्तूरचन्दजी पूनमचन्दजी जैन गंगापुर
१२५) " ठेकेदार तोलारामजी भंवरलालजी, उदयपुर
१२५) " " धनराजजी फतहलालजी, "
१२१) " सेठ माणकचन्दजी छगनलालजी गोटी, जयपुर
१०१) " जिनगर नेजमलजी रोशनलालजी, गंगापुर (मेवाड़)
१००) " सेठ लालचन्दजी पुखराजजी मुणोत, सिकन्दराबाद

दो शब्द

भूमण्डल पर बसे मानव जगत में वाणी का बड़ा ही महत्त्व-पूर्ण स्थान है। वाणी का बल भी एक बल है, और वह बल वह है जो जनता के मनः प्रदेश पर अखण्ड साम्राज्य स्थापित करने के लिए संसार की दूसरी तूफानी ताकतों से कहीं अधिक महत्त्व-रखता है।

जब जन-समूह में सदाचार की सुगन्ध से महकता हुआ महा पुरुष बोलने लगता है, तो ऐसा मालूम होता है, मानो अमृत का झरना बह चला हो। सब ओर शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जाता है और जनता के मन के कण कण में दैवी भावनाओं का मधुर स्वर झंकृत हो उठता है। महान् आत्माओं की वाणी अन्तर्जगत की पवित्रता का उज्ज्वल प्रतीक होती है। इस बात को ध्यान में रखकर एक आचार्य कहता है—'सहस्रेषु च पण्डितः, वक्ता शतसहस्रेषु।' अर्थात् हजार में एक पण्डित होता है, और लाख में कहीं एक वक्ता मिलता है। वक्ता, और वह भी योग्य वक्ता होना, वस्तुतः कुछ साधारण बात नहीं है।

श्रद्धेय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज अपने युग के एक महान् विशिष्ट प्रवक्ता थे। आपकी वाणी में सुधारस छल-कता था। जिसने भी एक बार आपका प्रवचन सुना, वह फिर कभी भूला नहीं। आप अपने श्रोताओं को मंत्र मुग्ध से कर देते थे। राज महलों से लेकर झौंपड़ियों तक में आपकी वाणी ने वह स्थान पाया कि जनता आश्चर्य-चकित हो उठी। आपकी वाणी

में वह जादू था कि बच्चा, बूढ़ा, क्या बालक, क्या तरुण, क्या पण्डित क्या साधारण अबोध-जन सभी पर अपना प्रभाव डालता था और उपस्थित जन समूह को एक बार तो सद्भावना की पवित्र तरंगों में दूर तक बहा ही ले जाता था। आप जहां भी जाते वहीं, आपके उपदेशों के प्रभाव से जनता में जागृति की एक नई लहर, एक नई चहल पहल पैदा कर देते थे।

प्रस्तुत 'दिवाकर दिव्य ज्योति' नामक पुस्तक जैन दिवाकरजी के उन्हीं प्रभावशाली प्रवचनों का एक सुन्दर संग्रह है। पं० मुनि श्री प्यारचन्द्रजी महाराज की गुरुभक्ति का यह मधुर फल, जनता की आध्यात्मिक भूख को शान्त करने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। मैं मुनि श्री प्यारचन्द्रजी को इसके लिए धन्यवाद दूंगा कि उन्होंने श्री दिवाकरजी की श्रोतृवृन्द पर बरसती हुई वचन रूप दिव्य किरणों को लेखबद्ध कराया, जिससे सर्व साधारण जनता युग युगान्तर तक प्रकाश प्राप्त करती रहेगी।

श्री दिवाकरजी महाराज की व्याख्यान शैली सहज, सरल और सुबोध है। वे बहुत गहराई में न उतर कर, जनता के हृदय को युगानुकूल स्पर्श करते हुए चलते हैं। उनके व्याख्यानों का मूलाधार जनता में नैतिक भावनाओं को उद्दीप्त करना है। वे सीधी सादी भाषा में एक छोटी सी बात इस ढङ्ग से कह जाते हैं, जो कुछ देर तक श्रोता या पाठक के मन में गूञ्जती रहती है। प्रस्तुत संग्रह में इस शैली का चमत्कार पाठकों को यत्र तत्र सर्वत्र मिलेगा। मैं आशा करता हूँ, कि जैन अजैन सभी धर्म बन्धु इस समयोपयोगी सुन्दर ज्योति से, अन्धकार से भरे जीवन में उचित प्रकाश प्राप्त करेंगे।

मदनगंज
ता १-१२-५१

—उपाध्याय अमर मुनि

प्रकाशकीय-निवेदन

प्रातः स्मरणीय जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज "प्रसिद्ध वक्ता" के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके व्याख्यान अत्यन्त रोचक, सरस, सरल और नैतिक एव धार्मिक उपदेशों से परिपूर्ण होते थे। लाखों श्रोताओं ने उनकी पवित्र वाणी सुनकर अपना जीवन कृतार्थ किया है। खेद है तारीख १७-१२-५१ को कोटा नगर मे गुरुदेव स्वर्ग सिधार गये! हमारे लिए यह बड़े से बड़े दुर्भाग्य की बात थी। गुरुदेव के कतिपय स्थानों के व्याख्यान संकेत लिपि द्वारा लिपि बद्ध करा लिये गये थे। उन्हीं व्याख्यानों को सम्पादित करवा कर आज "दिवाकर दिव्य ज्योति" के रूप में हम पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं।

"दिवाकर दिव्य ज्योति" का यह तीसरा प्रकाश का दूसरा संस्करण है। इसके अठारह भाग अभी तक प्रकाशित हो चुके हैं अगले कुछ प्रकाश भी सम्पादित होकर तैयार हो चुके हैं और आशा है कि पाठकों के कर-कमलों में उन्हें भी हम यथासंभव शीघ्र ही उपस्थित कर सकेंगे। गुरुदेव की यही एक स्मृति अवशेष रह गई है जिसके सहारे हम अपने जीवन को उन्नत और पवित्र बना सकते हैं। अतएव पूर्ण विश्वास है कि पाठक दिवाकर दिव्य ज्योति को उसी भाव से अपनायेंगे जिस भाव से उनके व्याख्यानों को अपनाते थे।

इन व्याख्यानों का सम्पादन पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल सम्पादन कला विशारद ने किया है। सम्पादित होने के पश्चात् साहित्य रत्न विद्वद्वर मुनि श्री प्यारचन्दजी महा० ने इनका आद्योपान्त सिंहावलोकन और आवश्यक संशोधन भी किये हैं। मुनि श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रधान शिष्य हैं, और प्रवचनों के रूप में उनकी स्मृति को बनाये रखने के लिये प्रयत्न-शील हैं। वास्तव में आपकी गुरु भक्ति इस युग में एक सुन्दर एवं आदर्श उदाहरण है जो प्रत्येक के लिए अनुकरणीय है। मुनि श्री ने तथा पं० वर्य मुनि श्री कस्तूरचन्दजी म०, शास्त्रज्ञ पं० मुनि श्री सहस्रमलजी महा०, प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री रामलालजी म०, पं० रत्न मुनि श्री प्रतापमलजी म०, पं० मुनि श्री हीरालालजी म०, सा० रत्न मुनि श्री मगनलालजी म०, मनोहर व्या० मुनि श्री चम्पालालजी म० सा० रत्न मुनि श्री केवलचन्दजी म०, सा रत्न मुनि श्री मोहनलालजी म., व्या० मुनि श्री हुक्मीचंदजी म, तपस्वी विजय राजजी म०, व्या० मुनि श्री वर्धमानजी म०, सेवा भावी मुनि श्री मन्नालालजी म०, प्रभाकर व्या० मुनि श्री चन्दनमलजी म०, सा० विशारद मुनि श्री विमलकुमारजी म० धर्म भूषण मुनि श्री मूलचन्दजी महा०, सा० रत्न अवधानी श्री अशोक मुनिजी म० आदि मुनिराजों ने इसमें संशोधन सिंहावलोकन प्रेरणा और उचित मार्ग दर्शन किया है। उसके लिए अतीव आभारी हैं। जिन उदार श्रीमंतों की आर्थिक सहायता से सम्पादन-प्रकाशन का कार्य आरम्भ और अग्रसर हो सका है, उनकी नामावली पृथक् दी जा रही है। उनके प्रति भी हम अत्यन्त आभारी हैं।

यहां इतना निवेदन कर देना अनुचित न होगा कि गुरुदेव के व्याख्यानों के प्रकाशन का कार्य विराट है और एक सीरीज के रूप में वह चालू हो रहा है। अतएव ज्योति की एक २ प्रति अपने वाचन में रखकर गुरु-भक्ति का परिचय तथा इस महान् कार्य में प्रेरक बनकर अनुष्ठान में आप सहायक होंगे। गुरुदेव की शिक्षाएँ जीवन को ऊँचा उठाने वाली और सारगर्भित हैं। आशा है पाठक इनसे पूर्ण लाभ उठाएँगे और इनका अधिक से अधिक प्रचार करने में सहायक होंगे। प्रकाशन में अगर किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो और सावधानी रखने पर भी कोई बात आगम से न्यूनाधिक हो गई हो तो विद्वज्जन सूचना करने की कृपा करें ताकि अगले संस्करण में संशोधन किया जा सके।

निवेदकः—

देवराज सुराणा, अध्यक्ष,

अभयराज नाहर, मन्त्री,

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार ब्यावर (राज०)

प्रस्तावना



जिन महापुरुष के प्रवचनों के सग्रह में से यह तृतीय पुष्प पाठकों के कर-कमलों में पहुँच रहा है, उनके सम्बन्ध में यहां कुछ अधिक लिखना न तो आवश्यक है और न प्रासंगिक ही। उन्हें स्वर्गासीन हुए अभी नौ वर्ष ही हुवे हैं। सन् १७-१२-१९५१ में ही कोटा में उन्होंने महाप्रस्थान किया था। अतएव शायद ही कोई ऐसा पाठक होगा जो उन महापुरुष से परिचित न हो। पचास वर्ष से भी अधिक की अपनी संयम-साधना के दीर्घ काल मे वे भारत के विभिन्न प्रदेशों में विचरे थे और अपने अद्भुत प्रभाव से जनसमाज को उन्होंने आकर्षित किया था। उनका व्यक्तित्व अनूठा था, उनके नेत्रों से करुणा का असाधारण प्रवाह वहता था, उनके हृदय में नवनीत की कोमलता थी, उनकी वाणी में सुधा की मधुरता थी, उनके समग्र जीवन व्यवहार में सरलता, संयतता और भद्रता का प्रशस्त सम्मिश्रण था। इन सब विशेषताओं के कारण कोटि-कोटि जनता के वे श्रद्धाभाजन बन सके थे। 'गुरुदेव' और 'जैन दिवाकरजी' के नाम से वे सर्वत्र प्रख्यात हुए। क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या राजा और क्या प्रजा, क्या नर और क्या नारी, सभी के लिए उनकी जीवनी आज आदर्श है। आज उनके पावन व्यक्तित्व की स्मृति मात्र से हृदय अधीर हो उठता है।

गुरुदेव प्रायः प्रतिदिन प्रातःकाल प्रवचन किया करते थे। प्रवचन करने की उनकी शैली अद्वितीय थी। उनके कोमल कण्ठ

में न जाने क्या जादू भरा था कि जो एक दिन भी उनके प्रवचन को सुन लेता, वही उनका पुजारी बन जाता था। मगर पुजापे की उन्हें चाह नहीं थी। कभी मांगते तो बस एक ही चीज मांगते थे—दान करो, शील पालो, तप करो, सुन्दर भावना रखो ! यही उनका चढ़ावा था। इस प्रकार जैन दिवाकरजी ने लेना नहीं, सिर्फ देना ही देना सीखा था। वे जब तक जीवित रहे, दुनिया को अनमोल भेंट, अपने प्रवचनों द्वारा भी और अपने जीवन-व्यवहार द्वारा भी, देते ही रहे।

जैन दिवाकरजी संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और फारसी भाषाओं के विद्वान् थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान काफी गहरा था। दूसरे साहित्य का अध्ययन भी विशाल था। फिर भी उनके प्रवचनों की भाषा बहुत सरल होती थी इतनी सरल कि अक्षरज्ञान से शून्य देहाती जनता भी उसे बिना किसी दिक्कत के सहज ही समझ लेती थी। भाषा की सरलता के साथ शैली की उत्तमता का बड़ा सुन्दर समन्वय हुआ था। वे जो कहते, बड़े मनोरंजक ढङ्ग से कहते थे। अपने श्रोताओं को जिस किसी भावना के रस में डुबाना चाहते, उसी में सफलता के साथ डुबा देते थे। उनका भाषण सचमुच बड़ा प्रभावशाली होता था।

गुरुदेव के उपदेशों से प्रभावित होकर सहस्रों नर-नारियों ने अपने जीवन का सुधार किया है। राजस्थान के राजाओं, जागीर-दारों और जमींदारों में उनका मान उतना ही था, जितना लग-भग जैन समाज में। यही कारण है कि गुरुदेव के प्रवचनों से प्रभा-वित होकर बहुतों ने जीवहिंसा का त्याग किया, शिकार खेलना छोड़ा, शराब पीना छोड़ा, मांसभक्षण छोड़ा, बहुतों ने बीड़ी-

सिगरेट आदि मादक द्रव्यों का परित्याग किया। इससे कोई यह न समझे कि जैन-दिवाकरजी उच्च वर्ग के ही गुरुदेव थे। नहीं तेली, धोबी, कुम्भार, रेगर, मोची आदि कौमों में भी उनका वैसा ही मान था। इन कौमों से सैकड़ों आदमियों ने गुरुदेव की संगति करके अपनी आदतों को सुधार कर अपने जीवन को उन्नत बनाया है। कहां तक कहें, वर्ण, जाति आदि के भेदभाव के बिना उन्होंने प्राणी मात्र पर असीम अनुकम्पा बरसाई है। उनके पावन प्रवचनों को सुनकर अगणित मनुष्यों ने मनुष्यता पाकर अपने को धन्य बनाया है।

गुरुदेव के प्रवचनों को संकेत लिपि में श्री धर्मपालजी मेहता द्वारा लिपिबद्ध कर लिया गया था। वही प्रवचन जैन तत्त्व मर्मज्ञ संपादन कला विशारद पंडित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल द्वारा सम्पादित होकर 'दिवाकर दिव्य ज्योति' नामक सीरीज के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं।

प्रत्येक प्रवचन आदिनाथ भगवान् ऋषभदेव की स्तुति से प्रारंभ होता है। गुरुदेव भक्तामर स्तोत्र के एक पद्य से अपना प्रवचन प्रारम्भ करते थे। उसी पर विवेचन करते हुए अपने अभीष्ट विषय पर जा पहुँचते थे और अन्त में प्रायः किसी चरित पर व्याख्यान करते थे। चरित का व्याख्यान भी उपदेशों से परिपूर्ण होता था। बीच-बीच में सुन्दर उपदेश फरमाते हुए चरित-व्याख्यान को वे अग्रसर किया करते थे। उनकी उसी मौलिक शैली को सुरक्षित रखते हुए व्याख्यानों का सम्पादन किया गया है।

गुरुदेव वक्ता होने के साथ कवि भी थे। उनके द्वारा विरचित पद्य साहित्य काफी विशाल है अकसर वे अपने प्रवचनों में

अपने ही रचे हुए पद्यों को सुनाया करते थे। इससे श्रोताओं का मन ऊबता नहीं था और वे अन्त तक एक रस होकर मुग्धभाव से प्रवचनों का श्रवण करते रहते थे। आवश्यकतानुसार संस्कृत प्राकृत और उर्दू आदि भाषाओं के पद्यों का भी समावेश होता था, जैसा कि पाठक इन प्रवचनों में पायेंगे।

जैन दिवाकरजी के प्रवचन सार्वजनिक होते थे। बहुजन-हिताय, बहुजनसुखाय, ही उनकी समस्त प्रवृत्तियों का मूल आधार था। अर्थात् अधिक से अधिक जनता की भलाई के लिए ही वे प्रयत्नशील रहते थे। जनसमाज का हित सदाचार से ही हो सकता है, अतएव सूक्ष्म तत्व विवेचना की अपेक्षा उनके प्रवचनों में सदाचार के प्रति प्रेरणा ही अधिक दृष्टिगोचर होती है। ज्ञान के साथ जीवन को ऊँचा उठाने वाले आचार की ओर ही वे अधिक ध्यान आकर्षित किया करते थे। संभवतः उनकी सूक्ष्म दृष्टि से भारतीय जनता की आचारहीनता-जो दिनोंदिन बढ़ती चली जाती है-छिपी नहीं रह गई थी और वे इस त्रुटी को दूर करना चाहते थे।

दिवाकरजी की सुधास्राविणी वाणी आज भी हमारे कर्ण-कुहारों में गूञ्ज सी रही है। हमें वर्षों तक उनकी वाणी को श्रवण करने का सौभाग्य मिला है। परन्तु जिन्हें उनकी वाणी सुनने का अवसर नहीं मिला है उनके तथा भविष्य में होने वाली प्रजा के हित के लिए उनके प्रवचनों का सुरक्षित रह जाना अतीव उप-योगी है। उनकी सुरक्षा में जिन-जिन महानुभावों ने योग प्रदान किया है, वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं और भावीप्रजा के आशी-र्वाद के भी पात्र बनेंगे।

व्यक्ति या असली व्यक्तित्व उसके आचार-विचार में ही है। महान् से महान् व्यक्ति का शारीरिक ढांचा तो वैसा होता है

जैसा साधारण से साधारण आदमी का। फिर भी दोनों में जो अन्तर है, वह उनके आचार विचार का ही है। इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो कहा जायगा कि गुरुदेव का असली व्यक्तित्व, उनका अन्तर्जीवन, उनके उच्च और पवित्र आचार-विचार में ही निहित था। दुर्भाग्य से आज हम उनके आचार को नहीं देख सकते, मगर सौभाग्य से उनके विचार आज भी इन प्रवचनों के रूप में हमें सुलभ हो रहे हैं। अतएव कहना चाहिए कि इन प्रवचनों के रूप में आज भी गुरुदेव जीवित हैं और जब तक पृथ्वीतल पर यह प्रवचन मौजूद रहेंगे गुरुदेव भी जीवित रहेंगे। प्रवचनों के शब्द-शब्द में गुरुदेव की आत्मा गूञ्ज रही है। इनके अक्षर-अक्षर में गुरुदेव समाये हुए हैं। यह सारे प्रवचन उनके अन्तर्जीवन के प्रतिबिम्ब हैं। यह उनके सच्चे स्मारक ही हैं। इनके प्रचार से बढ़कर गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदन करने का और कोई तरीका नहीं हो सकता। गुरुदेव की दिवंगत आत्मा को यह जान कर अवश्य सन्तोष होगा कि उनका आरम्भ किया हुआ कार्य आज समाप्त नहीं हो गया है। वे अन्तिम समय तक जो प्रचार करते रहे, वह आज भी जारी है।

अन्त में हम उन सब को जो गुरुदेव को 'अक्षर' रूप में जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं, अपनी मर्यादा में रहते हुए धन्यवाद देना चाहते हैं और आशा करते है कि गुरुदेव के भक्तगण विशेष रूप से दिलचस्पी लेकर गुरुदेव के उपदेशों को घर-घर में पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे, जिससे गुरुदेव का उपकार-कार्य यथावत् जारी रह सके और जगत् का कल्याण हो।

साहित्य रत्न केवलमुनि
साहित्य रत्न मोहनमुनि

आभार प्रदर्शन



पाठक महोदय,

यह संस्था अब तक साहित्य प्रकाशन के द्वारा आपकी जो सेवा कर सकी है उसका श्रेय इन सभी उदार चेता, साहित्य-रसिक, और धर्मप्रिय महानुभावों को है, जिन्होंने समय २ पर अपनी ओर से आर्थिक या अन्य प्रकार की सहायता देकर संस्था को इस योग्य बनाया है। अतएव उन सभी सहायकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इस संस्था के हितैषियों में श्रीमान् रायबहादुर सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी साहब कोठारी ब्यावर निवासी का स्थान सर्वोच्च है। आप इस संस्था के आश्रय दाता भी हैं। आपके मुख्य सहयोग से ही संस्था श्री जैन दिवाकरजी महाराज का बहुत-सा साहित्य प्रकाशन करने में समर्थ हो सकी है। श्री जैन दिवाकर स्मारक में भी आपका सराहनीय सहयोग रहा है। श्री जैन दिवाकरजी महा० के प्रति आपकी भक्ति आदर्श और अनुकरणीय रही है।

ब्यावर निवासी स्व० श्रीमान् सेठ कालूरामजी सा० कोठारी, श्रीमान् सेठ सरूपचन्दजी सा० तालेड़ा, श्रीमान् सेठ देवराजजी सा० सुराणा, श्रीमान् सेठ चान्दमलजी सा० टोडरवाल, श्रीमान् सेठ बसतीमलजी सा० बोहरा और श्रीमान् सेठ अभयराज जी सा० नाहर आदि २ महानुभाव भी इस संस्था के प्रमुख

सहायकों में हैं। इन्होंने समय समय पर आर्थिक सहायता तो दी ही है। अपना समय भी दिया है और संस्था को दिवाकरजी के साहित्य प्रकाशन में समर्थ बनाया है। हम इन सब धर्मप्रेमी और उत्साही श्रीमानों के प्रति अतीव कृतज्ञ हैं और कामना करते हैं कि वे दीर्घायु होकर संस्था को भी दीर्घजीवी बनाएँ।

उपर्युक्त द्रव्य सहायकों के अतिरिक्त इस संस्था को जिन मुनिराजों की अतिशय मूल्यवान भाव सहायता अब तक प्राप्त हुई है, उनमें पण्डित रत्न महा मुनि श्री प्यारचन्दजी महा० की सहायता अत्यन्त सराहनीय रही है। जैन दिवाकरजी महा० के प्रति आपकी भक्ति का विचार करते समय श्री जम्बू स्वामी का स्मरण हो आता है। आपके ही उत्साह और उद्योग से इस साहित्य का उद्धार और सम्पादन हो सका है। आपकी ओर से साधुता की मर्यादा में हमें जो प्रेरणा मिली है, उसके लिए हमारे साथ सभी पाठक आपके प्रति कृतज्ञ होंगे।

चान्दमल कोठारी
मन्त्रीः—
श्री जैन दिवाकर मित्र मण्डल
ब्यावर (अजमेर)

युगत्रये पूर्वमतीतपूर्वे,
जातास्तु जाता खलु धर्ममल्ला ।
अयं चतुर्थो भवताच्चतुर्थे,
धात्रेति सृष्टोऽस्ति चतुर्थमल्लः ॥



विषयानुक्रमणिका







दस धर्म



स्तुतिः-

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि,
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे भगवन् ! कहां तक आपके गुण गाये जाएँ ?

हे महाप्रभु ! जो आपकी स्तुति करता है, वह सब प्रकार के भयों से रहित हो जाता है । वह भय चाहे मदोन्मत्त हाथी से

उत्पन्न हुआ हो, चाहे सिंह से, दावानल से, सर्प से, संग्राम से, समुद्र से या जलोदर जैसी किसी बीमारी से उत्पन्न हुआ हो। जो ज्ञानवान् पुरुष आपकी हृदय से स्तुति करता है, उसके समस्त भयों का नाश हो जाता है। आपकी स्तुति करने से आत्मा में एक दिव्य बल प्रकट होता है। उस बल के प्रभाव से सभी प्रकार के भय ही मानो भयभीत होकर भाग जाते हैं।

भगवान् का नामस्मरण करने से और उनके गुणों की स्तुति करने से हाथी, सिंह, दावानल, सर्प, संग्राम, समुद्र, जलोदर आदि के संकट किस प्रकार दूर हो जाते हैं, यह बात आचार्य महाराज ने पहले भिन्न भिन्न पद्यों में बतलाई है। इस पद्य में उन सब का संग्रह कर दिया है।

कहा जा सकता है कि जो बातें पहले कही जा चुकी हैं, उन्हें फिर दोहराने की क्या आवश्यकता है? इस कथन के उत्तर में दो बातें समझनी चाहिये। पहली बात यह है कि साहित्य में पुनरुक्ति को अर्थात् एक बार कही हुई बात को दोबारा कहने को, दोष जरूर माना गया है, परन्तु स्तुति में पुनरुक्ति दोष नहीं गिना जाता। भक्त अपने भगवान् के एक-एक गुण की बार बार प्रशंसा करता है। वह इस प्रकार अपने हृदय को निर्मल बनाता है, चित्त को पवित्र करता है, अतएव स्तुति में पुनरुक्ति दोष नहीं है। दूसरी बात यह है—पहले आचार्य महाराज ने एक एक भय का निवारण होना बतलाया था। उससे किसी को यह खयाल हो सकता था कि भगवान् की स्तुति से वही भय दूर होते हैं, जिनका यहां कथन किया गया है। मगर संसार में भय बहुत हैं और भय के कारण भी बहुत हैं। उन सब का नाम ले लेकर

उल्लेख करना और स्तुति से उनके दूर होने की बात कहना संभव नहीं है। अतएव यहां अनेक भयों के निवारण का उल्लेख करके यह सूचित कर दिया है कि कोई भी भय क्यों न हो, भगवान् की स्तुति से वह अवश्य ही दूर हो जाता है। यहां जिन भय के कारणों का उल्लेख किया है, वे उपलक्षण मात्र हैं—सिर्फ सूचना मात्र हैं। उनसे सभी भयों के कारणों को ग्रहण कर लेना चाहिये।

अभी अभी स्तुति का जो पद्य आपको सुनाया गया है, उसमें एक पद ध्यान देने योग्य है। वह पद है-'मतिमान्।' आचार्य महाराज कहते हैं कि जो मतिमान् अर्थात् विवेकवान् पुरुष भगवान् की स्तुति करता है, उसके भय दूर हो जाते हैं। ऐसा कहने का अभिप्राय क्या है ? क्या भगवान् की स्तुति करने से बुद्धिमानों को लाभ होता है और बुद्धिहीनों को लाभ नहीं होता ? अगर ऐसा है तो क्या भगवान् के दरबार में भी पक्षपात होता है ? उस औषध का क्या महत्त्व है जो पक्षपात करके किसी को लाभ पहुँचावे और किसी को न पहुँचावे ? भगवान् वीतराग हैं। प्राणी मात्र को समान भाव से, देखने वाले हैं। अगर वहीं पक्षपात होने लगा तो कहना होगा कि जल में आग लगने लगी। और वस्तु में आग लगती है तो जल से बुझाई जाती है, मगर जल में लगी हुई आग किससे बुझाई जाय ?

बात ठीक है। भगवान् के दरबार में पक्षपात नहीं होना चाहिए। किन्तु वीतराग भगवान् के दरबार में पक्षपात है भी तो नहीं ! पक्षपात नहीं है, इसी कारण भगवान् वीतराग हैं। पक्षपात होता तो उन्हें वीतराग की पदवी प्राप्त नहीं होती। फिर भी उनकी स्तुति करने से ज्ञानी ही लाभ उठाते हैं, अज्ञानी लाभ नहीं उठाते।

इसमें न तो भगवान् का दोष है और न भगवान् की स्तुति का ही दोष है। अगर दोष किसी का है तो अज्ञानी के अज्ञान का ही दोष है। सूर्य उगता है सारे संसार में प्रकाश फैलाने के लिए। जीव मात्र को वह प्रकाश देता है। मगर लोग समान रूप से उस प्रकाश से लाभ नहीं उठाते। जिनके आंखें नहीं हैं, वे सूरज की रोशनी से कोई फायदा नहीं उठाते। सूरज उन्हें रोकता नहीं है। वह यह नहीं कहता कि तुम मेरी रोशनी से फायदा मत उठाओ। मगर जो अंधे हैं, उनमें लाभ उठाने की शक्ति ही नहीं है। इस में सूर्य का क्या दोष है ? सूर्य को पक्षपाती कैसे कहा जा सकता है ?

जो सूर्य के प्रकाश से लाभ उठाते हैं, वे भी दो प्रकार के हैं–भ्रम में पड़े हुए अज्ञानी और ज्ञानी। कई अज्ञानी सूर्य के प्रकाश का उपयोग शिकार करने में करते हैं, चोरी करने मे करते हैं या ऐसे ही किन्हीं और पापों का आचरण करने में किया करते हैं। ऐसे लोग समझते तो यही हैं कि उन्होंने प्रकाश से लाभ उठाया है, पर दरअसल देखा जाय तो उन्होंने लाभ नहीं उठाया, हानि ही उठाई है। सूरज की रोशनी पाकर उन्होंने अपनी आत्मा को उज्ज्वल नहीं बनाया, वरन् पाप का आचरण करके आत्मा को कलुषित और अंधकारमय बनाया है। ऐसे लोग पुण्य से प्राप्त सब साधनों को पाप का हेतु बना लेते हैं। मगर जो ज्ञानवान् हैं वे ऐसा नहीं करते। वे सूर्य के प्रकाश से सच्चा लाभ उठाते हैं। वे प्रकाश में देख-देखकर चलते हैं, जिससे किसी जीव जन्तु की हिंसा न हो जाय ! शास्त्रों का पठन-पाठन करते हैं तथा इसी प्रकार के आत्मा को उज्ज्वल बनाने वाले अन्य कार्य करते हैं।

मतलब यह है कि जैसे सूर्य का प्रकाश सब के लिए

फैलता है, फिर भी अज्ञानी जन उससे वास्तविक लाभ नहीं उठाते और ज्ञानवान् लाभ उठाते हैं, इसी प्रकार भगवान् की स्तुति सब के लिए समान लाभदायक होने पर भी ज्ञानवान्—मतिमान् पुरुष ही उससे लाभ प्राप्त करते हैं. मतिहीन लोगों को उससे लाभ नहीं होता।

यह बात सूचित करके आचार्य महाराज ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भक्त को विवेकशील होना चाहिए। अगर वह विवेक के बिना स्तुति करेगा तो स्तुति का वास्तविक फल उसे प्राप्त न होगा। भगवान् की स्तुति का वास्तविक फल आत्मा की विशुद्धि होती है। इस फल की उपेक्षा करके जो सांसारिक लाभ के लिए, धन-सम्पत्ति पाने के लिए, अपने शत्रु का विनाश करने के लिए अथवा विषय वासना की तृप्ति के लिए स्तुति करता है, वह वैसा ही अज्ञानी है जैसे सूर्य के प्रकाश को पाकर शिकार खेलने वाला! उसके विषय में यही कहा जायगा कि उसने भगवान् की स्तुति का मर्म नहीं जाना, भगवान् की स्तुति का सही और पूरा लाभ नहीं उठाया!

जिस वस्तु से महान् लाभ की प्राप्ति हो सकती है, उससे तुच्छ लाभ उठाने वाला बुद्धिमान् नहीं कहला सकता। विवेकशील भक्त पुरुष को लोकोत्तर कल्याण—आत्मा के वास्तविक हित के लिए ही वीतराग प्रभु की स्तुति और वन्दना करना उचित है। सांसारिक लाभ तो तुच्छ है। वे स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। मगर जो इन्हीं के लिए स्तुति करता है, उसे लोकोत्तर लाभ नहीं होता। ऐसा करने वाला चिन्तामणि रत्न को कौवा उड़ाने के लिए फैंकता है!

भाइयो ! विवेक बड़ी चीज है। विवेक अगर प्राप्त हो गया तो आप प्रत्येक परिस्थिति में आत्मा को ऊँचा उठाने वाले कार्य कर सकेंगे। विवेक के अभाव में ही आत्मा भवभ्रमण कर रहा है। अगर आप आत्मा के वास्तविक और स्थायी कल्याण के मार्ग पर चलना चाहते हैं तो सब से पहले आपको विवेक की आवश्यकता होगी। इसीलिए प्रभु ने फरमाया है कि विवेक में ही धर्म है। इसी अभिप्राय से आचार्य महाराज ने स्तुति में 'मतिमान्" शब्द का प्रयोग किया है।

भगवान् ऋषभदेवजी प्रथम तीर्थंकर हुए हैं। उन्होंने धर्म की स्थापना की है और सच्चे धर्म को युग की आदि में प्रकाशित किया है। बाद में जो तेईस तीर्थंकर हुए, उन्होंने भी उसी धर्म का उपदेश दिया। सभी तीर्थङ्कर एक समान ज्ञानी थे-सभी सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे। अल्पज्ञानियों का बोध विविध प्रकार का होता है, सर्वज्ञों के ज्ञान में भिन्नता नहीं होती। अतएव सब तीर्थङ्करों ने एक सा उपदेश दिया है। उस उपदेश का सार यही है कि- हे जीवों ! अगर तुम सुखी होना चाहते हो तो धर्म का सेवन करो और दुःखों से बचना चाहते हो तो पापों से बचो। धर्म सुखी और पाप दुखी बनाने वाला है।

भाइयो ! आत्मा को प्रभावित करने वाली संसार में तीन वस्तुएँ हैं--धर्म, पुण्य और पाप। चौथी चीज नहीं है। सभी शास्त्रों में इन तीन ही का विवेचन और विस्तार है। धर्म से आत्मशुद्धि होती है--अजर-अमर पद को अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। पुण्य से सांसारिक सुख की प्राप्ति होती है और साथ ही ऐसे साधन मिलते हैं जिनसे जीव

धर्म की तरफ उन्मुख हो सके। देवायु की प्राप्ति, सुखद कुटुम्ब परिवार, महल-हवेली सत्कार-सन्मान, धन-सम्पदा की प्राप्ति-राजा होना, सेठ होना, मालदार होना, अच्छे कान, नाक आदि अवयवों की प्राप्ति होना, तन्दुरुस्ती रहना, सुन्दर रूप प्राप्त होना, इच्छित पदार्थों का मिलना आदि पुण्य का फल है। अंधा, लूला, लंगड़ा होना, दुःख के साधन मिलना, परतन्त्रता होना, रोग-शोक आदि होना तथा अनिष्ट वस्तुओं का सयोग होना आदि पाप का फल है।

यह तीन दुकाने हैं, जिनमें तीन ही तरह का माल मिलता है और तीन ही साधनों से मिलता है। कहा है —

मन वचन काय की हट्टी है, आत्मा इसका अधिकारी है।
टोटा और नफा स्वयं भोगे, नहीं इसमें साझेदारी है॥

इन धर्म, पुण्य और पाप की दुकानों से, मन वचन और काय के जरिये व्यापार हो रहा है। मन के द्वारा, वचन के द्वारा और काय के द्वारा धर्म भी किया जा सकता है। पुण्य भी किया जा सकता है और पाप भी किया जा सकता है। यह तीन प्रकार का व्यापार ही योग कहलाता है।

आपके लिए तीनों दुकाने खुली हैं। आप स्वतंत्र हैं। जिस दुकान से चाहें, माल खरीद सकते हैं। किस दुकान मे क्या-क्या माल भरा है यह बात मैंने अभी बतला दी है। आप चाहें तो धर्म की दुकान से मुक्ति ले सकते हैं, आपकी इच्छा हो तो पुण्य की दुकान से संसार के सुख खरीद सकते हैं और

चाहें तो पाप की दुकान से दरिद्रता, दुःख दर्द आदि भी ले सकते हैं। धर्म, पुण्य और पाप खरीदने पर आपकी क्या स्थिति होगी, अर्थात् इनका फल क्या होता है; यह जानना हो तो उन्हें खरीदने वालों को देख लो। किसी अंधे दुखिया को देख लो. तुम्हें पाप का फल देखने को मिल जायगा। पुण्य का फल देखना हो तो किसी पुण्यशाली की तरफ आंख उठा कर देख लो। प्राचीन काल में अनेक पुण्यात्माओं में से एक मरुदेवी माता भी हो चुकी हैं। उन्हे जीवन में कभी रोना नहीं पड़ा, कभी सिर दुखने तक का काम नहीं! कहा है—

अंग में कदिय न हुई असाता टसको एक न कीदोजी,
जीवी जहां तक मोरा देवी, औषध एक न लीधोजी;
ऊणी क्रोड पूर्व लग पाई साता, मोरा देवी माताजी ॥

कभी उन्हें बुखार तक नहीं चढ़ा। दवा लेने का तो काम ही नहीं पड़ा। उठते बैठते कभी टसका भी नहीं करना पड़ा। यह सब किसका प्रभाव था? उन्होंने धर्म और पुण्य की दुकान का माल खरीदा था। वे धर्म और पुण्य की दुकान का माल खरीदकर जनमी थीं। वे ऐसे प्रबल पुण्य लेकर आई थीं कि ऋषभदेवजी जैसा बेटा उन्होंने पाया! जो बाई अधिक पुण्य लेकर नहीं आती वह पुत्र पा भी लेती है तो लोग कहते हैं—खूब जना है खोज मिटा! बेटा खोटा काम करता है और मां-बाप को भी नीचा देखना पड़ता है। इस प्रकार पुण्य और पाप के फल इसी लोक में देखे जा सकते हैं। कहा है—

एगया देवलोएसु, नरए सु वि एगया ।
एगया आसुरं कायं, अहाकम्मेहिं गच्छई ॥

—उत्तराध्ययन.

इस आत्मा ने अनन्त वार देवलोक में जन्म लिया है। वह कौन-सा माल खरीद कर वहां गई थी ? उसने धर्म और पुण्य की दुकान का माल खरीदा था। धर्म के साथ पुण्य का उपार्जन करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और पाप के साथ पुण्य कमाने से भी देवगति मिलती है।

कभी-कभी यह आत्मा नरक का मेहमान भी बन चुकी है। जब इसने पाप की दुकान का माल खरीदा और पाप बहुत इकट्ठा कर लिया तो नरक में जाना पड़ा। कभी-कभी आत्मा असुरकुमार की स्थिति में भी उत्पन्न हुई है। वहां उत्पन्न होने का कारण क्या था ? पुण्य भी कमाया, धर्म भी किया किन्तु दूसरों की निन्दा की, शीलवान् को कुशीलवान् कहा और साहूकार को चोर बतलाया, इत्यादि कारणों से उसे असुरकुमार की गति मिली। पुण्य एवं धर्म के प्रभाव से देवगति तो मिल गई, मगर पाप के उदय से असुरपन भी प्राप्त हो गया।

भाइयो ! इस प्रकार तीन दुकानें हैं। तीर्थङ्कर भगवान् ने पाप करने की मनाई की है और धर्म करने का उपदेश दिया है। भगवान् ने फरमाया है कि संसार में दया धर्म ही सार है। भगवान् ऋषभदेवजी ने समवसरण में विराजमान होकर धर्म करने का ही उपदेश दिया है।

आदि दुनिया में वीतराग धर्म है सार ।
आदेश्वर प्रकाशियो, यूं भरी सभा मंझार ।

सदा संसार में वीतराग भगवान् के द्वारा कथित धर्म ही सारभूत है। अयोध्या नगरी के बाहर भगवान् ऋषभदेवजी पधारे। हजारों मनुष्य भगवान् का उपदेश सुनने गये। भरतजी भी पधारे। तब भगवान् ने क्या उपदेश दिया:—

तिरिया तिरेगा तिर रहे हैं इसी धर्म को धार ॥

अनन्त जीव दयाधर्म का आश्रय लेकर भव-सागर से तिर चुके हैं। भविष्य में जो जीव तिरेंगे, वे भी इसी धर्म का आश्रय लेकर तिरेंगे और जो वर्त्तमान में तिर रहे हैं वे इसी धर्म के सहारे तिर रहे हैं। मतलब यह है कि किसी भी देश मे और किसी भी काल में, कोई भी जीव अगर तिरना चाहेगा तो उसे दयाधर्म का आश्रय लेना ही पड़ेगा। दयाधर्म का आश्रय लिये बिना जीव का कल्याण नहीं हो सकता। जिस धर्म की ऐसी महिमा है, उस धर्म का लक्षण क्या है? धर्म के स्वरूप को जो लोग नहीं जानते हैं, उनके लिए कहा गया है:—

दुर्गतौ प्रपतज्जन्तून्, धारणाद् धर्म उच्यते ।
धत्ते जीवान् शुभस्थाने, इति धर्मस्य लक्षणम् ॥

अर्थात्—धर्म दो प्रकार से जीवों का हित करता है। प्रथम तो वह दुर्गति में पड़ने वाले जीवों को धारण करता है—उन्हें दुर्गति मे पड़ने से रोकता है, और दूसरे उन्हें शुभस्थान में पहुँचाता है। शुभस्थान का अर्थ यह है कि जिस जगह पर किसी

प्रकार का उपद्रव नहीं होता, किसी तरह की आधि व्याधि और उपाधि नहीं होती. जो स्थान सदा के लिए सुखदायी होता है, ऐसे शाश्वत आनन्दमय पद पर पहुँचाता है।

जिस समय शरीर में से आत्मा निकलती है, उस समय तक उसके अधिकार में विशाल सेना भी होती है, लाखों करोड़ों और अरबों की सम्पत्ति भी होती है, महल और मकान भी होते हैं और इन सेठानियों के गोखरू और कंदोरे भी होते हैं, मगर यह सब चीजे तभी तक हैं, जब तक शरीर में आत्मा है! शरीर में से आत्मा निकल जाने पर इनमें से कोई भी वस्तु साथ नहीं देती। मूंजड़ा-कूंजड़ा सोचता है कि धन हमारे साथ चलेगा ! मगर भाई धन तुझे छोड देगा। परिवार तेरे साथ नहीं जायगा। फौज और परिवार कोई साथी नहीं होगा। शरीर का त्याग कर देने पर समस्त विभूति यहीं रह जायगी और जीव अकेला आगे जायगा। जिस जीव ने धर्म और पुण्य का सेवन किया होगा, धर्म झट उसका हाथ पकड़ लेगा और उसे मोक्ष या देव लोक में ले जायगा। अगर पाप किया होगा तो पाप हाथ पकड़ेगा और घसीटता हुआ यमदूत के सामने ले जायगा। कोई कहेगा कि क्या पता है ? मैं कहता हूं-पता नहीं तो चोरी करके देख ले ! अभी सिपाही डंडे लगाएँगे और जेलखाने की हवा खानी पड़ेगी ! किये कर्म का फल मिलता है या नहीं अभी तुझे पता चल जायगा।

भाइयो ! धर्म ही दुर्गति में जाने से रोकता है और स्वर्ग आदि सद्गतियों में स्थापित करता है। धर्म का अर्थ ही यह है कि जो जीव को दुर्गति मे नहीं जाने देवे, नरक में नहीं जाने देवे,

स्त्री या नपुंसक न होने देवे, ले जावे तो स्वर्ग में या मोक्ष में ले जाय ! उसी को धर्म कहते हैं। भाइयो, मानो मेरा कहा मानो। कुछ न कुछ धर्म कर लो। थोड़ी बहुत पूञ्जी परलोक में जाने के लिये इकट्ठी करलो। खाली हाथ जाओगे तो भारी मुसीबत में फँस जाओगे।

धर्म के दस रूप हैं:—

क्षमा सरल संतोषता और नम्रभाव हितकार।

श्री भगवान ने (ठाणांगसूत्र के दसवें ठाणे में) फरमाया है कि धर्म के दस भेद हैं। उन सबमें पहला धर्म है–क्षमा। क्षमा को गम खाना भी कह सकते हैं। गम खाना, कम खाना और चुप होकर रहना ! कोई आदमी गाली देता है। आप में गाली देने वाले से बदला लेने की शक्ति है। आप चाहें तो उसे दण्ड दे सकते हैं या एक के बदले दस गालियां दे सकते हैं। मगर आपने ऐसा नहीं किया। आपने क्षमा के महत्व को समझा। क्षमा को कल्याणकारी माना। ऐसा मान कर गाली सुनने पर भी आपके चित्त में कोई क्षोभ नहीं हुआ। कषाय का उद्रेक नहीं हुआ। आपने शान्तभाव में रह कर गाली सहन कर ली। तो आपको बड़ा धर्म हुआ। कहते हैं, क्षमा करने से ६६ करोड़ उपवासों के फल की प्राप्ति होती है। क्षमा की यह महिमा असाधारण है। इसके लिये कषायों को पतला कर देने की आवश्यकता है। जिसने अपने अन्तःकरण को जीत लिया है और निष्कषाय भाव को अपना लिया है वही सच्ची क्षमा कर सकता है। क्षमा की महत्ता के कारण उसे दस धर्मों में पहला स्थान दिया गया है।

कई लोग कहते हैं—कि महाराज ! हमसे तपस्या नहीं होती। हम कहते हैं—तपस्या नहीं होती तो क्षमा ही करो। अन्न खा-खा कर कर बिगाड़े बिना नहीं रहा जाता तो क्षमा करने में क्या मुसीबत है ? क्षमा से तो केवल ज्ञान की भी प्राप्ति हो सकती है। गजसुकुमार मुनि ने सोमल ब्राह्मण जैसे क्रूरकर्मा पर क्षमा रक्खी, लेश मात्र भी क्रोध नहीं आने दिया और समभाव की आराधना की तो उसी समय उन्हें मुक्ति प्राप्त हो गई। क्षमा दुनियां में बड़ी चीज है। उससे इहलोक भी सुधरता है और परलोक भी सुधरता है। जिसके घर में क्षमा धर्म की प्रतिष्ठा होगी, उसके घर में शान्ति रहेगी और अलग-अलग चूल्हे नहीं जलेंगे। अलग-अलग चूल्हों के साथ कुटुम्बी जनों के दिल भी जला करते हैं, इसका कारण क्षमा का न होना ही है।

कई लोग समझते हैं कि धर्म का फल मरने के बाद ही मिलता है। मगर जो धर्म इस जीवन में कुछ भी लाभ न पहुँचाता हो और सिर्फ परलोक मे ही लाभ पहुँचाता हो, उसे मैं मुर्दा धर्म समझता हूँ। जो धर्म वास्तव में धर्म है, वह परलोक की तरह इस लोक में भी लाभकारक अवश्य होता है। उदाहरण के लिए क्षमा को ही ले लीजिए। इधर क्षमा धर्म का पालन किया और उधर उसका फल मिला ! मगर जिसमें बड़प्पन होता है, कुलीनता होती है, वह क्षमा कर सकता है। कहा है—

क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥

वैदिक पुराणों मे एक कथा आई है। कहते हैं—एक बार बहुत से ऋषि इकट्ठे हुए। उन्हें यह जानने की इच्छा हुई कि सबसे बड़ा

कौन है ? परीक्षा के लिए भृगुजी चुने गये। भृगुजी महादेवजी के पास गये। महादेव को उन्होंने कुछ अनुचित शब्द कहे तो वे चीमटा लेकर मारने दौड़े। पार्वती ने बीच बचाव किया। उसके बाद वे ब्रह्माजी के पास गये। यहां भी यही हाल हुआ। तब भृगुजी विष्णु के पास पहुँचे। उस समय विष्णु शय्या पर लेटे थे। भृगुजी ने वहां पहुँचते ही, आव देखा न ताव, विष्णुजी के वृक्ष-स्थल में लात जमा दी। विष्णुजी उठे और उठकर भृगुजी का पैर सहलाने लगे। उन्होंने कहा—भूदेव! अनजान में मुझसे आपकी अवज्ञा हो गई है। मुझे आपके आगमन का पता नहीं था। खैर लात मारने से आपके इस कोमल चरण को आघात तो नहीं पहुंचा ? मेरी छाती में आपके चरणों की धूल लग जाने से मैं पवित्र हो गया।

विष्णु के इस क्षमापूर्ण विनम्र व्यवहार को देखकर भृगु ने समझ लिया कि विष्णुजी ही सब से बड़े हैं, क्योंकि वे सब से ज्यादा क्षमावान् हैं। भृगुजी ने ऋषियों को अपनी यात्रा का हाल सुनाया। सब ऋषियों ने भी विष्णु का बड़प्पन स्वीकार किया।

इस दोहे में इसी कथा का सार दिया गया है। यह घटना इसी प्रकार घटी होगी, यह तो नहीं कह सकते; किन्तु क्षमा का महत्व बहुत मनोरंजक ढंग से यहां बतलाया गया है। भृगु ने विष्णु को लात मार दी तो विष्णु का क्या बिगड़ गया। उन्होंने क्षमा की तो इससे उनकी महिमा ही बढ़ी।

भाइयों ! गाली देने वाला अगर नीच है उसके बदले चार गालियां देने वाला चौगुना नीच क्यों नहीं गिना जायगा ?

वास्तव में वही ऊँचा और बड़ा है जो कटुक वचनों को शान्ति के साथ सहन कर लेता है। अगर आप किसी भी महापुरुष के जीवन चरित को पढ़ेंगे तो यह मालूम हुए बिना नहीं रहेगा कि उसके जीवन में क्षमा कर देने की भावना भरी हुई थी। भगवान् महावीर का जीवन तो साक्षात् क्षमा की मूर्ति ही था। उन्होंने अपने को कष्ट देने वाले गुवाले को क्षमा किया, कानों में कीलें ठोकने वाले पर समभाव रक्खा और जिस किसी ने उन्हें सताया सब पर वही भाव रक्खा जो अपने भक्त पर रक्खा जाता है।

बुद्ध के विषय में भी एक कथा प्रचलित है। कहते हैं किसी ने उन्हें गालियां दीं। बुद्ध ने शान्ति के साथ गालियां सुन चुकने के पश्चात् गालियां देने वाले से कहा-भाई, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ। उसने पूछ लेने की अनुमति दे दी। बुद्ध ने पूछा—कोई आदमी, किसी को कोई चीज दे किन्तु लेने वाला उसे स्वीकार न करे तो वह दी जाने वाली चीज किसकी होगी? उसने उत्तर दिया—यह कौन-सा बड़ा सवाल है? जब लेने वाला नहीं स्वीकार करता तो देने वाले को ही वह चीज रहेगी।

यह सुनकर—बुद्ध मुस्कराते हुए बोले—तो भद्र! तुमने मुझे जो गालियां दी हैं, मै उन्हें स्वीकार नहीं करता!

गालियां देने वाले पर घड़ों पानी पड़ गया। लज्जित होकर उसने फिर कभी किसी को गाली न देने का प्रण कर लिया।

कहा जाता है, ईसा मसीह को प्राणदण्ड दिया गया था। जब उन्हें प्राणदण्ड दिया जाने लगा तो उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की — ईश्वर! मुझे प्राणदण्ड देने वालों को क्षमा कर देना। ये बेचारे नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।

दूर क्यों जाते हो? गांधीजी को ही लो। एक आदमी ने उन पर हथगोला फैंका। वह उनकी हत्या करना चाहता था पर वे बच गये। उन्होंने उसे क्षमा कर दिया और सरकार से भी क्षमा कर देने की सिफारिश की!

गांधीजी के सामने देशद्रोही गोडसे खड़ा था। उसने पिस्तौल चला दी। गांधीजी ने क्रोध नहीं किया। 'हे राम' के सिवाय और कुछ नहीं बोले।

जगत् के महान् पुरुषों के यह थोड़े से उदाहरण हैं। इन उदाहरणों में सभी धर्मों के आदर्श व्यक्तियों का उल्लेख आ गया है। आप देखेंगे तो विदित होगा कि क्षमा का महत्त्व सब धर्मों में समान रूप से स्वीकार किया गया है। क्षमा सर्वसम्मत धर्म है। क्षमा की प्रशंसा सभी शास्त्रों में मिलती है। कुछ लोग समझते हैं कि क्षमा धारण करना एक प्रकार की कायरता है, मगर ऐसा समझने वाले अगर अपने अन्तस्तल को टटोलेंगे तो पाएँगे कि कायरता उन्हीं में हैं। कहा है—

क्षमा खड्गं करे यस्य, दुर्जनः किं करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति॥

जिसने क्षमा रूपी तलवार अपने हाथ में ले ली है, शत्रु दुर्जन उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकते। पानी में फैंकी हुई आग, पानी को क्या जलाएगी, वह स्वयं ही बुझ जाएगी।

अगर कोई दुर्जन क्षमावान् पर प्रहार करता है तो क्षमावान् अपनी क्षमाशीलता के द्वारा ही उसका प्रतिकार करता है

उसका प्रतीकार इतना प्रबल होता है कि प्रहार करने वाला दुर्जन, दुर्जन ही नहीं रह सकता। उसकी दुर्जनता दूर हो जाती है और उसमें सदा के लिए सज्जनता आ जाती है।

क्षमावान् को कदाचित् कुछ कष्ट भी सहना पड़ता है, तो भी परिणाम उसका सुखमय ही होता है। कहा भी है:—

दुःख सहे बिन सुख नहीं, दुःख बिन सुख नहिं होय।
कान सहें विंधावणो, वाला पहने सोय॥

देखो, दुःख सहे बिना सुख नहीं मिलता है। बच्चियों के कान और नाक छेदते समय उन्हें कष्ट होता है मगर बाद में जब हजारों की लागत के लौंग पहनती हैं तो उन्हीं को ही आनन्द आता है। अतएव भाइयों, प्रयत्न करो कि तुम्हारे जीवन में क्षमा का गुण उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाय।

उक्ति प्रसिद्ध है—'क्षमा वीरस्य भूषणम्' अर्थात् क्षमा वीरों का भूषण है। इस उक्ति का मर्म यह है कि जब आपमें बदला लेने की शक्ति हो और फिर भी आप बदला न लेना चाहें, तभी आपकी क्षमा मूल्यवान् गिनी जायगी। कायरता के कारण या दब्बूपन के कारण, मन मे बदला लेने की भावना होने पर भी, अगर अपने बदला नहीं लिया है तो ऐसी क्षमा मूल्यवान् नहीं है। मतलब यह है कि जो आपके अधीन है, जो आपसे निर्बल है, और जिसका आप कुछ बिगाड सकते हैं, उसे आपने क्षमा कर दिया तो आप सच्चे क्षमावान् गिने जाएँगे।

भगवान् ने दूसरा धर्म निष्कपटता-सरलता बतलाया है। भगवान् कहते हैं—हे भव्य जीवों! यदि तुम अपना कल्याण

करना चाहते हो तो निष्कपटता धारण करो। कपट करना महा-पाप है। मन में कुछ और हो और जीभ से कुछ और कहा जाय या शरीर से कुछ और ही किया जाय तो वह कपट है। इसे धूर्तता भी कहते हैं। धूर्त आदमी दूसरों को ठगने की कोशिश करता है मगर दूसरे ठगाई में आवें या न आवें, धूर्त को अपनी करनी का फल तो मिल ही जाता है। पूतना ने श्रीकृष्ण के साथ कपट किया तो उसे क्या फल मिला?

> कपट करके पूतना ने,
> श्रीकृष्ण को लिया गोद में।
> नतीजा उसको मिला,
> तू कपट करना छोड दे॥

पूतना कपट करके आई थी, मगर कृष्ण का तो कुछ बिगड़ा नहीं स्वयं पूतना ही नीलाम बोल गई! प्रत्येक शास्त्र में कपट करने का निषेध किया गया है।

एक शेर बूढा हो गया था। उसके शरीर में शक्ति नहीं रही थी। इसलिए कपट करके उसने अपना पेट भरना चाहा। एक बार वह प्रातःकाल धीमी धीमी गति से, नीचे जमीन को देखता हुआ चला जा रहा था। रास्ते में पेड पर बैठे हुए एक बन्दर ने शेर को इस हालत में देखा। देखने पर उसे आश्चर्य हुआ। दिमाग में तर्क पैदा हुआ—

> नहीं खड्डा नहीं खोचरा, स्वामी का न स्वभाव।
> अधर-अधर पग क्यों धरो, फूँक-फूँक दो पाव!

बन्दर ने सिंह से कहाः—यहां कोई गड्ढा वगैरह तो है नहीं; फिर आप बड़ी सावधानी से, नीचे देखते-देखते क्यों चल रहे हैं ? इस प्रकार चलना आपके स्वभाव से विपरीत है।

यह सुनकर सिंह बोलाः—

परम सनेही साधु हैं, ज्यों दूधन में घीव।
अधर-अधर पग यूं धरूं, रखे मरे कोई जीव॥

हम परम सनेही साधु हैं। हमने पशुओं को मारना छोड़ दिया है। जङ्गल में इसलिए घूम रहे हैं कि फल-फूल मिल जाएँ तो अपना पेट भर लें। पैरों के नीचे दब कर कोई जीव मर न जाय, इस भय से हम अधर-अधर पैर रख कर चलते हैं। हमने अहिंसा धर्म को अपना लिया है।

सिंह का यह उत्तर सुन कर बन्दर ने कहाः—

ऐसा हो तो खड़े रहो, पूरो मेरी आस।
तरुवर से फल तोड कर, लाऊं तुम्हारे पास॥

बन्दर ने कहा—सौभाग्य से आप मुझे सुपात्र मिल गये हैं। मैं भक्ति का लाभ चाहता हूँ। आप खड़े रहें। मैं वृक्ष से फल तोड़ कर लाता हूँ।

सिंह ने सोचा—मेरा कपट सफल हुआ चाहता है। वह खड़ा होगया। बन्दर फल तोड़ कर नीचे आया। फल शेर के सामने रख दिये। मगर शेर ने फलों को छोड़ कर बन्दर को मुँह में पकड़ लिया।

वंदर समझ गया कि यह सिंह बड़ा दगाबाज़ है। वह उस दगाबाज़ के मुँह से छूटने का उपाय सोचने लगा। एकदम ही सोचकर वन्दर खिलखिला कर हँस पड़ा। तब शेर ने पूछा—

तब वन्दर हंसने लगा, सिंह पूछता एम—
'फंसा काल की दाढ़ में, अब हंसता है केम ?'

शेर ने कहा ऐ वन्दर ! तूँ मौत के चगुल में फँस चुका है, लेकिन इतने पर भी तू हँस रहा है। तेरी हँसी का क्या कारण है ? वन्दर बोला—

तब वन्दर कहने लगा, मेरे मन की गूंज।
मैं हंसा तू हंसे तो, बात सुनाऊं तूझ ॥

बन्दर भी बड़ा चालाक था। उसने कहा—मुझे एक बात ऐसी याद आगई है कि जिन्दगी भर में तुमने नहीं सुनी होगी। अब सुनना चाहो तो पहले मेरी तरह खिलखिला कर हँसो। फिर मैं सुनाऊँगा।

भोला सिंह समझा नहीं, मुंह दिया मुलकाय।
जिस तरुवर का बांदरा, उस पै बैठा जाय ॥

शेर कपटी होने पर भी मूर्ख था। वह बन्दर की बात का असली मर्म नहीं समझ सका। उसे बात सुनने का कुतूहल हुआ। उसने हँसने के लिए ज्यों ही मुँह फैलाया कि बन्दर मुँह से छूट कर भाग गया। वह जिस वृक्ष पर बैठा था, उसी पर जा चढ़ा।

शेर ने कहा—भाग क्यों गया ? वह बात तो सुना दे ? वंदर बोला–तुम्हें इतनी भी अक्ल नहीं है क्या ? क्या शेर के मुँह में से कोई वचकर निकल सकता है ? शेर ने कहा—नहीं, नहीं निकल सकता। वदर ने कहा–तो बस, यही नवीन बात है कि एक वानर शेर की भयकर दाढों में से सकुशल बच निकला शेर लज्जित होकर बोला—भाई बात तो सच है।

अब वन्दर रोने लगा, सिंह पूछत है एम।
गया काल की दाढ से, अब रोता है केम ?

इनके बाद बन्दर रोने लगा। शेर ने उसके रोने का कारण पूछा। कहा—तू काल की दाढों से वच गया है। तुझे खुशी मनानी चाहिए थी, पर तू तो रो रहा है। तेरे रोने का कारण क्या है ?

रोऊं तुम से साधु को, कोई भोला मिलसी आय।
जिस दिशा के साधु तुम, रहो वहीं पर जाय ॥

बन्दर ने कहा—मैं अपने लिए नहीं, दूसरे के लिए रोता हूँ। मैं तो किसी तरकीव से वच निकला, मगर कोई भोलाभाला दूसरा तेरे जाल में फंस जायगा तो वह कैसे वचेगा ? इसलिए मैं तुझसे कहता हूं कि तू जिधर से आया है, उधर ही लौट जा। तू वड़ा ही दगावाज है।

भाइयो ! दगा किसी का सगा नहीं है फिर भी आज ससार में सर्वत्र दगाबाजी का दौरदौरा है। भगवान् ने फरमाया है कि जहां कपट है वहां धर्म नहीं है। कपट तो तीन शल्यों में गिना गया है और जहां शल्य है वहां व्रत शुद्ध रूप से नहीं पाले जा सकते। 'निःशल्यो व्रती' अर्थात् व्रत धारण करने वाले को

शल्य-रहित होना चाहिए। इस प्रकार जब तक दिल में कपट है तब तक व्रत नियम आदि व्यर्थ हैं। जैन शास्त्रों के अतिरिक्त गीता में भी कपट को त्यागने का विधान किया गया है—

अहिंसासत्यमक्रोध स्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुपत्वं, मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥

भद्र पुरुषो ! आप जो व्रत, नियम धर्मध्यान आदि करते हैं उसे सफल बनाने के लिए कपट का अवश्य त्याग करना चाहिए।

भगवान् ने तीसरा धर्म सन्तोष बताया है। वास्तव में सन्तोष धारण करना भी बड़ा धर्म है। सन्तोष धारण करके लोभ को जीतने में जीव को बड़ा भारी लाभ है। सच्चे सुख का खजाना सन्तोष में है।

अगर आप दुःखों की जड़ को तलाश करने चलेंगे तो मालूम होगा कि वह जड़ असन्तोष ही है। अधिकांश लोग असंतोष के कारण ही दुखी देखे जाते हैं। मनुष्य को अपना जीवन निर्वाह करने के लिए कितना चाहिए ? वह पेट में कितना अन्न खा सकता है और कितने कपड़े लपेट सकता है ? जितने की आवश्यकता होती है, उतना प्रायः सभी को मिल जाता है। फिर भी उनके अन्त करण में असन्तोष की आग दहकती रहती है। वे उस आग मे अपने जीवन की सम्पूर्ण शान्ति और निराकुलता को स्वाह कर देते हैं। आवश्यकता है तन की और तृष्णा है मन की। सोने को चार हाथ जमीन चाहिए, पर विशाल महल बनवा लेने पर भी सन्तोष नहीं। एक महल बन गया है तो

दूसरे के मंसूबे किये जा रहे हैं। हजारों हैं तो लाखों की तृष्णा लगी है और लाखों हैं तो करोड़ों की कामना हो रही है। निश्चित है कि इतनी सम्पदा उपयोग में नहीं आ सकती फिर भी सन्तोष कहां है?

शास्त्रकार ने मनुष्य की तृष्णा का चित्रण करते हुए कहा है:-

सुवण्ण-रुप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया।
णरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया॥

उत्तराध्ययन ९, गा. ४८

अर्थात्—सोने और चांदी के, कैलाश के समान असंख्य पर्वत भी कदाचित् दे दिये जाएँ, तो भी लोभी के लिए वे नगण्य हैं। उनसे भी उसकी तृष्णा पूरी नहीं हो सकती। कारण यह है कि उसकी तृष्णा अनन्त है। जैनशास्त्रों के अनुसार असंख्यात संख्या की अपेक्षा अनन्त संख्या बड़ी है। सोने चांदी के पर्वत असंख्य हैं और तृष्णा अनन्त है। ऐसी हालत में तृष्णा उन पर्वतों से कैसे तृप्त होगी?

सचाई यह है कि असंतोष दुःख का बीज है। कितनी ही सम्पत्ति क्यों न हो, अगर उसके साथ सन्तोष नहीं है तो वह शांति प्रदान नहीं कर सकेगी। इसके विपरीत सन्तोषी पुरुष स्वल्प सामग्री में ही परमसुख का आस्वादन कर लेता है। कहा भी है—

जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूल समान।

एक सेठ के पास अस्सी हजार की जायदाद थी। वह किसी साधु के दर्शन करने आया। साधु ने उससे कहा-भाई, तुम्हारे पास काफी जायदाद है अब सब्र कर लो। वह कहने लगा महाराज! क्या करूँ? सब्र होता ही नहीं है! साधु ने फिर सम-झाया-मान जाओ, सब्र करने से होता है। लोभ अच्छा नहीं है। लेकिन सेठ नहीं माना। वह एक लाख बनाने की चिन्ता में था। मगर कुछ ही दिनों बाद ऐसा उलटा पासा चला कि सेठजी को अपनी पत्नी का घाघरा भी नीलाम करना पड़ा।

क्या उसके जीवन के लिए अस्सी हजार कम थे? इतने में उसकी कौन-सी वास्तविक आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती थी? परन्तु तृष्णा अधिक थी, इसलिए अस्सी हजार भी उसे कम मालूम होते थे। वास्तव में तृष्णा मनुष्य के जीवन को बर्बाद कर देती है।

किसी लोभी ने अपने देवता की मनौती की कि अगर मुझे लाभ होगा तो मैं एक नारियल चढ़ाऊँगा। संयोगवश उसे लाभ हो गया तो देवता के डर से वह बाजार में नारियल खरीदने गया। एक दुकान पर उसने नारियल का मोल पूछा। दूकानदार ने कहा–एक आना। लोभी नारियल के तीन पैसे लगाकर आगे चला। दूसरी दूकान पर जाकर उसने फिर नारियल की कीमत पूछी। दुकानदार ने कहा—तीन पैसे। उसने कहा—दो पैसे में देना है? और वह आगे बढ़ गया। कुछ आगे जाने पर तीसरी दुकान मिली। वहा भाव पूछा तो दूकानदार ने कहा—दो पैसा।

लोभी ने सोचा—ज्यों ज्यों आगे बढ़ता जाता हूँ, नारियल की कीमत कम होती जाती है। संभव है, आगे और भी सस्ता

मिल जाय। इस विचार से लोभी उस नारियल का एक पैसा लगाकर आगे चल दिया। कुछ आगे चलने पर चौथी दुकान मिली। उस दुकान पर एक पैसे मे ही नारियल मिल रहा था। मगर लोभी के लोभ का कहां ठिकाना! उसने कहा-एक पैसे में दो नारियल दे दो। दुकानदार ने कहा-गांव के बाहर नारियल के पेड़ खड़े हैं। वहा चले जाओ, सस्ते मिल जाएंगे। लोभी गांव के बाहर चला। नारियल के पेड़ों के पास पहुँच कर नारियल वाले से कीमत पूछी उत्तर मिला—'एक पैसे में दो देंगे।' अब भो लोभी को सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा—'कुछ और सस्ते दे दो।' नारियल वाला बोला—पेड़ पर चढ़ कर हमारे लिए नारियल तोड दो तो एक मुफ्त में मिल जायगा। लोभी को बड़ी खुशी हुई। वह पेड पर चढ़ गया और नारियल तोडने लगा। पर अचानक पेड़ से पैर छूट जाने से वह लटक गया। भाग्य से उसी समय एक हाथी वाला उधर होकर निकला। लोभी के कहने पर आधा धन लेकर वह उतारने के लिए तैयार हुआ। लोभी के पास पांच हजार का माल था। उसका आधा अढ़ाई हजार होता था। हाथी वाले ने कहा—मैं तुम्हारे हाथ पकडता हूं। जब 'हूं' कहूं तो पैर छोड़ देना। किन्तु जब हाथी वाले ने 'हूँ' कहा तो हाथ छोड़ने में उसे देरी हो गई, क्योंकि वह धन चले जाने के सोच-विचार में पड़ गया था। उधर हाथी आगे सरक गया। अब लोभी और हाथी वाला दोनों ही लटक पड़े।

अब लोभी बोला—भाई मेरे हाथ बहुत दुख रहे हैं और पैर भी अकड़े जा रहे हैं। मैं छोड़ता हूं हाथी वाला घबरा कर बोला–मैं तुमसे धन नहीं लूंगा, पकड़े रहो। गिर पड़ोगे तो कचूमर निकल जायगा। उसी समय एक ऊँट वाला आ पहुंचा।

उसे ऊपर वाले ने एक हजार और नीचे वाले ने पांच सौ देने का वायदा करके बचाने को कहा। ऊँट वाला बोला-ठीक है, मैं ऊँट इधर लाता हूँ। जब 'हूँ' कहूँ तो हाथ छोड देना। तदनुसार ऊँट वाले ने पैर पकड़ कर 'हूं' कहा, लेकिन वे दोनों रुपये जाने के विचार में ही रह गये! ऊँट आगे चल दिया! अब तीनों लटक गये।

ऊपर वाले ने कहा—मेरे हाथ दुख रहे हैं। तब नीचे वाले दोनों ने कहा--मजबूत पकड़े रहना। हम तुम से कुछ नहीं लेंगे किन्तु एक हजार अपनी ओर से देंगे। यह सुनकर लोभी के हर्ष का पार नहीं रहा। उसने सोचा-बस, अब मेरे पास पांच हजार छह हजार हो जाएँगे! इस खुशी में वह बेभान हो गया। रुपये का ढेर दिखाने को उसने ज्यों ही हाथ छोड़े कि त्यों तीनों धड़ाम से नीचे गिर पड़े।

भाइयों! लोभियों की ऐसी दशा होती है। लोभी धन के आगे अपने जीवन को भी तुच्छ समझता है। लोभी को स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। अतएव सुखी बनने के लिए सन्तोष धारण करना चाहिए। कहा भी है—'सन्तोषी नर सदा सुखी।'

भगवान ने चौथा धर्म नम्रता धारण करना बतलाया है। अभिमान का त्याग करना नम्रता है। नम्रता या विनय धर्म को धारण करने वाला मोक्ष का अधिकारी होता है। शास्त्रों में विनय को बड़ी महिमा गाई गई है। विनय धर्म का मूल है। विनीत पुरुष ही विद्या का अधिकारी होता है। अतः विनय को धारण करना सर्व प्रथम आवश्यक है। गुणवान् को देखकर वन्दन करो, माता-पिता और गुरु का विनय करो। श्रावक श्राविका का भी

विनय करो। चारों तीर्थों का विनय करो। विनय धर्म का उत्कृष्ट रूप से पालन करने से तीर्थङ्करगोत्र तक का बंध हो सकता है।

विनय एक महान् धर्म है। मान-अभिमान को त्यागने पर ही विनय का उद्भव होता है। अतएव अभिमान को छोड़ो और नम्रता धारण करो। धन-वैभव का शरीर के बल और सौन्दर्य का, विद्या और बुद्धि का, जाति और कुल का तप और ज्ञान का-किसी भी प्रकार का अभिमान मत करो। अभिमान एक प्रकार का बीमारी है जो समस्त गुणों को कृश और दुर्बल बना देती है। अभिमानी के समस्त गुण, अवगुण बन जाते हैं। वह आदर का नहीं, घृणा का पात्र बनता है। इसके विरुद्ध विनीत पुरुष आदर-सन्मान के योग्य समझा जाता है! अतएव अपने मन में भूल कर भी कभी अभिमान मत आने दो।

एक सुनार सोना तोल रहा था। सोना तोलते समय उसके साथ कांटे में चिरमी भी डाली गई। यह देख सोने को अभिमान आगया। वह सुनार से कहने लगा—

सोना कहें सुनार से, सुनो हमारी बात।
काले मुंह की गुंजिया, तुले हमारे साथ?॥

सोने की अभिमान से भरी हुई बात सुनकर चिरमी से चुप नहीं रहा गया। उसने कहा:-

हरी हमारी बेलडी, ऊँच हमारी जात।
काला मुंह तब से हुआ, तुली नीच के साथ॥

चिरमी बोले—अरे सोने ! तुझे पता है कि मैं जिस वेल में जनमी हूं, वह हरे रङ्ग की थी। मेरी जाति भी ऊँची है। मैं ऊँचाई पर रहने वाली हूँ। तू नीचा है-खान में से खोद खोद कर निकाला जाता है। मैं तेरे जैसे नीच के साथ जब तुली तो मेरा मुँह काला होगया।

यह सुनकर सोने ने क्रोध में आकर कहाः—

स्वर्ण कहे चिरमी सुनो, एक हमारी बात।
तेरे में गुण होय तो, जलो हमारे साथ॥

अर्थात्—तू अपने ऊँचेपन की डींगें मारती है। अगर तुझमें कोई गुण हैं तो आ, मैं मूसे में बैठता हूँ। तू भी आ जा। देखूं तू मेरे बराबर तपस्या कर सकती है या नहीं ! तब चिरमी कहती हैः—

चिरमी बोली स्वर्ण सुन, एक हि ध्यान लगाय।
औगुण होवे सो जले, मेरी जले बलाय॥

जिसमें अवगुण होता है उसे जलना पडता है। तेरे भीतर मैल भरा है। तेरा अन्तरङ्ग मलिन है। इस कारण तू ही जल। मैं शुद्ध हूं। मुझे जलने की क्या जरूरत है ?

यह कहानी यद्यपि कल्पित है; फिर भी इसका आशय बहुत सुन्दर है। वास्तव में घमण्डी का सिर नीचा होता है।

पत्थर ठोकर खात है, करड़ाई के पान।
देखो रज ऊँची चढ़े, नरमाई के पान॥

जो अभिमान करेगा उसे ठोकरें खानी पड़ेगी। जिसमें नम्रता होगी वह ऊँचा चढ़ेगा। अगर आप उच्चता प्राप्त करना चाहते हैं तो अभिमान का त्याग करके विनयभाव धारण करो।

भगवान् ने पांचवां धर्म यह बतलाया है कि अपनी आंख, नाक, कान, जीभ और शरीर इन पांचों इन्द्रियों को वश में रक्खो। इन्हे वश में रखना धर्म है। जो जितेन्द्रिय पुरुष अपनी इन्द्रियों को अपने अधीन रखता है, जो स्वय इनके अधीन नहीं हो जाता, वह पापों से बच जाता है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

गीता अ० २ श्लो० सं. ५८

कछुवा जब अपने हाथों और पैरों को सिकोड़ लेता है तो उस पर किसी का जोर नहीं चलता। वह कठोर से कठोर अघातों को सहन कर लेता है। इसी प्रकार जो अपनी इन्द्रियो को सकुचित कर लेता है, उस पर पाप हमला नहीं कर सकता। इन्द्रियों और मन के द्वारा ही आत्मा पापों से लिप्त होता है अतः पापों से बचने के लिए निरन्तर इन पर काबू रखना बहुत उपयोगी है।

छठा धर्म है सत्य का आचरण करना। जो बात जैसी सुनी हो, देखी हो या अनुभव की हो वैसी ही कहना और साथ ही दूसरों को पीड़ा उत्पन्न करने वाले, हानिकारक वचनों का प्रयोग न करना सत्य कहलाता है। सत्य के विषय में मैं पहले कह चुका हूँ। सत्य धर्म आत्मा को उज्ज्वल बनाता है। असत्य का सेवन करने से आत्मा कलुषित होती है। यही नहीं, असत्यभाषण करने

वाला लोक मे अविश्वास का पात्र बनता है। उसकी कही बात पर भी कोई विश्वास नहीं करता। कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि सत्य भाषण करने से संकट आ पड़ेगा, फिर भी जो सत्य का ही आश्रय लेता है और असत्य का प्रयोग नहीं करता, वही विजयी होता है। अन्त में सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। कहा भी है:—

सत्यमेव जयते,नानृतम्

राजा हरिश्चन्द्र को कितने ही सङ्कट झेलने पड़े, परन्तु वे सत्य की राह से नहीं हटे। अन्त में संकट समाप्त हो गये और हरिश्चन्द्र विजयी हुए। उन्हें फिर राज्य ही नहीं मिला, बल्कि अपूर्व प्रतिष्ठा और श्रद्धा भी मिली। आज भी लोग हरिश्चन्द्र की प्रशसा करते हैं। यह सत्य का ही प्रभाव है। सत्य के प्रभाव से सुख ही मिलता है, दुःख नहीं मिलता, ऐसी पक्की आस्था रखने वाला कभी असत्य भाषण करके अपनी आत्मा को पतित नहीं बनाएगा।

एक गरीब लकड़हारा कुल्हाड़ी लेकर लकड़ियां काटने गया। किसी तरह उसकी कुल्हाड़ी कुए मे गिर गई। वह कुए की पाल पर बैठ कर रोने लगा। सोचने लगा—हाय! मेरी जीविका का एक मात्र-साधन मुझसे छिन गया! अब कैसे मैं अपना पेट भरूँगा और कैसे बाल-बच्चों की परवरिश करूँगा! कुल्हाड़ी के बिना आज शाम को ही सब को उपवास करने की नौबत आ जायगी।

किसी देवता के ज्ञान का उपयोग लगा। उसे गरीब दुखिया पर दया आ गई। वह मनुष्य का रूप धारण करके

लकड़हारे के पास आया। उसने उससे रोने का कारण पूछा। लकड़हारे ने कुल्हाड़ी कुए मे गिरने की बात कही तो देवता कुए मे गया और सोने की एक कुल्हाड़ी ले आया। पूछा—क्या यही तेरी कुल्हाड़ी है? लकड़हारा गरीब होने पर भी सच्चा और ईमानदार था। सोने की कुल्हाड़ी देखकर वह कह सकता था कि-हां यही मेरी है। पर उसने ऐसा नहीं किया। उसने कह दिया—नहीं, यह कुल्हाड़ी मेरी नहीं है। देवता ने दूसरी डुबकी लगाई। इस बार वह चांदी की कुल्हाड़ी ले आया। पूछने पर लकड़हारे ने फिर वही कहा कि मेरी यह नहीं है।

देवता ने तीसरी डुबकी लगाई। अब की बार वह उसकी असली कुल्हाड़ी लाया। तब लकड़हारे ने कहा—हां, यही मेरी है देवता। लकड़हारे की सचाई पर प्रसन्न हुआ। उसने अपना असली रूप प्रकट करके कहा-लो, यह तीनों कुल्हाडियां मैं तुम्हें देता हूं! सोने और चांदी की कुल्हाडियां तुम्हारी सचाई का इनाम हैं।

भाइयो! सचाई मामूली चीज नहीं है। अकसर गरीबों में सचाई पाई जाती है। बम्बई के किसी बाजार मे एक दातोन वाला बैठा था। एक बाबू ने एक पैसे के दातोन लिये और अन्धेरे मे भूल से पैसे के बदले गिन्नी दे दी। दातून वाले ने देखा कि यह गिन्नी है तो उसने बाबू को आवाज दी। बाबू झुंझला कर बोले—पैसा दे तो दिया है, फिर क्यों चिल्ला रहा है? दातोन वाले ने कहा-बाबूजी आपने पैसा नहीं दिया, गिन्नी दी है। इसे वापिस ले लीजिए। बाबू ने प्रसन्न होकर उसे इनाम दिया और उसकी प्रशंसा की।

इसके विरुद्ध कई लोग मालदार होते हुए भी ईमानदार नहीं होते। एक बार की बात है। व्याख्यान में कई धनाढ्य लोग मौजूद थे। उनमें से किसी का एक हजारों की कीमत का मोती गिर गया। उसे पास में बैठे हुए एक मालदार ने उठा लिया और अपनी जेब में डाल लिया। एक साधुजी ने उसे उठाते देख लिया, मगर ऐसी बात जाहिर करना साधुओं की मर्यादा के विरुद्ध है।

साधु के स्थान पर कोई गठरी या दूसरी चीज रखे तो हम उससे यही कहेंगे कि हम जिम्मेवार नहीं हैं। कोई दूसरा उसे उठाने लगे तो हम मना नहीं करेंगे और गठरी का मालिक आकर पूछेगा तो हम उठा ले जाने वाले का नाम नहीं बतलाएँगे। हम दुनियादारी के झगड़े में नहीं पड़ते! धर्म की बातें सुनाना और धर्म की ओर प्रेरित करना और अपनी आत्मा का कल्याण करना ही हमारा काम है।

मतलब यह है कि सत्य का आचरण अमीर और गरीब दोनों समान रूप से कर सकते हैं। सचाई का एक पैसा मोहर के बराबर है और बेईमानी के लाखों रुपया कौड़ी के बराबर भी नहीं हैं। भाइयो! अपनी नीयत मत बिगाड़ो। जो भाग्य में होगा वही मिलेगा और वह अवश्य मिलेगा। असत्यमय व्यवहार करने पर भी तुम उससे ज्यादा नहीं पा सकोगे, और सचाई से बरतोगे तो घाटे में नहीं रहोगे।

आगे कहते हैं:—

त्याग तप सत ज्ञान हो, और शील शुचि उदार।

भाइयो! सातवां धर्म त्याग है। पापों का त्याग करना धर्म है। जो पापों का त्याग करता है वह सुखी होता है। दुनियादारी के व्यवहार में ही देख लो। जो गुड़ का त्याग करता है उसे शक्कर मिलती है और जिसने पत्तल में खाने का त्याग कर दिया उसे थाली मिलती है।

त्याग जगत् में आदरणीय होता है। राजा और श्रीमंत गरीब का आदर नहीं करते, मगर वही गरीब जब आशा-तृष्णा त्याग कर सच्चा त्यागी बन जाता है तो उसके पैरों में पड़ते हैं और उसकी चरण-रज को मस्तक पर धारण करते हैं। यह व्यक्ति का नहीं, त्याग का ही माहात्म्य है। त्याग की परिपूर्णता इस बात में है कि जिस वस्तु का त्याग किया जाय उसकी मन में आकांक्षा भी न हो।

श्रीदशवैकालिक सूत्र में त्यागी के विषय में कहा है—

जे य कंते पिये भोगे लद्धे वि पिट्ठिकुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ॥

अर्थात्—जो पुरुष इच्छित और प्रिय भोग प्राप्त होने पर भी उनसे विमुख हो जाता है—और स्वेच्छा से उन भोगों का त्याग करता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है। विवश होकर लाचारी से किसी वस्तु का त्याग करना त्याग नहीं है। ऐसा त्याग तो सभी को एक दिन करना ही पड़ता है। मगर वह त्याग सच्चा नहीं है सच्चा त्याग मन को मारना हैं। जिसने जिस वस्तु से स्वतन्त्रता पूर्वक मन हटा लिया, वही उस वस्तु का त्यागी कहलाता है। ऐसे त्यागी के सामने देवता भी झुकते हैं।

एक लड़के को चोरी की आदत थी। वह किसी की कुछ और किसी की कुछ चीज चुरा लाया करता था। एक बार कुछ लोग आपस में बातें कर रहे थे कि चोरी की जाय तो बड़ी की जाय, छोटी छोटी चीजें चुराने से क्या लाभ है। यह तो गुनाह बेलज्जत है उस लड़के ने यह बात सुन ली। तब उसने सोचा बात तो ठीक है हाथ गहरा ही मारना चाहिए। अब की बार राजा के महल में जाकर हाथ साफ करू ! सचमुच ही वह लड़का दिन में मजदूरों के साथ महल में घुस गया और शाम को वहीं छिप कर रह गया।

रात्रि के समय राजा और रानी महल में सोने आये। रानी ने लाखों रुपयों की कीमत के अपने गहने उतार कर मेज पर रख दिये। रानी लेट गई और राजा भी लेट गया। मगर राजा को नींद नहीं आई। तब रानी ने पूछा-क्यों आज नींद क्यों नहीं आ रही है ? राजा ने भी पूछा—और तुम्हें क्यों नहीं आ रही है ? रानी ने कहा—आखिर किस कारण नींद नहीं आया करती है ? तब राजा बोला-नींद न आने के नौ कारण है।

नीन्द न आवे नौ जणा,
कहो ठाकुरां कुणा कुणा।
कुंआरा कुलहीणा,
मोटी बेटी माथे ऋण घणा।
पेट में भूख मारग माथे चणा,
मार में खेत माथे वेरी रोग लागा घणा घणा
नीन्द न आवे नौ जणा

चोर राजा—रानी की बातें छिपा-छिपा सुन रहा है। सोचता है—कब इन्हें गहरी नींद आवे और कब मैं गहने उठा कर चम्पत होऊँ!

राजा ने कहा—रानीजी, जो अविवाहित हो और उम्र ज्यादा हो जाय तो फिक्र के मारे उसे नींद नहीं आती। कुलहीन को भी नींद नहीं आती। बेटी बड़ी हो जाय और उसके विवाह का कहीं ठिकाना न बैठे तो भी नींद हराम हो जाती है। कर्जदार की भी नींद भाग जाती है। जो बीमार हो, जिसका खेत ऊजड़ में हो और जिसका चने का खेत रास्ते पर हो, उसे भी नींद नहीं आती। इन कारणों में से एक कारण ऐसा है जिसने हमारी नींद हराम कर रक्खी है। अपनी लड़की बड़ी हो गई है और उसके संबध का अभी ठिकाना नहीं है। नींद आवे तो कैसे?

रानी ने सलाह दी—अमीर लड़का खोजने की क्या जरूरत है? किसी अच्छे फकीर को लड़की ब्याह दो और दस लाख का माल उसे दे दो। सारी चिन्ता दूर हो जायगी। राजा को यह बात पसद आगई। उसके दिमाग का बोझ कम हो गया। दोनों को नींद आ गई।

लड़के ने सोचा-इन गहनों को लेने से क्या लाभ है? कहीं पकड़े गये तो प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। राजा फकीर के साथ अपनी लड़की का विवाह करना चाहता है। मैं नवयुवक हूँ ही, फकीर क्यों न बन जाऊँ? राजा का दामाद बन गया तो पांचों अंगुलियां घी मे रहेंगी।

सुबह होने पर वह मजदूरों के साथ बाहर निकला। उसने फकीर का भेष बनाया और एक टेकरी पर जाकर ध्यान लगाकर

बैठ गया। दूसरे दिन राजा (बादशाह) ने सब फकीरों को जिमाने के लिए बुलाया। सब आये मगर वह नहीं आया। किसी ने राजा से इसके संबंध में चर्चा की। राजा ने इसे बुलाने के लिए विशेष आदमी भेजा, मगर इसने जाने से इंकार कर दिया। राजा ने स्वयं उसके पास जाने का विचार किया तो रानी ने भी साथ चलने की इच्छा जाहिर की। रानी बोली-ऐसे फकीर के दर्शन मैं भी करना चाहती हूं।

राजा-रानी फकीर के पास पहुँचे। कहा—चलिए साहब, सब पहुंच गये हैं और आपकी राह देखी जा रही है।

फकीर-नहीं, मेरी इच्छा नहीं है। आप लोग लौट जाइए।

राजा ने फिर आग्रह किया तो फकीर बोला-जानता हूं, जानता हूँ तेरे मन की बात ! मैं नहीं चलूंगा।

फकीर सोचने लगा—गहने त्यागे तो स्त्री और धन मिलेगा। अगर इनका भी त्याग कर दूंगा तो क्या परमात्मा नहीं मिल जायगा।

सचमुच उस लड़के में त्याग की भावना उत्पन्न हो गई। उसने राजा का जामाता बनने का भी लोभ त्याग दिया।

भाइयो ! त्याग की कहां तक तारीफ की जाय ? त्यागोगे तो सामने आकर खड़ा हो जायगा ! इसलिए त्याग करो और त्याग करके फिर ग्रहण करने की इच्छा मत करो। यह त्याग महान् धर्म है। इस धर्म का आचरण करने वाले जगत् में पूज्य बन जाते हैं और परलोक में भी महान् फल पाते हैं।

भगवान् ने फरमाया है कि आठवां धर्म तप है। जैनशास्त्रों में तप को उच्च स्थान दिया है। तप धर्म के दो भेद हैं बाह्य तप और अन्तरङ्ग तप। उपवास, बेला, तेला, चोला, पचोला, मास-खमण आदि करना; भूख से कम खाना, घी गुड़ तेल आदि को खाने का त्याग करना, काया को कष्ट देना आदि बाह्य तप कहलाता है। किये हुए अपराधों के लिए दंड लेना, विनय करना, सेवा करना, स्वाध्याय करना, ध्यान करना आदि अन्तरङ्ग तप हैं। अन्तरङ्ग तप की साधना के लिए बाह्य तप की खास आवश्यकता होती है और अन्तरङ्ग तप से आत्मा की शुद्धि होती है। इस प्रकार दोनों तरह की तपस्या आवश्यक है।

तप की व्याख्या बहुत विस्तृत है। उस पर पूरी तरह प्रकाश डालने का समय नहीं है। संक्षेप में इतना ही कहना है कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए तप अनिवार्य है। तपस्या की अग्नि में कर्म भस्म हो जाते हैं। तपस्या से संवर और निर्जरा दोनों की प्राप्ति होती है।

कई लोग समझते हैं कि तपस्या करना साधुओं का ही कर्त्तव्य है गृहस्थों को तपस्या नही करनी चाहिए। परन्तु यह समझ गलत है। क्या साधु और क्या गृहस्थ सभी के लिए तपस्या उपयोगी है। निष्कामभाव से, सिर्फ आत्मशुद्धि के वास्ते की जाने वाली तपस्या का फल महान् होता है, किन्तु सांसारिक प्रयोजन से भी यदि तपस्या की जाती है तो उसका फल भी मधुर होता है। देखो, जब रावण सीताजी को हरण करके ले गया था तो सीताजी ने प्रतिज्ञा ले ली थी कि जब तक राम-लक्ष्मण के समाचार नहीं मिलेंगे, मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगी। इस तपस्या

के प्रभाव से इक्कीसवें दिन ही हनुमानजी मुद्रिका लेकर उनकी सेवा में पहुँच गये।

अभी-अभी का ताजा उदाहरण ले लो। गांधीजी राजनीतिक कारणों से समय-समय पर अनशन किया करते थे। उनके अनशन करने पर क्या वायसराय और क्या भारतमंत्री, सभी घबरा उठते थे। अन्त में गांधीजी को ही सफलता मिलती थी। यह सफलता वास्तव में अनशन की सफलता थी। लौकिक प्रयोजन से की जाने वाली तपस्या का फल लौकिक मिलता है और लोकोत्तर प्रयोजन से तपस्या करने पर लोकोत्तर फल की प्राप्ति होती है। मगर तपस्या कभी निष्फल नहीं जाती।

आत्मशोधन के लिए तपस्या से बढ़कर कोई मार्ग नहीं है। अतएव अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सभी को तपस्या करना चाहिए।

नौवां धर्म अकिंचनता है। लोभ और तृष्णा का त्याग कर देने पर भी त्यागधर्म की आराधना होती है। त्यागधर्म जब पूर्णता को प्राप्त होता है तो वह अकिंचनता का रूप धारण करता है। संसार के किसी भी पदार्थ के साथ, किसी भी प्रकार का सरोकार न रखना, अपनी आत्मा को सब से जुदा और निराला समझना और सब प्रकार की ममता एवं आसक्ति को त्याग देना अकिंचन धर्म है। यह भी महान् धर्म है। इस धर्म को धारण करने वाला शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

दसवां धर्म ब्रह्मचर्य है। भगवान् महावीर स्वामी ने तथा संसार के अन्य समस्त महापुरुषों ने ब्रह्मचर्य को परम धर्म माना है। भगवान् ने कहा है—

तवेसु वा उत्तम बंभचेरं ।

अर्थात्—सभी तप उत्तम हैं, मगर ब्रह्मचर्य सब में उत्तम है ।

ब्रह्मचर्य से तन और मन बलवान् बनते हैं। ब्रह्मचर्य से आत्मा निर्मल होती है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से सब प्रकार की सिद्धियां होती हैं ब्रह्मचर्य बल, विद्या, बुद्धि प्रतिभा, तेजस्विता, स्वस्थता, दीर्घायु और सुख प्रदान करने वाला है।

जिसने ब्रह्मचर्य की महिमा नहीं समझी और इस कारण अपने वीर्य का दुरुपयोग किया समझ लो उसने अपने हाथों से अपने सिर पर कुल्हाड़ा चला लिया। उसने अपने जीवन को भ्रष्ट और नष्ट कर डाला। वह अपनी आत्मा का भयानक शत्रु है। अपने देश और समाज को भी वह हानि पहुँचा रहा है। वह निर्वीर्य पुरुष निकम्मा है। वह जीता है तो भी मृतक के ही समान है।

ब्रह्मचर्य की व्याख्या बहुत व्यापक है। पर उस व्यापक व्याख्या पर मैं आपको अभी नहीं ले जाना चाहता। फिर कभी इस विषय पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगा। यहां सिर्फ इतना ही कहता हूं कि अगर आप सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकें तो आप धन्य हो जाएँगे। इतना सम्भव न हो, अपने चित्त पर पूरा काबू नहीं पा सके हो तो कम से कम देश ब्रह्मचर्य का पालन तो प्रत्येक को करना चाहिये। प्रत्येक पुरुष को स्वस्त्री सन्तोष और प्रत्येक महिला को स्वपति सन्तोष का व्रत लेना ही चाहिये।

विजयकुमार और विजया सेठानी के उज्ज्वल चरित्र की तरफ देखो ! वे विवाह करके भी अखड ब्रह्मचारी रहे । राजीमती और अरिष्टनेमिजी का पावन जीवन आपके सामने है । जम्बूकुमार का उच्च आदर्श भी आपके समक्ष है । भाइयो ! कितने भाग्यशाली हो तुम कि तुम्हें ऐसे-ऐसे पवित्र चरित्र पढ़ने-सुनने को मिले है । इनसे प्रेरणा लो, इनका अनुकरण करो ।

भाइयो ! भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करने वालों को उनके बतलाये मार्ग पर चलना चाहिये । यही उनकी सच्ची उपासना है । भगवान् ने यह दस धर्म फरमाये हैं । जो विवेकवान् मतिमान् इन धर्मों का वास्तविक स्वरूप समझ कर पालन करता है, वह परमानन्द का भागी बनता है । आप इन धर्मों को धारण करेंगे तो आनन्द ही आनन्द होगा ।

जोधपुर
ता० २-६-४८



पुण्य-पथ



स्तुतिः—

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धाम्,
भक्त्या मया विविध वर्ण विचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥

भगवान ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे भगवन् ! कहां तक आपके गुण गाये जाएँ ?

प्रभो ! स्तोत्र रूपी यह माला मैंने भक्ति से प्रेरित होकर बनाई है। यह गुणों से बनी है। (गुण शब्द के संस्कृत भाषा में

दो अर्थ हैं (१) रस्सी या डोरा और (२) सतगुण। फूलों की माला डोरा से बनाई जाती है और स्तोत्र रूपी यह माला भगवान् के सद्गुणों से बनी है।) माला में भांति-भांति के रंगों के फूल होते हैं और इस स्तोत्र रूपी माला में नाना प्रकार के वर्णों (अक्षरों) का उपयोग किया गया है। जो पुरुष माला को अपने कण्ठ में धारण करता है उसकी श्री-सुन्दरता बढ़ जाती है। इसी प्रकार जो भद्र पुरुष इस स्तोत्र रूपी माला को कण्ठस्थ कर लेता है, उसे भी श्री लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

आचार्य महाराज ने यहां लक्ष्मी के लिए 'अवशा' विशेषण का प्रयोग किया है। 'अवशा' कहने का प्रयोजन यह है कि जो पुरुष शुद्ध अन्तःकरण से जिनेन्द्र देव की स्तुति करता है, उसे लक्ष्मी की कामना नहीं करनी पड़ती। लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए इधर उधर भटकना नहीं पड़ता। भगवान् की भक्ति से पुण्य की प्रबलता होती है और पुण्य की प्रबलता के कारण लक्ष्मी उसे स्वयं प्राप्त हो जाती है। विवश—लाचार होकर लक्ष्मी भक्त के पास आती है। भक्त उसकी कामना नहीं करता, फिर भी लक्ष्मी उसके पैरों में लोटती है। भगवान् का सच्चा भक्त भगवान् की ही आराधना करता है, उसका हृदय प्रभु को ही समर्पित होता है; परमात्मा ही उसका एक मात्र आराध्य है; फिर भी उसे लक्ष्मी घेरे रहती है।

इससे हम समझ सकते हैं कि लक्ष्मी की कामना करना लक्ष्मी को प्राप्त करने का साधन नहीं है। वास्तव में कामना करने से कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं होती। अगर आपका पुण्य आपका सहायक है तो उसके अनुरूप पदार्थ आपको मिल ही जाएंगे।

अगर पुण्य सहायक नहीं है तो हजार कामनाएँ करने पर भी वह पदार्थ मिलने वाला नहीं है।

इस सचाई को समझने के लिए संसार की तरफ नजर फिराने की आवश्यकता है। प्रतिदिन देखा जाता है कुछ लोग सुबह से शाम तक मिहनत करते हैं, चोटी से एड़ी तक पसीना बहाते हैं, फिर भी उन्हें भर पेट खाना तक नसीब नहीं होता। इसका कारण क्या है? कुछ लोग कहते हैं कि समाज की मौजूदा अर्थ व्यवस्था का ही यह दोष है। समाज की रचना का ही यह दोष है कि कुछ लोग एकदम गरीब और कुछ लोग एकदम अमीर हैं। इस विचार के कारण वे समाज व्यवस्था को बदल डालने की हिमायत करते हैं और प्रयत्न भी करते हैं। मगर यह एकान्त धारणा ठीक नहीं है। प्रत्येक कार्य के दो कारण होते हैं—बहिरंग कारण और अन्तरङ्ग-कारण। दोनों जब मिल जाते हैं तभी कार्य होता है। अमीरी और गरीबी में भी दोनों कारणों का विचार करना चाहिए। इसका बाह्य कारण अगर सामाजिक है तो अन्तरङ्ग कारण पुण्य-पाप भी है। जो पुण्य का उपार्जन करके आया है उसे अनायास ही लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है और जिसने पहले पुण्य नहीं कमाया है वह लाख प्रयत्न करने पर भी लक्ष्मी की कृपा प्राप्त नहीं कर सकता।

भाइयो! दो लखपति व्यापारी व्यापार करते हैं। एक किसी चीज को खरीदता है और दूसरा बेचता है। उनमें से एक को लाभ और दूसरे को हानि पहुँचती है। एक भिखारी बन जाता है और दूसरा करोड़पति हो जाता है। इसमें तो समाज व्यवस्था का दोष नहीं है। यह भेद किस कारण से होता है? असल में

अपना-अपना पुण्य और पाप ही काम आता है।

मतलब यह है कि लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए पुण्य की आवश्यकता है। पुण्य का उपार्जन भगवान् की स्तुति और भक्ति करने से होता है। जो भगवान् की भक्ति करेगा लक्ष्मी उसकी दासी बन जाएगी। अतएव लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए लक्ष्मी का दास बनने की आवश्यकता नहीं है। जो सम्पूर्ण रूप से भगवान् का दास है, लक्ष्मी उसी की दासी है। इसलिए हाय धन, हाय धन, करने से धन नहीं मिल सकता। धन पाना है तो भगवान् की भक्ति करो। मगर भूल मत जाना कि कामना भक्ति को कलुषित कर देती है। शुद्ध भक्ति निष्काम भाव से ही होती है। आप निष्काम भाव से भक्ति करेंगे तो लक्ष्मी प्राप्त करने का मार्ग आप ही खुल जायगा। वह आप ही आकर आपको खोज लेगी। जैसे परछाई से विमुख होकर आप चलते हैं तो परछाई आपका पीछा करती है, उसी प्रकार आप लक्ष्मी से विमुख होकर भगवद्-भक्ति करेंगे तो लक्ष्मी आपका पीछा करेगी। इसके विरुद्ध जैसे परछाई को पकड़ने के लिए दौड़ने वाला व्यक्ति कभी अपनी परछाई को नहीं पा सकता, उसी प्रकार लक्ष्मी—लक्ष्मी करने वाला और उसके पीछे-पीछे मारा-मारा फिरने वाला पुरुष लक्ष्मी नहीं पा सकता।

भाइयो! भगवान् की भक्ति में, स्तुति में ऐसा अनोखा आकर्षण है कि लक्ष्मी सहज ही खिंची चली आती है। आचार्य महाराज ने 'अवशा' विशेषण देकर यह बात स्पष्ट कर दी है।

स्तोत्र के इस पद्य में विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करने

वाला एक शब्द और है—अजस्रम! 'अजस्र' कहने का अभिप्राय यह है कि भगवान् के प्रति हृदय में निरन्तर भक्ति जागृत रहनी चाहिए। जैसे अपने प्रियजनों के प्रति सोते जागते, चलते फिरते-प्रत्येक क्षण प्रेम की वासना मौजूद रहती है, उसी प्रकार परमात्मा के प्रति प्रतिपाल भक्ति की वासना बनी रहनी चाहिए। प्रत्येक क्रिया करते समय भगवान् का स्मरण चित्त में बना रहेगा तो चित्त मे अपूर्व जागृति आ जायगी। उसमें मलिन भावनाओं को स्थान नहीं मिलेगा। जीवन पवित्र बनता चला जायगा।

कुछ लोग सोचते हैं कि संसार संबंधी व्यवहार करते समय परमात्मा को स्मरण रखने की आवश्यकता नहीं है। यह सोचकर वे परमात्मा को स्मरण करने के लिए थोड़ा सा समय अलग निकाल लेते हैं। शेष समय में उसे भूले रहते हैं। ऐसा करने वाले भाई भारी भ्रम मे है। कहना चाहिए कि ऐसा करने वाले परमात्मा के स्मरण की महिमा को नहीं समझे हैं और वे वास्तव में परमात्मा के भक्त नहीं हैं। क्या कभी सभव है कि आप चौवीस घटों में से तेईस घटे अपने प्रिय जनों को भूले रहें और सिर्फ एक घंटा ही उनका स्मरण करें? अगर कोई ऐसा करता है तो समझा जायगा कि वह प्रेम का दिखावा करता है, दरअसल उससे प्रेम नहीं करता। यही बात भगवत्स्मरण के विषय में समझना चाहिए। परमात्मा के प्रति जिसके हृदय में सच्ची भक्ति जाग उठेगी, वह क्षण भरके लिए भी परमात्मा को नहीं भूल सकेगा।

हमारे कहने का आशय कोई यह न समझ ले कि थोड़ा समय नियत करके भगवान् का भजन न किया जाय. नहीं, यह

मेरा अभिप्राय नहीं है। कुछ समय भगवान् के भजन के लिए अलग निकालना ही चाहिए, मगर दूसरे समय में भी भगवान् को भूल नहीं जाना चाहिए। यही हमारे कथन का अभिप्राय है और यही बात आचार्य महाराज ने अपनी स्तुति में दिखलाई है।

इस पद्य में भगवान् की स्तुति की महिमा बतलाई गई है। भगवान् की स्तुति की महिमा का गान करना भी एक प्रकार की स्तुति ही है। भाइयो ! इस महिमा को समझो और भगवान् की स्तुति में अपने मन को लगाये रहो तो आपका इहलोक और परलोक–दोनों सुधर जाएँगे।

स्तुति में बतलाया गया है कि भगवान् की स्तुति करने वाले को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। मगर जानना चाहिए कि लक्ष्मी किसे कहते हैं ? प्रायः लोग रुपये-पैसे को ही लक्ष्मी समझते हैं। मगर लक्ष्मी दो प्रकार की है–(१) द्रव्य लक्ष्मी और (२) भाव लक्ष्मी। रुपया, पैसा, महल, मकान, राज्य, आभूषण आदि पौद्गलिक सम्पत्ति द्रव्य लक्ष्मी कहलाती है और आत्मा के स्वाभाविक गुण–ज्ञान आदि–भाव लक्ष्मी है।

द्रव्य लक्ष्मी से दुनियादारी के काम चलाने में सहूलियत होती है और उसका सदुपयोग करके पुण्य का उपार्जन भी किया जा सकता है किन्तु साथ ही उसमें खतरे भी बहुत हैं। वह लक्ष्मी मनुष्य को बेभान बना देती है। अहंकार उत्पन्न करती है, ममता मूर्छा उत्पन्न करती है और स्वार्थपरायणता का भाव जगाती है। किसी कवि ने कहा है:—

बधिरयति कर्णविवरं, वाचं मूकयति नयनमन्धयति।
विकृतयति गात्रयष्टिं, संपद्रोगोऽयमद्भुतो राजन् ! ॥

कवि बड़े फक्कड़ होते हैं। उन्हें राजा या किसी सेठ-साहूकार की परवाह नहीं होती। ऐसा ही एक कवि किसी राजा से कहता है—हे राजन्! सम्पति का रोग बड़ा ही भयानक होता है। अन्यान्य रोग तो प्राय: एक-एक ही विकार उत्पन्न करते हैं, मगर लक्ष्मी का रोग एक साथ अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है। जिसे धन की बीमारी हो जाती है, वह कानों से बहिरा हो जाता है मुँह से गूँगा हो जाता है, आंखों से अन्धा हो जाता है, और उसकी तमाम इन्द्रियां विकारग्रस्त बन जाती हैं।

मतलब यह है कि सपत्ति की बीमारी मनुष्य को हृदयहीन बना देती है। सम्पत्तिशाली के पड़ोसी के बालक भूख से कराह रहे हों तो वह उनकी परवाह नहीं करता। उनकी दुख-दर्द भरी आवाज इनके कानों तक नहीं पहुंचती। उसके चित्त पर उसका कुछ भी असर नहीं होता। यह बहिरापन नहीं तो क्या है।

धन के मद मे उन्मत्त बना हुआ मनुष्य गरीबों की बात भी नहीं करता। उनसे बोलने में वह अपनी बेइज्जती समझता है। यही धनवान् का गूंगा होना समझना चाहिए। धनी आदमी कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के मार्ग को नहीं देखता, नीति और अनीति का पथ उसे नहीं सूझता; वह दीन दुखियों की तरफ दृष्टि भी नहीं डालता, यही उसका अन्धापन है।

यहां एक बात का ध्यान रखना चाहिए। जो लोग श्री-सम्पन्न होने पर भी भगवान् के भक्त होते हैं, उन्हें यह संपद्-रोग नहीं होने पाता। भक्ति का अमृत-रसायन उसके रोगों को शमन करता रहता है। इस प्रकार लक्ष्मी के होते हुए भी जो लक्ष्मी के मद से रहित हैं, वे इस रोग से बचे रहते हैं।

लोगों का खयाल है कि संपति से ही सुख प्राप्त होता है और सम्पत्ति के बिना सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह खयाल भ्रममात्र है। विचार करने से विदित होगा कि वास्तव में सम्पत्ति अगर थोड़ा-सा सुख देती है तो दुःख भी बहुत देती है। कहा भी है—

धनं तावदसुलभं, लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते।
लब्धनाशो यथा मृत्युस्तस्मात्तन्न चिन्तयेत् ॥

प्रथम तो धन की प्राप्ति बड़ी कठिनाई से होती है। धनोपार्जन करने के लिए लोगों को हजारों तरह की मुसीबतें और परेशानियां सहन करनी पड़ती हैं। कोई भूख प्यास का कष्ट सहन करते हैं, सर्दी-गर्मी बरदास्त करते हैं, कोई समुद्र यात्रा करते हैं, कोई गांव-गांव में घूमते हैं, कोई जंगलों में भटकते हैं, कोई खतरनाक खानों में काम करते हैं और कोई फौज में भर्ती होकर प्राणों को हथेली पर लिये फिरते हैं। तब कहीं धन प्राप्त होता है। इस प्रकार अनेक दुःख सहन करने के पश्चात् प्राप्त हुए धन की रक्षा की चिन्ता चित्त को व्याकुल बनाये रखती है। धन के स्वामी को पद-पद पर भय और आशंका बनी रहती है। बात ठीक भी है—

यथाऽऽमिषं जले मत्स्यैर्भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि।
आकाशे पक्षिभिश्चैव, तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥

जैसे मांस का लोथड़ा पानी में डाला जाय तो उसे मत्स्य खा जाते हैं, जमीन पर हो तो हिंसक जानवरों से नहीं बच

पाता, और कदाचित् आकाश में हो तो पक्षी उसे नहीं छोड़ते। मांस किसी भी जगह सुरक्षित नहीं रहता। यही हालत धनवान् की होती है। वह किसी भी जगह सुरक्षित नहीं है। सर्वत्र खतरा ही खतरा है।

दायादा स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो—
दूरेणच्छलमाकलय्य हुतभुग्भस्मीकरोति क्षणात।
अम्भः प्लावयते क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ति ध्रुवम।
दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग्-धिग् धनं तद्बहु॥

सम्पति के हकदार धन की इच्छा करते रहते हैं, चोर मौका देखकर चुरा ले जाता हैं, राजा किसी बहाने से लूट लेता है, आग लग जाय तो पल भर में सारा धन भस्म हो जाता है, बाढ़ आजाने पर वह जाता है, जमीन में गाड़ कर रख दिया जाय तो यक्ष हरण कर लेते हैं। इन सब से प्रयत्न करके किसी प्रकार बचाने की कोशिश की जाय तो घर के लड़कों से वह नहीं बच पाता। लड़के जुवारी, शराबी या दुराचारी हुए तो वे उसे समाप्त कर डालते हैं।

मतलब यह है कि कठिनाइयां झेल-झेल कर कमाये हुए धन की रक्षा करने में भी सैकड़ों कठिनाइयां हैं। धन को बचाने के लिए बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। इतने कष्ट उठाने पर भी अन्त में वह चला ही जाता है। अभी बतलाये हुए रास्तों में से किसी न किसी रास्ते से वह जब चला जाता है तो धनवान् के चित्त में असीम वेदना होती है। धन का जाना प्राणों का जाना मालूम होता है इस प्रकार धन हर हालत में दुःखों को उत्पन्न करता है।

कदाचित् प्रबल पुण्य का उदय हुआ और सम्पत्ति बनी रही तो भी जिंदगी के अन्त में तो उसे त्यागना ही पड़ता है। जीव के साथ वह परलोक में नहीं जाती। परलोक में उस छोड़ी हुई सम्पत्ति से कुछ भी लाभ नहीं उठाया जा सकता। बल्कि उसका संचय करने में जो पापों का बंध हुआ है, उसके फल स्वरूप दुःख ही भोगना पड़ता है। अतएव यह स्पष्ट है कि द्रव्य-लक्ष्मी न एकान्त सुख देने वाली है न सदा सुख देने वाली है। अलबत्ता, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ सम्पत्ति का सदुपयोग किया जाय, दान-पुण्य में उसका व्यय किया जाय, दीन-हीन जनों की सहायता की जाय, उसे विद्या और धर्म के प्रचार में लगाया जाय, तो वह सुख के द्वार को खोल देती है। मगर उसे सत्कार्य में लगाने की बुद्धि तभी उत्पन्न होती है, जब भगवान् के प्रति हृदय में भक्ति और श्रद्धा हो।

दूसरी भाव लक्ष्मी आत्मिक सम्पत्ति है। वह सदैव आत्मा में रहती है। उसे बाहर से लाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे प्राप्त करने के लिए सिर्फ इतना करना पड़ता है कि आत्मा पर पड़े हुए पर्दों को प्रयत्न करके हटा दिया जाय। यह सम्पत्ति एकान्त सुख देने वाली है और सदैव सुख देने वाली है। परलोक में भी वह साथ देती है। वह अनन्त और अक्षय आनन्द प्रदान करने वाली है।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करने से, उनके पवित्र नाम का स्मरण करने से दोनों प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है। भगवान के भजन के प्रभाव से विष रूप द्रव्य सम्पत्ति भी, शुद्ध किये हुए विष के समान अमृत का काम देती है।

भाइयों ! इस विवेचन से यह समझ लेना चाहिए कि लक्ष्मी को प्राप्त करने का मार्ग क्या है ? अगर आपने पाप का मार्ग ग्रहण न करके, भक्ति का, धर्म का मार्ग ग्रहण किया तो आपका कल्याण होगा।

भगवान् के भजन, स्मरण या स्तवन का अर्थ क्या है ? जीभ से ऋषभदेव ऋषभदेव रट लेना ही भगवान् का सच्चा भजन नहीं है, मगर उनके द्वारा बतलाये हुए पथ पर चलना भी आवश्यक है। अन्तःकरण से भगवान् के पथ को हितकर समझ कर उस पर यथा शक्ति चलने से ही कल्याण होता है। इस प्रकार ईश्वर बनने के लिए ही ईश्वर को याद किया जाता है। शास्त्रों में कहा है कि अरिहंतों का गुणग्राम करता हुआ जीव कर्मों की कोटि खपाता है और उत्कृष्ट रसायन आवे तो तीर्थंकर गोत्र बंधता है। भगवान् के गुण गाना ही भगवान् बनना है।

भाइयो ! सिद्ध भगवान् के गुणों को अपने हृदय में स्थापित करो। आचार्यों की भक्ति करो। त्याग करो, तप करो, विनम्रता धारण करो, निरतिचार शील का और व्रतों का पालन करो सदैव ज्ञान का अभ्यास किया करो, इत्यादि बीस बोलों के सेवन से तुम्हें भी तीर्थंकर गोत्र की प्राप्ति हो सकती है। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने बहुत धर्म-दलाली की थी, धर्म की प्रभावना की थी, जीवों की रक्षा की थी और पूर्व जन्म में ६६ लाख मासखमण की तपस्या की थी। अतएव आगामी उत्सर्पिणीकाल में वे भी एक तीर्थङ्कर होंगे।

कहने का आशय यह है कि श्रद्धा भक्ति और भावना के साथ करनी भी होनी चाहिए। जो रोज भगवान् का भजन करता

है उसे कभी तो कुछ आगे बढ़ना चाहिए। प्रतिदिन व्याख्यान सुना करते हो तो कभी उसका अमल भी करोगे या नहीं? लड़का स्कूल जाता है। वह साल भर तक अगर क, ख ग घ, ही सीखता रहे और कभी आगे बढ़ने का अभ्यास ही न करे तो वह कैसे विद्वान् बन सकता है?

कई लोग कहते हैं-महाराज! हमने भजन किया लेकिन उससे कुछ नहीं होता है। अरे हो क्या, तुम्हारी नीयत तो ठिकाने ही नहीं है। जरा ऊँचे चढ़ो। अगर दूसरी, तीसरी सीढ़ी पर पैर नहीं रक्खोगे तो ऊपर कैसे चढ़ सकोगे? आपने कितने ही व्याख्यान सुन लिये पर कभी उनके मुताबिक चलने का संकल्प भी किया? कोशिश की? पहले के महापुरुष केवल एक ही व्याख्यान सुनते थे और उन्हें वैराग्य आजाता था। वे अपना कल्याण कर लेते थे। आपको कितने व्याख्यान सुनते हो गये? अब तो आगे बढ़ो। दरवाजे के बाहर ही खड़े रहोगे तो जमीन में शरीक नहीं हो सकोगे। कोई साधु भी हो गया और सोचने लगा कि हमें तो स्वर्ग या वैकुण्ठ मिल जायगा! अरे, स्वर्ग तो अनन्त बार मिल चुका है। स्वर्ग पा लेने के पश्चात् फिर वही पहले वाली स्थिति आ जाती है। इसलिए साधुओं को मैं कहता हूँ कि इससे भी आगे बढ़ो। तरक्की करो। लोग कहते हैं कि तरक्की का जमाना है। मगर तरकी कहां नजर आती है? बुराइयों की अलबत्ता तरक्की हो रही है। भाइयो, तुम दान देते हो तो उसमें तरक्की करो, शील पालते हो तो तरक्की करो। काया से शील पालते हो तो अश्लील शब्द न कहकर वचन से भी शील पालो, मन में बुरे विचार न करके मन से भी शील का पालन करो। मन, वचन और काय से शील का पालन

करोगे तो शरीर का राजा कभी नष्ट नहीं होगा। ब्रह्मचर्य क्या छोटी चीज है ? ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करने पर भी चमत्कार न हो तो बात ही क्या है ? द्रौपदी कैसी भावना रखती थी कि उसका चीर बढ़ गया ? कहो उसकी आत्मा कितनी ऊँची होगी ? सुदर्शन सेठ के लिए शूली का सिंहासन क्यों बन गया ? उस पर देवता का भी जोर नहीं चला। और अरणक श्रावक मे भी क्या ताकत थी कि देवता ने बीच समुद्र में जहाज उठा लिया और अरणक से कहा कि धर्म छोड़ दे, अन्यथा जहाज को उलटा कर दूंगा, फिर भी वह टस से मस नहीं हुआ। उसने कहा-मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकता-मैं धर्म का परित्याग नहीं कर सकता। सचमुच ही देवता को उसके आगे हार माननी पड़ी।

अब तुम अपना हिसाब भी तो बताओ कि तुमने क्या तरक्की की है ? पहले सामायिक करते थे, अब उसमें भी नागा करने लगे हो ? दिनों दिन उलटे मार्ग पर जा रहे हो ! भाई, यह तुम्हारी भलाई का चिह्न नहीं है। तरक्की करो। अपना सकल्प दृढ़ करो; जैसे हरिश्चद्र ने किया। क्या हरिश्चन्द्र राजा को अपने पोजीशन का खयाल नहीं था ? क्या उनमें अक्ल नहीं थी कि सत्य के लिए चाण्डाल की नौकरी स्वीकार की।

भाई, निश्चय समझो तरक्की किये बिना काम नहीं चलेगा। देखो चमड़े ने भी कितनी तरक्की कर ली है कि पहले पैरों मे था और आज टोपों मे लग कर सिर पर आ गया है। तुम अपनी आत्मा की तरक्की करो। जो सद्गुण हों उन्हें बढ़ाओ।

याद दिलाता हूं, यह बड़ा मूल्यवान् वक्त मिला है। पूर्व

जन्म के पुण्य से ही यह अपूर्व अवसर तुम्हारे हाथ लगा है। पुण्य करके आये हो तभी आगे आकर बैठे हो ! अब फिर तरकी करो। जरूर करणी करो। मत खयाल करो कि हम लखपति या करोड़ों के मालिक हो गये हैं, अब हमें क्या करना है ? किन्तु यह सोचो कि किस कारण से तुम्हें यह स्थिति प्राप्त हुई है ? यह सोचोगे तो आगे की सही राह मिल जायगी और अपने अगले जन्म को सुधार सकोगे।

किस कारण जीव ऊँचे दर्जे पर चढ़ता है ? पुण्य के योग से ही जीव को ऊँचा दर्जा मिलता है। कल दस धर्मो पर थोड़ा-सा विवेचन किया था, आज नौ प्रकार के पुण्य का जिक्र करता हूं। ठाणांग सूत्र के नौवें ठाणे में नौ प्रकार के पुण्य बतलाये हैं:—(१) अन्नपुण्य (२) पानपुण्य (३) लयनपुण्य (४) शयनपुण्य (५) वस्त्रपुण्य (६) मनःपुण्य (७) वचनपुण्य (८) कायपुण्य और (९) नमस्कारपुण्य।

अन्न, पानी, स्थान, शय्या और वस्त्र का दान करने से प्रारम्भ के पांच पुण्य होते हैं। इस प्रकार पुण्य का प्रधान कारण दान है। दान देने वाला पुरुष अभयदान एवं सुपात्र दान देता हुआ मोक्ष में भी जा सकता है। किसी वस्तु पर से अपनी ममता उतार कर स्व-पर-कल्याण के लिए उसे अर्पित कर देना दान कहलाता है। दानधर्म की महिमा बड़ी विशाल है।

चौवीस तीर्थङ्करों में दसवें तीर्थङ्कर शीतलनाथजी हुए है। वे भी पहले राजा थे। लेकिन राजा और रानी ने राज्य छोड़ कर तपस्या की और केवल ज्ञान पाया। वे भी इसी भारत

भूमि में विचरे और उपदेश देते थे। उन्हीं भगवान् के पधारने पर:—

भद्दलपुर के बाग में, होके भवियन समोसरे प्रभु आन।
देवे जिनवर देशना, होके भवियन, सुनियो धरके ध्यान॥
दान नित्य दीजिए, होके भवियन, कहे शीतल भगवान॥

भद्दलपुर उस समय बड़ा भारी शहर था। एक बार विहार करते-करते भगवान् इस शहर के बगीचे में पधारे। देवों ने समवसरण की रचना की। उसमें देवियां, देव, राजा, सेठ, साहूकार, साधारण नर और नारियां आई और नमस्कार करके यथा स्थान बैठ गई। भगवान ने उपदेश फरमाया:—

सब दानों में श्रेष्ठ है होके भवियन, सुनियो धर कर ध्यान।
समकित में चायक कहीं, होके भवियन ज्ञान में केवल ज्ञान॥

भगवान् फरमाते हैं—हे भव्य जीवो! सब दानों में एक तो अभयदान और दूसरा सुपात्रदान श्रेष्ठ है। समकितों में चायिक समकित और ज्ञानों मे केवलज्ञान श्रेष्ठ है।

भय या सङ्कट में पड़े हुए जीव को भय से मुक्त करना और सङ्कट से बचा लेना अभयदान कहलाता है। मरते हुए जीव को बचा लेना अभयदान है। अभयदान सात प्रकार का है। किसी को भय होने पर उसे भय से बचाना, कोई हैरान परेशान हो रहा हो तो उसे हैरानी परेशानी से छुड़ाना, कोई यकायक चौंक उठे तो उसे तसल्ली देना, इहलोक और परलोक भय से छुड़ाना, किसी को कोई चीज लेने में कष्ट हो रहा हो तो उसे

सहारा देना, कोई लोक निन्दा से भयभीत होकर, जहर खाकर मरने को तैयार हो रहा हो तो आश्वासन देकर बचाना, कोई आदमी चोर नहीं है—उसने चोरी करने में सहयोग भी नहीं दिया है, लेकिन किसी ने उसकी इज्जत पर धब्बा लगा दिया हो तो उसकी मदद करना, किसी की नौकरी छूट गई हो और उसके बाल-बच्चे भूखे मर रहे हों तो प्रयत्न करके उसे नौकरी पर लगाना, कोई नादारी से व्याकुल हो और वह एव उसके परिवार वाले कष्ट में हों तो गुप्त रूप से उसकी सहायता करना, आदि सब कार्य अभयदान के अन्तर्गत हैं।

अब आपको विचार करना चाहिये कि आप इनमें से कौन-सा अभयदान देते हैं? कभी किसी को दिया भी है या नहीं? तरक्की की या अब तक क, ख, ग, घ की श्रेणी में ही बैठे हैं? कभी बकरे को बचा भी लिया होगा लेकिन मनुष्य को भी बचाया करो। आपका बड़प्पन किस काम का है? घोड़े की पूंछ बड़ी होती है पर वह अपनी ही मक्खियां उड़ाती है। अगर आपने अपने पड़ौसी का भी भला नहीं किया तो आपके बड़प्पन का क्या महत्त्व है? जंगल के पेड़ की तरह पैदा हुए, जिन्दा रहे और नष्ट हो गये, तो किस काम के? आपने जीवन का क्या लाभ लिया? बहुत से लोग कहते हैं—महाराज, मैं जनम का दुखिया हूँ। ऐसे लोगों से सुखियों को शिक्षा लेनी चाहिए। जो दूसरों को सुख पहुँचाएगा वही सुखी होगा। दुख देने वाला दुख भोगेगा। कहावत है—इस हाथ दे उस हाथ ले! जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। जिसने किसी को सुख नहीं दिया वह कहां से सुख

पाएगा ? अरे ! रात-दिन लवण समुद्र बहा रहा है, कभी गंगाजी की भी लहर लाया है ?

हां तो शीतलनाथ भगवान् ने उपदेश में फरमाया:-

मिलती लक्ष्मी दान से, हो के भवियन,
अभय से पद निर्वान ।
बोवे जैसा ही मिले, हो के भवियन ।
मान दिया सन्मान ॥

भाइयो ! भगवान् फरमाते हैं—हाथों से दान दोगे तो सम्पत्ति मिलेगी और अभयदान दोगे तो केवलज्ञान और मोक्ष मिलेगा। खेत में जैसा बीज बोओगे वैसी ही फसल पाओगे। चने बो कर गेहूं की फ़सल नहीं काट सकते हो। अभयदान दोगे तो तुम्हें भी अभय की प्राप्ति होगी। अगर आप किसी से कहोगे-पधारिये, तो अवसर आने पर वह भी आपका आदर करेगा। दूसरे से अकड़ कर बात करोगे तो दूसरा आपको कब पूछेगा ? अरे कुछ भी नहीं कर सकते हो तो कम से कम वचन में तो दरिद्रता मत धारण करो। मीठे वचन बोलने में तुम्हारा क्या खर्च होता है ?

वचनों का दरिद्रता ?

सुपात्रदान का फल सर्वोत्कृष्ट होता है। समस्त प्रकार के आरंभ-परिग्रह के त्यागी, संयममय जीवन यापन करने वाले मुनिराज उत्कृष्ट पात्र हैं। उन्हें आहार आदि का दान देने से उत्कृष्ट फल की प्राप्ति होती है। व्रतवान् श्रावक मध्यम पात्र हैं।

और सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र हैं। इन्हें दान देने से अपेक्षाकृत अल्प पुण्य की प्राप्ति होती है। करुणा की दृष्टि से जीव मात्र दान का पात्र है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी करुणादान के पात्र हैं। रिश्तेदार या मित्र आदि को भोजन कराना धार्मिक दान नहीं, पर लोक-व्यवहार है। आज आप जिसे भोजन कराते हैं, कल वह आपको भोजन कराता है। धन्नाजी और शालिभद्रजी को असीम वैभव और धर्माराधन की सद्बुद्धि सुपात्र को आहारदान देने से ही प्राप्त हुई थी। आहारदान देकर ही उन्होंने संसार के सर्वोत्तम सुख भोगे और अन्त में आत्म-कल्याण किया। दूसरा है-पानी देना या पिलाना। बहुत से लोग अपनी करुणा भावना से प्रेरित होकर प्यासों को साता पहूंचाने के लिए प्याऊ खुलवाते हैं, कोई पशुओं का प्यास-कष्ट मिटाने के लिए खेलियां, भरवाते हैं। इस प्रकार उनकी साता पहुँचाने की भावना से उन्हें पुण्य फल प्राप्त होता है। साधुओं को अचित्त पानी वहरा कर उनके सयम में सहायक होने वाला उत्कृष्ट फल का भागी होता है।

तीसरा लयन है। लयन का अर्थ है - स्थान। मुनिराजों को निरवद्य स्थान देने से उत्तम फल होता है और थके-मांदे आने वाले मुसाफिरों को सराय धर्मशाला आदि के रूप में, निस्वार्थ भाव से स्थान देना पुण्य है। भारतवर्ष में प्राय: सभी बड़े-बड़े नगरों में उदार श्रीमत लोग धर्मशालाएँ बनवाते हैं। जनपुर के सेठ फूलचन्दजी ने अपनी अढ़ाई लाख लागत की हवेली इसी काम के लिए दे दी है।

चौथा शयन है। मुनियों को उनके योग्य बिछाने के उप-

करण देना उत्तम फल का सूचक है। सोने के लिए पाट आदि देना भी इसी उत्तम फल में शामिल है।

पांचवां पुण्य वस्त्र देना है। मुनियों को संयमनिर्वाह के वास्ते योग्य वस्त्र देना उत्कृष्ट निर्जरा है। बहुत-से गरीब बिना वस्त्रों के उघाड़े फिरते हैं। कड़कड़ाती हुई सर्दी में भी उन्हें तन ढँकने को वस्त्र नहीं मिलते। अखबारों में जब तब ऐसे समाचार प्रकाशित होते रहते हैं कि फलां जगह, सर्दी से अकड़ कर एक आदमी चल बसा। ऐसे दुखिया लोक आपकी दृष्टि में क्या नहीं आते हैं? दूसरी ओर अपने संबंध में आप विचार कीजिए। आपके पास पेटियां की पेटियां भरी पड़ी रहती है। कई जोड़े गर्म कपड़े और कई जोड़े ठंडे पड़े सड़ते रहते हैं। आप चाहें तो उनका तन ढँक सकते हैं। मगर किसे उनकी परवाह है? पुण्योपार्जन करने की यह भावना तभी उत्पन्न होती है जब कि पहले का कुछ पुण्य शेष हो।

यहां तक जो देने की वस्तु गिनाई हैं उनमें कुछ पैसे खर्च होते हैं, लेकिन आगे के कार्यों में पैसा भी नहीं खरचना पड़ता। अपने मन में गरीबों का भला सोचना भी पुण्य है और यह छठा मनःपुण्य है। वह पुण्य बड़ा जबर्दस्त है। देखो, दान दिया खाती ने और लिया बलभद्रजी महाराज ने, लेकिन अपनी मनोभावना शुद्ध रखने के कारण हिरण पांचवें देवलोक में गया।

जब कृष्ण ने शरीर त्याग दिया तो बलदाऊजी ने तप करना शुरु कर दिया। तप करते-करते वे महातपेश्वरी हो गये।

वे एक महीने में केवल एक बार ही भोजन करते थे। एक बार बलभद्रजी तुङ्गिया नगरी में आये।

मुनिराज मासखमण का पारणा करने के लिए तुङ्गिया नगरी में पधारे। वहां एक स्त्री पानी भरने के लिए, नगरी के बाहर कुए पर आई। उसका लड़का छोटा था। वह जिद करके उसके साथ चला गया। स्त्री घड़े में रस्सी का फंदा डालने की तैयारी करती है और उधर से मुनिराज बलभद्रजी का आगमन होता है। स्त्री की दृष्टि मुनिराज पर पड़ती है और वह सोचती है क्या ही अनूठा रूप है! ऐसा रूप कभी देखने का सौभाग्य ही नहीं मिला। इधर स्त्री मुनिराज को देख रही है और उधर घर लौटने की भी उसे जल्दी है। उसने असावधानी से घड़े के बदले लड़के के गले में फंदा डाल दिया। लड़के का गला रुँध गया और वह रो भी नहीं पाया। मुनिराज की ओर देखते-देखते उसने लडके को घड़े की तरह कुए में लटका दिया। अचानक मुनिराज की निगाह उधर चली गई थी। उन्होंने तत्काल स्त्री को रोक कर कहा—बहिन, यह क्या कर रही है? देख, बच्चे को कुए मे डाल रही है! तब स्त्री का ध्यान बच्चे की ओर गया। बच्चे को ऊपर खींचा। फंदा खोला। उस समय बलभद्र मुनि सोचने लगे—

बलदाऊजी सोचे मन में इणी परे रे
धिक २ हो जो मारो रूप रे ॥

बलभद्र मुनि विचारने लगे—मेरे रूप के कारण ही इस बालक को कष्ट उठाना पड़ा है। मेरा रूप बड़ा अनर्थकारी है! यह सोचकर उन्होंने जीवन पर्यन्त बस्ती में आने का त्याग कर

दिया। वहीं से जगल की ओर मुड़ पड़े। अब वे जगल में ही रहते हैं और तपस्या करते हैं।

मुनिराज की तपस्या के प्रभाव से जंगली जानवर भी प्रभावित हुए। उन्होंने एक दूसरे को मारना छोड दिया। यहां तक की शेर और हिरन भी मुनिराज के पास आपस में खेलने लगे। एक हिरन को तो जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसने अपने ज्ञान दे जाना कि पूर्व जन्म मे मैं भी साधु था। किन्तु साधुपना बिगाड़ देने के कारण हिरण हो गया हूं। उसने विचार किया कि बलभद्र मुनि की भक्ति करने से मेरा कल्याण हो जायगा।

मुनि के पारणा का दिन आ गया। हिरन ने देखा कि एक बढ़ई (खाती) इसी जगल में लकड़ियां काटने आया है और उसकी पत्नी भोजन लेकर आई है। वह मुनि के पास गया और उन्हें कुछ इशारा किया। तो मुनि उसके पीछे हो गये। हिरन मुनि को सीधा बढ़ई के पास ले गया। मुनि को देखते ही बढ़ई बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मुनिराज से भोजन लेने की प्रार्थना की। मुनिराज ने भोजन लिया, बढ़ई ने भोजन दिया! हिरन सोचता है, मैं मनुष्य होता तो मुझे भी मुनिराज को आहारदान देने का सौभाग्य प्राप्त होता।

सयोग की बात है कि इधर खाती ने दान दिया ही था कि जिस पेड़ के नीचे मुनि, बढ़ई और हिरन खड़े थे, उसकी एक मोटी डाली, तेज आंधी आ जाने के कारण टूट पड़ी। उसके टूट कर गिरने से तीनों की मृत्यु हो गई। तीनों जीव भावना शुद्ध होने के कारण पचम देवलोक में देव रूप से उत्पन्न हुए।

देतो भावे भावना, लेतो करे सन्तोष ।
वीर कहे सुन गोयमा, दोनों जासी मोच ॥

भाइयो ! मुनिराज बलभद्र अपनी कठिन तपस्या के प्रभाव से देवलोक में उत्पन्न हुए। बढ़ई सुपात्र को दान देने के कारण देवलोक प्राप्त कर सका। मगर हिरन को देवलोक क्यों प्राप्त हुआ ? न तो उसने तपस्या की थी और न दान दिया था। फिर भी उसके मन में दान देने की भावना उत्पन्न हुई। उसने शरीर से नहीं मन की भावना से दान दिया था। उसने मन से पुण्य उपार्जन किया था और इसी कारण उसे स्वर्ग प्राप्त हुआ। भावना में इतनी शक्ति है ! भावना के प्रभाव से केवल ज्ञान और मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है। अतएव जो बने सो करो और जो न बन सके उसके लिए भावना रक्खो तो आपका भी कल्याण होगा।

भावना की शुद्धि ही आत्मा की शुद्धि का प्रधान आधार है। किन्तु भावना की शुद्धि सरल बात नहीं है। किसी गरीब के लड़के की सगाई होजाय तो आप जल उठते हैं। उसे छुड़ाने के लिए कोशिश करते हैं। लड़के में कोई त्रुटि न हो तो भी कह देते हैं—इसे तो मृगी आती है ! किसी की नौकरी या व्यापार में तरक्की हो जाय तो भी आपका अन्तःकरण जल उठता है ! इस प्रकार भावना की मलिनता के कारण लोग व्यर्थ ही पापों का उपार्जन कर लेते हैं। भाइयो भावना को पवित्र बनाने में पैसे नहीं लगते, और किसी प्रकार की भी हानि नहीं उठानी पड़ती। फिर क्यों अपने चित्त को पवित्र नहीं बनाते। कोई किसी को

सहायता देता है तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है कि तुम उसके पास भागे-भागे जाते हो और कहते हो कि—'अरे दूसरे के झगड़े में पड़ने की क्या आवश्यकता है ? जिसने जैसा किया है आप ही भोगेगा !' इत्यादि कह कर अपनी भावना को मलिन करके क्यों अपने भविष्य को अन्धकार पूर्ण बनाते हो ? भावना को कदाचित् पवित्र नहीं बना सकते हो तो अपवित्र भी क्यों बनाते हो ? मन मे किसी का भला नहीं चाहते तो कम से कम बुरा तो मत चाहो। बिना पैसा-पाई खर्च किये मनःपुण्य का मार्ग तुम्हारे लिए खुला है। इससे ही अपना कल्याण कर लो।

सातवां वचनपुण्य है। वचन के द्वारा भी पुण्य उपार्जन किया जा सकता है और पाप भी कमाया जा सकता है। वचन के द्वारा दूसरे को सत्कार्य के लिए प्रेरित करना, किसी ने धर्म किया है तो उसकी प्रशंसा और अनुमोदना करना गुणी जनों के गुणगान करना, इत्यादि वचनपुण्य के उपाय हैं। ऐसे वचन बोलने से भी पुण्य की प्राप्ति होती है। इसके विरुद्ध सेठ परोपकार के लिए चन्दा देता है और मुनीम कहता है कि इतना रुपया क्यों खर्च करते हो। ऐसा कहने वाला मुनीम अपने वचनों का दुरुपयोग करने के कारण वृथा ही पाप का भागी होता है।

भले आदमी ! कोई देता है और कोई लेता है; इसमें तेरी क्या हानि होती है ? किसी ने किसी की सहायता कर दी तो तेरे बाप का क्या बिगड़ गया ? तू बीच में पड़कर वृथा ही पाप का उपार्जन करता है।

उज्जैन में वोहरा जाति के लुकमान भाई की एक बड़ी कपड़े की मील है। एक बार वहां तपस्वीजी की तपस्या का पूर था-अन्तिम दिन था। लुकमान भाई से कहा गया कि आज आपको मील बन्द रखना चाहिए। जिससे मील के मजदूर और कार्यकर्त्ता व्याख्यानश्रवण आदि का लाभ उठा सकें। साधुओं का व्याख्यान जगन्नाथ का भात है। सभी कौमों के लोग उसमें लाभ उठा सकते हैं।

लुकमान भाई बोले—'आपके जैनी की मील तो बन्द नहीं है!' तब उनके एक मुनीम ने कहा—'सेठजी, पहले वे बन्द करें और फिर आप बन्द करें, इसमें आपकी क्या बड़ाई है! पहले आप बन्द कर दीजिए, फिर दूसरी भी बन्द हो जाएगी।' मुनीम ने इस प्रकार कह कर वचन के द्वारा पुण्य उपार्जन कर लिया।

आठवां काय पुण्य है। शरीर से शुभ कार्य करना काय पुण्य कहलाता है। शरीर से किसी को आराम पहुंचाना, अन्धे का हाथ पकड़ कर उसे रास्ता दिखलाना आदि काय पुण्य है। शरीर क्षणभगुर है और मलिन है। पर इससे पुण्य का उपार्जन किया जा सकता है। फिर क्यों नहीं अपने शरीर को पुण्योपार्जन में लगाते हो?

नौवां नमस्कार पुण्य है। वीतराग भगवान् को संयमी पुरुषों को, विशिष्ट गुणवानों, विद्वानों को, तपस्वियों को उनके गुण के कारण यथायोग्य नमस्कार करना नमस्कार पुण्य है। गुणियों के प्रति आदर का भाव रखने से गुणों के प्रति प्रीति उत्पन्न होती है और जब गुणों के प्रति प्रीति जागृत होती है तो

उन्हें प्राप्त करने के लिए मन में प्रेरणा होती है। इस प्रकार गुणी-जनों को नमस्कार करने से गुण प्राप्त किये जा सकते हैं। शास्त्र में वन्दना करने के अनेक फल बतलाये हैं। गौतम स्वामी भगवान् से प्रश्न करते हैं:—

वंदणएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

अर्थात—हे भगवन् ! वंदना करने से जीव क्या पाता है ? अर्थात् जीव को किस फल की प्राप्ति होती है ?

भगवान् इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि:—

वंदणएणं नीयगोयं कम्मं खवेइ, उच्चगोयं निबंधइ, सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ, दाहिण भावं च णं जणेइ।

—उत्तराध्ययन सूत्र

अर्थात्—गुरुजनों को वन्दना करने से जीव को पहला लाभ तो यह है कि उसे नीच गोत्र कर्म का बंध नहीं होता। अगर पहले नीच गोत्र कर्म का बंध हो चुका हो तो वन्दना करने से उसका क्षय हो जाता है, इतना ही नहीं, वन्दना करने से सुभगनाम कर्म, उच्च गोत्र कर्म का बंध होता है। सब उसकी आज्ञा मानते हैं और उसे दाक्षिण्य की प्राप्ति भी होती है।

भाइयो ! गुरुवन्दना करने का इतना महान् फल शास्त्र में बतलाया गया है। वन्दना करने से अहंकार मिटता है और नम्रता आती है। इसमें पैसा-टका खर्च नहीं करना पड़ता। मगर वन्दना करने के लिए सिर्फ मस्तक नहीं किन्तु मन भी झुकना चाहिए। मन में भी नम्रता आनी चाहिए।

भव्य पुरुषों ! अगर तुम विवेकवान् हो तो विचार करो कि आज तुम्हें जो स्थिति प्राप्त हुई है, वह किसका प्रताप है ? तुम अगर लखपति हुए हो तो क्या यह तुम्हारे परिश्रम का ही फल है ? तुम्हारे नौकर-चाकर क्या तुम्हारी अपेक्षा अधिक परिश्रम नहीं करते ? यदि परिश्रम से ही लखपति बना जाता तो तुम से भी बड़े लखपति तुम्हारे नौकर होते। फिर भी थोड़ी देर के लिए मान लो कि तुमने अपने परिश्रम से ही लाखों की जायदाद पा ली है, मगर यह तो सोचो कि यह सर्वांगपूर्ण सब इन्द्रियों से परिपूर्ण मनुष्य-शरीर तुम्हें कैसे मिल गया ? तुम कीड़े-मकोड़े क्यों नहीं हुए ? मनुष्य हो कर भी अन्धे, बहिरे, लूले—लँगड़े क्यों नहीं हुए ? क्या यह सुन्दर, परिपूर्ण मानव-शरीर भी तुमने अपने परिश्रम से पाया है ? जैसे कुंभार घड़ा बनाता है वैसे तुम इस शरीर को बनाने कब बैठे थे ?

आखिर तुम्हें मानना पड़ेगा कि आज जो सुख—सामग्री तुम्हें मिली है, वह पूर्वोपार्जित पुण्य का ही प्रताप है। पुण्य के कारण ही तुम मालदार बने हो।

दक्षिण में एक मालदार सेठ था। उसके पांच लड़के थे और एक लड़की थी। उस सेठ की नौ खण्ड की हवेली थी। गर्मी की ऋतु थी। अतएव लड़की ने नौकर को आज्ञा दी मेरा बिछौना सब से ऊपर के खण्ड में करना। नौकर ने देर कर दी तो वह उस पर बुरी तरह चिढ़ी। नौकर को भी क्रोध आ गया। उसने कहा—ज्यादा करोगी तो मेरी नौकरी छुड़ा दोगी। पर इतना कहता हूं कि आप नौवां खंड-नौवा खंड करती हो, पर सासरे में नौवा खड कहां से आएगा ?

लड़की को बात चुभ गई। उसने निश्चय कर लिया कि विवाह करूंगी तो नौ खंड की हवेली वाले से ही करूंगी, नहीं तो कुंवारी रहूंगी।

सगाई की बातचीत चली तो लड़की ने अपनी मां से कहला दिया कि मैं नौ खंड हवेली वाले से ही विवाह करूँगी, अन्यथा नहीं। मां ने लड़की के बाप से कह दिया। सेठ ने सेवग को बुला कर कहा—जिसके यहां नौ खंड की हवेली हो, उसी के यहां सगाई कर आना। सेवग सारे दक्षिण में घूमा मगर नौ खंड की हवेली वाला कोई नहीं मिला। इस तरह छह महीने बीत गये। मगर बिना कार्य किये सेवग ने लौटना उचित नहीं समझा। वह नर्मदा पार करके उज्जैन में आया। वहां उसे एक हवेली ऐसी दिखलाई दी। सेवग ने देखा— टूटी-फूटी हवेली है। बुरी हालत में पड़ी है। उसमे कोई रहता भी नहीं है।

सेवग ने आस पास के लोगों से पता लगाया तो मालूम हुआ कि दो लड़के यहां से कुछ दूरी पर अपने मामा के घर रहते हैं। उन्हीं की यह हवेली है।

सेवग उन लड़कों को खोजता खोजता उनके गांव पहुँचा। गांव के पटेल से पूछा-यहां दो लड़के रहते हैं। वे कहां हैं? पटेल ने उनकी खोज करने का प्रयोजन पूछा। सेवग ने सारा हाल सुनाया। पटेल सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने कहा—लड़के खेत में काम करने गये हैं। यह कहकर उसे प्रेम से बिठलाया और भोजन आदि की व्यवस्था की। लड़कों को खेत से बुलवाया गया। सेवग ने बड़े लड़के की पुण्यवानी देखकर उसे रुपया नारियल दे दिया और सगाई पक्की हो गई। सगाई के समय पटेल ने

लड़कों के मामा को बुलवाया, पर वह नहीं आया। शादी का मुहूर्त्त पक्का हो गया।

शादी का समय अब नजदीक आ गया। पटेल ने मामा को बुलाकर कहा—ज्यादा नहीं तो दोनों लड़कों के लिए दो अँगरखियां तो बनवा दो ! मामा बोला—मेरे पास तो एक भी पैसा नहीं है। निरुपाय हो पटेल ने लड़कों के अँगरखियां बनवाई कुर्त्ते बनवाये और पगड़ी बँधवा दी। गाडी बैल और रास्ते में खर्च करने के लिए दस रुपये दे दिये। लडके जाने को तैयार हुए तो पटेल ने अपनी धौंस से ढोल बजाने वाले को बुलवाया। उसने ढोल बजाना शुरू किया। निकासी हुई। गांव की औरतों ने गीत गाये और उन्हें रवाना कर दिया।

उधर सेवग सगाई तय करके सेठ के पास पहुंचा। उसने कहा—नौ खण्ड की हवेली वाले से सगाई कर दी है। यह सुनकर सेठ प्रसन्न होकर विवाह की तैयारियां करने लगा। उसने बड़े बड़े राजाओं, रईसों और सेठ-साहूकारों को निमन्त्रण भेज दिये। लग्न का दिन नजदीक आ गया तो सेठ ने सेवग से पूछा-अभी तक बरात का कोई समाचार नहीं है। इसका क्या कारण है ? सेवग ने कहा—दूर देश का मामला है। बरात आती होगी। आखिर बैल-गाड़ी लेकर दोनों भाई जा पहुंचे। सेवग वहां मौजूद था। उसने चटाई बिछा कर दोनों को बिठलाया और सेठ से कहा-बरात आ गई है ! यह दूल्हा है और यह दूल्हा के भाई हैं। यह बैल-गाड़ी हैं। और बस यही सब खेल है।

सेठ के क्रोध का पार नहीं रहा। उसने सेवग स कहा-रे बेईमान ! यह क्या करके आया है ? सेवग पहले से ही इस

हालत का मुकाबिला करने को तैयार था। उसने कहा – सेठ साहब इनकी नौखंड की हवेली है।

मगर सेठ को सन्तोष नहीं हुआ। उसने सब आमन्त्रितों को सूचित कर दिया कि विवाह की तिथि आगे सरक गई है। अतएव इस तिथि पर कोई न आवे। सेठ को अपनी लड़की पर भी क्रोध आया। बोला इस अभागिनी छोरी ने मेरा नाम बदनाम कर दिया। क्रोध में आकर उसने उसी लड़के के साथ शादी कर दी और कहा-ले, अपने किये का फल भोग !

विवाह हो गया। तीनों बैलगाड़ी में बैठ कर रवाना हुए। सेठ ने दहेज में कुछ दिया नहीं था. लड़कों के पास थोड़े से पैसे बच गये थे। रास्ते में चलते-चलते छोटे भाई मोतीलाल ने कहा—भाई साहब, फिक्र न करना। पैसा नहीं मिला तो कोई परवाह नहीं। यह सोने की मूर्ति मिली है ! और फिर उसने पूछा— भाभीजी, आपका नाम क्या है ? उसने उत्तर दिया—'लक्ष्मी।' मोतीलाल बोला—गरीबों के घर लक्ष्मीजी पधारी है ! सौभाग्य है।

मोतीलाल एक जगह खाने को चने लेने जाने लगा। तब बड़े भाई हीरालाल ने कहा—अपनी भाभी के लिये पूड़ियां ले आना।

लक्ष्मी ने अपने हाथ की अंगूठी उतार कर देवर को देते हुए कहा—लो, इसे बेचकर सब के लिए पूड़ियां ले आना।

हीरालाल—अंगूठी दे तो रही हो, मगर फिर बनना कठिन है।

लक्ष्मी – कोई चिन्ता नहीं। हवेली तो नौ खंड की है न?

इस प्रकार चलते—चलते वे अपने गांव पहुँचे। पटेल को खबर दी गई। उसने बाजे वालों को बुलवाया। गाजे-बाजे के साथ तीनों ने पटेल के घर में प्रवेश किया। मामा और मामी को संदेश भेजा गया, पर दोनों में से कोई न आया। उन्होंने सोचा—अभी तक दो थे, अब तीन हो गये हैं! तीन का पेट पालना पड़ेगा।

आखिर वे तीनों मामा के घर पहुँचे। मामी ने सोचा—छाती पर यह नया बोझा आ पड़ा! दूसरे दिन सुबह होते ही मामी ने कहा— बहू, जाओ, पानी भर लाओ। लक्ष्मी ने जिंदगी में कभी एक लोटा भी नहीं भरा था; मगर परिस्थिति का ख्याल करके वह पानी भरने को तैयार हो गई। देवर ने मदद की तो पानी भरा गया।

यों तीन महीने बीत गये। एक दिन लक्ष्मी ने देवर से कहा—मुझे नौ खण्ड की हवेली तो दिखलाओ। देवर ने कहा—अब की बार हाट भरेगी तब चलेंगे। हाट के दिन वे दोनों सुबह जल्दी उठकर पैदल ही रवाना हुए। सूरज निकलने-निकलते उज्जैन आ पहुँचे। देवर लक्ष्मी को नौ खण्डी हवेली मे ले गया। हवेली की हालत बड़ी दयनीय थी। फिर भी उसे देखकर लक्ष्मी का हृदय हरा हो गया। उसने कहा—अब हम लोग यहीं रहेंगे। मैं दो हजार के अपने गहने देती हूं। इन्हें बेच कर दुकान कर लो और दोनों भाई यहीं रहो। आखिर यही निश्चय हुआ। दोनों भाई दुकान करने लगे।

एक दिन लक्ष्मी हवेली की सफाई कर रही थी। उसे एक जगह दीवाल कुछ आगे झुकी हुई मालूम हुई। उसने अपने देवर से कहा—इस दीवाल में इस जगह जरा टूंसा तो लगाओ! देवर बोला—ऐसा मत करो। पुरानी हवेली है, कहीं दीवाल गिर पड़ी तो मुश्किल हो जायगी। मगर लक्ष्मी को कुछ ऐसी जँची कि उसने बांस लेकर खुद ही उस जगह टूंसा लगाया। टूंसे लगते ही दीवार का अगला हिस्सा टूट पड़ा और उसमें से हीरे, पन्ने और मोती वगैरह जवाहरात गिरने लगे। बड़ा भाई भी वहां पहुँचा। देवर, भौजाई के पैरों पर गिर पड़ा। बोला—भाभीजी, सचमुच ही आप लक्ष्मी हैं। आप लक्ष्मी का अवतार हैं। यह सब आपके ही सौभाग्य का फल है।

पुण्य पाप के ये फल हैं, दुनियां जो पा रही है।
कहने की क्या जरूरत, प्रत्यक्ष दिखा रही है॥

अरे, पुण्य का फल तो आंखों दिखलाई दे रहा है। उसमें शंका करने की जगह ही कहां है!

दोनों भाई मालामाल हो गये। बढ़िया दुकान चलने लगी और हवेली की मरम्मत हो गई। यह सब देखकर इन लड़कों के बाप के जमाने का मुनीम आया। उसने आकर कहा—आज फिर दुकान जमी देखकर मेरे हर्ष की सीमा नहीं है। मैं एक जगह तुम्हारा धन और बतलाता हूं। अभी तक तुम दोनों छोटे थे। उस धन को सम्भाल नहीं सकते थे। इसी कारण मैंने नहीं बतलाया था। यह कह कर उसने दुकान का एक कोना खोदने के लिए कहा। वहा से भी बहुत सम्पत्ति निकली।

दोनों लड़के बड़े कृतज्ञ थे। जिन-जिनका उनके ऊपर उपकार था, उन सब को उन्होंने याद किया। मुनीम को फिर दुकान पर बिठलाया और सिर्फ बैठे रहने के पाच हजार रुपया वार्षिक देने लगे। मामा और मामी को बुलाया। मामी को बीस हजार का कण्ठा दिया और मामा को एक नवीन हवेली दे दी। पटेल को भी वे कैसे भूल सकते थे? उसे बुला कर उसका सत्कार किया, पांच हजार का एक घोड़ा और दस हजार रुपये नकद भेंट किये। इस तरह उन्होंने अपने ऊपर किये उपकार का बदला चुकाया।

भाइयो! तुम्हारे ऊपर भी किसी का उपकार है या नहीं? तुम्हें कोई धन कमा-कमा कर देता है या नहीं? तुम्हारी यह रईसी और सेठाई किसके सहारे खड़ी है? बेचारे गरीब और मजदूर दिन-रात एक करके तुम्हारी तिजोरियां भर रहे हैं। तुम्हारी रईसी उन्हीं के बल पर और उन्हीं की मेहनत पर टिकी हुई है। कभी कृतज्ञतापूर्वक उनका स्मरण करते हो? कभी उनके दुःख में भागीदार बनते हो? अपने सुख मे उन्हें हिस्सेदार बनाते हो? उनके प्रति कभी आत्मीयता का भाव आता है? अगर ऐसा नहीं होता तो समझ लो कि तुम्हारी सेठाई और रईसी लम्बे समय तक नहीं टिक सकेगी। तुम्हारी स्वार्थ-परायणता ही तुम्हारी श्रीमन्ताई को स्वाहा करने का कारण बनेगी। अभी समय है। गरीबों और मजदूरों और नौकरों की सुधि लो। उनके दुःखों को दूर करने के लिए हृदय में उदारता लाओ। उनकी कमाई का उन्हें अच्छा हिस्सा दो। इससे उन्हें सन्तोष होगा और उनके सन्तोष से तुम सुखी बने रहोगे।

कोई कह सकता है कि विना मिहनत किये धन मिल गया था, अतः उन लड़कों ने उसे उड़ा दिया। मगर जिसने आगे उड़ाया है उसे अब मिला है। जो अब नहीं उड़ाएगा अर्थात् दया और परोपकार के कार्य में खर्च नहीं करेगा उसे आगे नहीं मिलेगा।

दया और परोपकार के कार्य करते और सुखपूर्वक रहते वहुत दिन बीत गये। एक बार केसर की बालद आई तो उज्जैन में किसी ने नहीं खरीदी। तब इन्होंने हवेली के रिपयरिंग के लिए उसकी खरीद कर लेने का विचार किया। माल का स्वामी वहां मौजूद नहीं था; मुनीम था। मुनीम ने अपने सेठ को पत्र लिखकर बुलाया। सेठ लक्ष्मी का पिता ही था, पर उसे इन लड़कों का और लड़कों को सेठ का पता नहीं था। शिष्टाचार के नाते लड़के उस सेठ को अपने यहां ले गये। लक्ष्मी देखकर अपने पिता को फौरन पहचान तो गई, मगर उसने इस प्रकार प्रकट होना उचित नहीं समझा। सेठ जब भोजन करने के लिए ऊपर गया तो लक्ष्मी ने वही पीहर के दिये कपड़े पहन लिये। सेठ ने उसे देखकर सोचा यह तो मेरी ही लड़की लक्ष्मी मालूम होती है।

सेठ ने इधर उधर की बातचीत से पता लगा लिया। अन्त में सेठ ने कहा—बेटी, तू रत्नों की पेटी है। तेरी तकदीर बुलंद है! आखिर सेठ ने वह सारी केसर अपने जामाता को भेंट रूप में समर्पित करदी। जामाता ने कीमत चुकाने का आग्रह किया तो सेठ ने कहा—मैंने अपनी लड़की को दहेज में कुछ नहीं दिया है। यह केसर दहेज ही में समझलो।

वहां उन्हीं दिनों एक अवधिज्ञानी मुनिराज पधारे। सब लोग उनका उपदेश सुनने के लिए गये। लड़कों ने अपने सम्बन्ध

में प्रश्न किया तो मुनिराज ने कहा—पूर्वभव में तुम तीनों भाई, बहिन और स्त्री के रूप में थे। लक्ष्मी ने एक बार मुनि को दान दिया तो तुम दोनों ने उसके साथ झगड़ा किया। उस दान के प्रताप से लक्ष्मी ने क्रोडपति सेठ के घर जन्म लिया। तुमने दान के विषय पर झगड़ा किया, अतः तुम्हें बीच में कष्ट भोगना पड़ा। बाद में पड़ौसिन के समझाने पर तुमने भी उस दान की सराहना की थी, अतः नष्ट हुआ धन फिर तुम्हें प्राप्त हो गया।

सच है, पुण्य के बिना कुछ भी नहीं मिलता। भाइयो, अगर सुख चाहते हो तो सुख के उपाय करो, सुख प्राप्ति के मार्ग पर चलो। दुःखों के मार्ग पर चलोगे तो दुःख ही मिलेगा, सुख कहां से मिलेगा? इस बात पर तुम्हें भरोसा हो तो पुण्य करो, दया करो, परोपकार करो, सेवा करो, दान करो। दान देने से महान् लाभ की प्राप्ति होती है। कहा भी है:—

दीनको देने से होत दया पुनि, मित्र को देने से प्रीति बढावे,
वैरी को देने से वैर रहे नहीं, शायर को दिये कीरति गावे।
चाकर को दिये काम करे बहु, याचक को दिये आदर पावे;
साधुको देनेसे मोक्ष मिले सही,हाथको दियो वृथा नहीं जावे ॥

भव्यो! क, ख, ग, घ में ही मत पड़े रहो। तरक्की करो। यही तरक्की करने का उपयुक्त अवसर है। इस अवसर को गँवा दोगे तो पछताओगे और यदि अवसर से लाभ उठा लिया तो आनन्द ही आनन्द पाओगे।

जोधपुर
ता० ३-६-४८



वर्द्धमान महावीर



स्तुतिः—

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन्! आपकी कहां तक स्तुति की जाय? हे भगवन्! कहां तक आपके गुण गाये जाएँ?

हे महाप्रभो! आपका स्मरण करने से मनुष्य के समस्त सङ्कट दूर हो जाते हैं। जैसे—किसी को पागल हाथी मिल गया,

शेर मिल गया, जंगल में दावानल से घिर गया, सांप मिल गया, भीषण संग्राम का मौका मिल गया; समुद्र में जहाज फंस गया था, भयानक जलोदर की बीमारी हो गई, अथवा किसी कारण बधन में पड़ गया, तो इन सब कारणों से उत्पन्न हुआ उसका भय स्वयं डर कर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, जो मतिमान् आप की स्तुति करता है। ऐसे भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्हीं को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो ! पहले तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव हुए हैं और अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी हुए हैं। भगवान् महावीर, पार्श्वनाथ भगवान् के मोक्ष जाने से २५० वर्ष के बाद इस भूतल पर अवतरित हुए थे।

बिहार प्रान्त में कुण्डनपुर नामक शहर था। वहां राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम त्रिशला देवी था। राजा सिद्धार्थ का खानदान बहुत प्रतिष्ठित था। यद्यपि वे बहुत बड़े राज्य के स्वामी नहीं थे, फिर भी खानदान की प्रतिष्ठा के लिहाज से बहुत ऊँची श्रेणी के क्षत्रिय थे। जैसे—आजकल की जोधपुर और किशनगढ़ रियासतों को लीजिए। जोधपुर बड़ी रियासत है और किशनगढ़ छोटी है। किशनगढ़ रियासत के राजा यद्यपि विशाल राज्य के स्वामी नहीं, मगर खानदानी के लिहाज से बहुत ऊँचे समझे जाते हैं। उदयपुर के राणाजी के यहां किशनगढ़ वालों का विवाह सम्बंध हुआ है। इसी प्रकार राजा सिद्धार्थ का कुल बहुत ऊँचा और प्रतिष्ठित माना जाता था।

भगवान् पार्श्वनाथ के पट्टधर केशी श्रमण महाराज अपने ५०० शिष्यों के साथ, क्षत्रियकुंड नामक ग्राम के बाहर बाग में

पधारे। तब सब लोग स्वामीजी के दर्शन और उपदेश श्रवण करने के लिए गये। राजा सिद्धार्थ भी रानी त्रिशला देवी सहित, बड़ी सजधज के साथ दर्शन के लिए पहुँचे। गुरु महाराज ने सब को उपदेश सुनाया। उपदेश से प्रभावित होकर राजा और रानी ने श्रावक-श्राविका के व्रत धारण किये।

केशी स्वामी ने फरमाया कि अब तक तेईस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव हो चुके हैं। चौबीसवें तीर्थंकर होना बाकी हैं। जब उनसे पूछा गया-भगवन्! चौबीसवें तीर्थंकर का जन्म कहां होगा? तब स्वामीजी ने फरमाया—इन्हीं रानी त्रिशला देवी की कूंख से चौबीसवें तीर्थंकर अवतारित होंगे।

भाइयों! जरा कल्पना कीजिए, उस समय त्रिशला देवी को कितना हर्ष हुआ होगा? वह कितनी प्रफुल्लित हुई होगी? अहा! असीम आनन्द का उन्हें अनुभव हुआ होगा! कि मेरी कुक्षी में त्रिलोकी नाथ पधारेंगे, यह मेरा कितना अहोभाग्य है। जगत् में मेरे समान धन्य और कौन है? जब कोई विश्वासपात्र व्यक्ति किसी महिला को कह देता है कि तुम्हारे लड़का होगा तो उसके हर्ष का पार नहीं रहता। तो फिर त्रिलोकीनाथ के जन्म की सूचना पाकर त्रिशला देवी को कितना हर्ष न हुआ होगा। वास्तव में उस हर्ष का वर्णन नहीं किया जा सकता। कहा है:—

जननी जने तो भक्त जन, के दाता के शूर।
नहीं तर रहिजे वांझड़ी, मती गँवाजे नूर॥

दुनिया के कविजन कहते हैं—हे माता! अगर तू पुत्र को उत्पन्न करे तो ऐसा पुत्ररत्न उत्पन्न करना जो भक्त या तो दातार हो या शूरवीर हो। यानी उसके सामने आकर कोई हाथ पसारे तो उसका हाथ खाली न रहे। कोई भी याचक उसके पास से निराश होकर न जाय। ऐसा उदारहृदय पुत्र ही तू उत्पन्न करना।

उदारता का गुण सब में नहीं होता। महाराणा भूपालसिंहजी में अलबत्ता यह गुण है और बड़ा जबर्दस्त है। कोई उनसे किसी प्रकार की याचना करता और दूसरा कदाचित् कह देता कि–अन्नदाता, यह तो यों ही मांग रहा है, इसे आवश्यकता नहीं है, तब भी महाराणा उसे निराश नहीं करते हैं। महाराणा साहब यही उत्तर देते–देखो, यह आशा करके आया है। इसे निराश मत लौटाओ। अपना कर्त्तव्य है किसी को निराश न करना। उसी का हमें पालन करना चाहिए।

एक बार किसी को महाराणा ने तीन हजार रुपया दे देने का हुक्म दिया। उसने एक बिन्दी और बढ़ाकर तीन हजार के तीस हजार कर लिए। रुपये ले लिये। किसी चुगलखोर ने चुगली खा दी। लेने वाला वहीं मौजूद था। कहिए, आप महाराणाजी की जगह होते तो क्या करते? आपके क्रोध का पार न रहता। आप कानूनी कार्रवाई पर आमादा हो जाते। मगर बड़े आदमियों का हृदय बड़ा होता है। हृदय बड़ा होने से ही तो मनुष्य में बड़प्पन आता है। महाराणा साहब का हृदय बहुत विशाल है। धोखा देने वाले ने अपनी गलती कबूल करली तो उन्होंने सिर्फ इतना कहा—देख, आयन्दा ध्यान रखना!

महाराणा साहब ने हजारों रुपये खर्च करके अपने लिए एक दवा बनवाई। लेकिन लोग कहने लगे-मुझे चाहिए, मुझे चाहिये। इस तरह वह दवा सारी लोगों के ही काम आई और आप बिना दवा के ही रह गये।

यह हृदय की उदारता और दानशीलता का लक्षण है। दानशील व्यक्ति अपनी आवश्यकता को पहला स्थान नहीं देता। वह दूसरों की आवश्यकताओं को ही प्रथम और प्रधान स्थान देता है। कई लोग सोचते हैं कि दान देने से धन खत्म हो जायगा। मगर नहीं, दान करते-करते कभी धन समाप्त नहीं होता, शील पालने से कभी यौवन नहीं जाता और तपस्या करने से शक्ति का विनाश नहीं होता। यह सब जान लेने पर भी चित्त में उदारता आ जाना बहुत कठिन है। कहा है:—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दशसहस्रेषु, दाता तेष्वपि दुर्लभः॥

सैकड़ों आदमी तलवार बांधने वाले मिल जाएँगे, मगर शूरवीर उनमें से एक ही मिलेगा। हजारों पढ़े-लिखे मिल सकते हैं किन्तु पंडित उनमे से एकाध ही होगा। बोलने तो सभी हैं, लेकिन वक्ता हजार पंडितों में से एक ही निकलता है। परन्तु दान-वीर उनमें भी दुर्लभ हैं।

कवि इसीलिए कहता है—हे जननी! या तू भक्त, दातार, या शूरवीर को जन्म देना या वाझ ही रह जाना। साधारण पुत्र पैदा करके अपना नूर मत गँवाना।

हां, तो त्रिशलामाता को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि मेरे उदर में तीर्थङ्कर भगवान् पधारेंगे। वे लौटकर अपने महल में आई और आनन्दपूर्वक समय व्यतीत होने लगा। समय आने पर त्रिशलादेवी को चौदह महास्वप्न दिखाई दिये। स्वप्न देखकर वह उठ खड़ी हुई और अपने पति महाराज सिद्धार्थ के पास पहुँचीं। स्वप्नों का सम्वाद सुनकर सिद्धार्थ को भी अतीव हर्ष हुआ। उन्होंने कहा—गुरुदेव केशी स्वामी ने जो भविष्य-वाणी की थी, वह सफल होने वाली है। तीन जगत् से स्वामी तीर्थङ्कर को तुम जन्म दोगी।

तीसरा महीना हुआ कि अच्छे-अच्छे डोले महारानीजी को आने लगे। पांचवें महीने में बालक ने हलन-चलन शुरु किया। कई लोगों का खयाल है कि इस समय पांचवें महीने में जीव आता है, लेकिन ऐसा नहीं है। पहले कारीगर आता है और बाद में नींव लगाई जाती है। ऐसा नहीं कि नींव लग जाय और फिर कारीगर आए!

गर्भ में आते ही जीव सर्वदेशी आहार ग्रहण करता है। कढ़ाई में उबलता हुआ तेल मौजूद हो और उसमें बड़ा डाला जाय, तो वह जैसे सब ओर से तेल को ग्रहण करता है, उसी प्रकार गर्भ में आया हुआ जीव भी तैजस और कार्मण शरीर से सर्वदेशी आहार लेता है। पहले शरीर पिण्ड बनता है, फिर इन्द्रियां बनती हैं और तब श्वास, मन आदि की पूर्ति होती है। गर्भ में वचन-शक्ति, शक्ति के ही रूप में रहती है, जब जीव गर्भ से बाहर आता है तो वह शक्ति प्रकट होजाती है।

गर्भ का समय पूर्ण होने पर, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की रात्रि के समय भगवान् का जन्म हुआ। जब ग्रीष्म का ताप अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो वर्षा होती है और पृथ्वी शान्त हो जाती है। अमावस्या के दिन अन्धकार विराट-रूप धारण कर लेता है तो उसको भेदने के लिए शुक्ला द्वितीया को आकाश में चन्द्रमा प्रकट होता है। संसार में जब कोई नवीन बीमारी फैल जाती है तो उसकी औषधि का अविष्कार होता है। यह सब किसी व्यक्ति के सोचने या करने से नहीं होती। गर्मी के बाद वर्षा बरसाने वाला कोई व्यक्ति नहीं है। अमावस्या के बाद चन्द्रमा को घड़ कर भेज देने वाला कोई परमात्मा या अन्य कोई व्यक्ति नहीं है। यह सब प्रकृति के नियम से चल रहा है और नियमित रूप से अनादि काल से यह व्यवस्था चली आ रही है। इसी प्रकार:—

पापियों के अत्याचार अधिक जब भूतल पर बढ़ जाते हैं।
तब मनुष्यलोक और पशुलोक सब त्राहि-त्राहि चिल्लाते हैं॥

भाइयो ! जब संसार में अत्याचारी लोगों के अत्याचार बहुत बढ़ जाते हैं, तब क्या मनुष्य और क्या पशु, सब त्राहि-त्राहि (हाय बचाओ, बचाओ) की दयाजनक आवाज में पुकारने लगते हैं! ऐसे समय में मानवजाति के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष का परिपाक होता है।

भगवान् महावीर के समय में यही स्थिति थी। पशुओं पर अत्यन्त क्रूरतापूर्वक अत्याचार हो रहे थे। उन्हें यज्ञ की ज्वालाओं में जिन्दा जला दिया जाता था। मनुष्य जाति की स्थिति भी बहुत विषम हो गई थी। एक वर्ग अपनी जन्मगत पवित्रता

और उच्चता का दावा करता था। उसके हाथ में अधिकार थे, सत्ता थी। यह वर्ग दूसरे मनुष्य को घृणा की दृष्टि से देखता था। उसने उनकी उन्नति के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था, तप करने का हक नहीं था और मनुष्य होकर भी मनुष्य की भांति जिंदा रहने का अधिकार नहीं था। इस तरह मनुष्यत्व की कोई प्रतिष्ठा नहीं थी, गुणों को कोई टके सेर नहीं पूछता था। बस केवल जाति की प्रतिष्ठा थी।

मनुष्यता का यह घोर अपमान समझदार लोगों को सहन नहीं होता था। किन्तु किसी में साहस नहीं था कि वे उसके विरुद्ध चूं तक कर सकें। इस तरह भारत में जब अत्याचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गये तब एक महान् दिव्य और अलौकिक शक्ति उनका शमन करने के लिये देवलोक से आई।

कितनेक भाइयों का खयाल है कि जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म फैल जाता है तो परमात्मा अवतार लेता है। यह खयाल एकदम भ्रमपूर्ण है। समस्त कर्मों से मुक्त और वीत-राग परमात्मा फिर कभी मनुष्य या पशु के रूप में अवतरित नहीं हो सकता। बल्कि अनेक जन्मान्तरों के शुभ संस्कार लेकर कोई आत्मा ही असाधारण महत्ता प्राप्त करती है और वही जगत् को अधर्म के मार्ग से हटाकर धर्म के मार्ग पर लगाती है। वही आत्मा अपना परिपूर्ण विकास करके परमात्मा कहलाने लगती है।

इस प्रकार अनेक पूर्वभवों के सुन्दर-सुन्दर संस्कारों से विभूषित, जन्म-जन्मान्तर की साधना के फल को लिये भगवान् महावीर की आत्मा का दसवें देवलोक से आगमन हुआ। जब

से भगवान् की आत्मा माता के गर्भ में आई थी, तभी से प्रकृति ने अपना रूप पलट लिया था। सर्वत्र सुविधा और शांति फैल गई थी। धन-धान्य की वृद्धि हुई थी और सभी जगह प्रसन्नता और प्रमोद का वायुमंडल बन गया था। जब जन्म हुआ तो तीनों लोकों में अनूठा आनन्द ही आनन्द छा गया। नारक जीवों को भी जो निरन्तर घोर यातनाओं की ज्वालाओं में जलते रहते हैं, क्षण भर के लिए शान्ति मिली। रात्रि के अन्धकार में भी प्रकाश फूट पड़ा। ५६ दिशाकुमारियों ने आकर अशुचि का निवारण किया। शक्रेन्द्र आकर उन्हें मेरुगिरि पर ले गये और उन्हें स्नान कराया गया। इन्द्रों की ओर से चौसठ प्रकार के महोत्सव किये गये। पहला महोत्सव शक्रेन्द्रजी की तरफ से हुआ। मेरु पर्वत से लौट कर और भगवान् को उनकी माता के पास सुला कर देवता अपने-अपने स्थान पर चले गये।

इधर महाराजा सिद्धार्थ ने पुत्र जन्म का समाचार पाकर असीम हर्ष का अनुभव किया। समाचार पहुँचाने वाली दासी को अपने शरीर के आभूषण उतार कर दे दिये। बड़ी ही धूम-धाम के साथ राजकुमार के जन्म का उत्सव मनाया। कारागार से कितने ही कैदियों को रिहा कर दिया। दसवें दिन के बाद दशोटन (दस्टोन) हुआ और सर्वसाधारण को विशाल भोज दिया। राजकुमार के जन्म के उपलक्ष्य में महाराज चेटक, श्रेणिक आदि-आदि छोटे-बड़े राजाओं की तरफ से उपहार आये। इस प्रकार सर्वत्र चहल-पहल और आनन्द मंगल नजर आने लगा।

अब बालक के नामकरण की चर्चा चलने लगी। बालक का जब से गर्भ में आगमन हुआ था, तभी से देश में धन-धान्य

और आनन्द मंगल की वृद्धि हुई थी और महाराज सिद्धार्थ के वैभव में भी वृद्धि हुई थी, इस कारण 'वर्द्धमान' यह सार्थक नाम रक्खा गया।

भगवान् की रूपश्री असाधारण थी। उनकी सुन्दरता अनुपम थी। जो उन्हें देखता, अपनी आंखों को कृतार्थ हुआ समझता। प्रत्येक के हृदय में भगवान् के प्रति प्रबल आकर्षण उत्पन्न हो जाता था। मन नहीं चाहता था कि उन्हें आंखों से ओझल किया जाय! फिर माता के कोमल दिल का तो कहना ही क्या है? माता अपने लूले-लँगड़े और अंधे काने लड़के पर भी असीम प्यार की वर्षा करती है। उसके लिए वही इन्द्र के समान प्रतीत होता है। मगर यहां तो ऐसा जान पड़ता था कि सारे संसार का सौन्दर्य सिमट कर सिद्धार्थसुत में ही संगृहीत हो गया है! तब उनकी माता की ममता का वर्णन कैसे किया जा सकता है? त्रिशला माता अपने लल्ला को निहार कर निहाल हो जाती थीं। उन्होंने बड़े ही दुलार और प्यार से उनका पालन पोषण और संरक्षण किया। दास-दासियों की कमी नहीं थी, देवांगनाएँ धाय का काम करने के लिए तैयार रहती थीं, फिर भी माता त्रिशला स्वयं वर्द्धमान की देखरेख करती थीं। वर्द्धमान एक महीने के हुए तो दो महीने के दिखाई देने लगे। दो महीने के हुए तो चार मास के जान पड़ते! जब चार मास के हो गये तो मालूम होता जैसे आठ महीने के हो गये हैं। दो वर्ष की उम्र में वे चार वर्ष के मालूम पड़ते थे। इस प्रकार सुखपूर्वक, दिन दूने और रात चौगुने बढ़ते हुए वर्द्धमान अपने माता पिता आदि को प्रमोद पहुँचाने लगे।

धीरे-धीरे वर्धमान आठ वर्ष के हो गये। राजा-रानी का मत इन्हें पढ़ाने का हुआ। उस समय सर्वश्रेष्ठ कलाचार्यजी को आमन्त्रित किया गया। उनका यथोचित सन्मान किया गया और कहा गया कि आप इन्हें पढ़ाइए। कलाचार्यजी ने कहा- मेरा सौभाग्य है कि आपने राजकुमार को पढ़ाने की सेवा मुझे सौंपी !

कलाचार्य उन्हें अपने साथ ले आये। पहले दिन उन्हें अ आ, इ ई लिख कर दिये तो उन्होंने समस्त स्वर लिख कर बता दिये। जब उन्हें क, ख आदि लिखकर दिये गये तो उन्होंने पूरी बारहखड़ी लिख कर कलाचार्यजी के सामने रख दी। इसके बाद कलाचार्यजी पांच तक की गिनती सिखलाने लगे तो उन्होंने सौ तक की गिनती लिखकर बतला दी।

उसी समय शक्रेन्द्रजी ब्राह्मण का रूप धारण करके आये और कहने लगे—लो, मैं इनसे व्याकरण का विषय पूछता हूं। जब इनसे प्रश्न पूछे गये तो सभी प्रश्नों के उत्तर सही मिले। प्रश्न बहुत कठिन थे, मगर उत्तर उनके बहुत ही सुन्दर थे। यह प्रश्नोत्तर सुनकर कलाचार्यजी सोचने लगे—इतना तो मैं भी नहीं जानता ! क्या महाराज ने मेरी परीक्षा लेने के लिए इन्हें मेरे सुपुर्द किया है ? यह तो अद्वितीय पण्डित हैं। मैं इन्हें क्या पढ़ाऊँ ? यह सोचकर कलाचार्यजी उन्हें वापिस ले गये और महाराज सिद्धार्थ से बोले—राजकुमार मैं नहीं पढ़ा सकता ! यही मुझे पढ़ा देने में समर्थ हैं। आप इन्हें संभालिये।

राजकुमार वर्द्धमान की शिक्षा का यह वृत्तान्त सुनकर कई लोग सोच सकते हैं कि आठ वर्ष का बालक इतना ज्ञानी कैसे हो सकता है ? उन्हें यह भी सोचना चाहिए कि आठ वर्ष

में इतना ज्ञान क्यों नहीं हो सकता ? उम्र की कमी के कारण ज्ञान की कमी का अनुमान करना गलत है। ज्ञान का उम्र के साथ कोई अविनाभाव संबंध नहीं है। अर्थात् ऐसा कोई नियम नहीं है कि जिन-जिन की उम्र कम हो उनका ज्ञान भी कम हो और जिनकी उम्र ज्यादा हो उनका ज्ञान भी ज्यादा हो। संसार में आज भी अल्पवयस्क बालक बड़े बुद्धिमान् और ज्ञानवान् देखे जाते हैं और इसके विरुद्ध बूढ़े खूसट भी ज्ञानहीन पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अगर उम्र बढ़ने से ही ज्ञान बढ़ता होता तो किसी को ज्ञान का अभ्यास करने की आवश्यकता ही क्यों पड़ती ? उम्र बढ़ने पर आप ज्ञान बढ़ जाता। तीसरी बात यह है कि अगर ज्ञान का संबंध उम्र के साथ होता तो सब बराबर उम्र वालों में बराबर ही ज्ञान होता। बीस वर्ष की उम्र वाले सब बराबर ज्ञानवान् होते, चालीस वर्ष वाले सब बराबर ज्ञानी होते और साठ वर्ष के सभी लोग एक समान महाज्ञानी होने चाहिए थे। मगर दुनिया में कहीं भी ऐसा कोई नियम नजर नहीं आता। इससे यह बात स्पष्ट है कि उम्र के साथ ज्ञान का कोई नियत संबंध नहीं है। तब फिर छोटी उम्र में अधिक ज्ञान हो जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

कहते हैं, काशी में एक बड़े उद्भट पण्डित थे, मगर उनकी उम्र बहुत छोटी थी। बाहर के नामी विद्वानों ने उनकी पडिताई की प्रशंसा सुनी तो वे शास्त्रार्थ करने के लिए आये। नियत समय पर और नियत स्थल पर जब काशी के शास्त्रीजी बाहर से आये विद्वानों के सामने आये तो उन्होंने उपेक्षापूर्वक कहा—यह तो बालक है ! बालक के साथ हम क्या शास्त्रार्थ करें।

यह सुनकर काशी के शास्त्री, जिन्हें लोग बाल-शास्त्री के नाम से पुकारते थे, बोले:—

बालोऽहं न बाला मे सरस्वती ।

अर्थात्—मेरा शरीर बालक है तो क्या हुआ ? मेरी विद्या तो बालक नहीं है !

कितना सुन्दर उत्तर है !

कहा जा सकता है कि बाल्यावस्था में भी विशिष्ट ज्ञान हो सकता है किन्तु बिना सीखे विद्या कैसे आ सकती है ? आखिर विद्या तो पढने से ही आती है। वर्द्धमान को बिना सीखे विद्या कहां से आ गई ?

प्रश्न ठीक है और इसके उत्तर में बहुत लम्बी-चौड़ी बातें कही जा सकती है। मगर मुझे तो नियत समय पर ही अपना व्याख्यान समाप्त कर देना है। अतएव संक्षेप में इस प्रश्न का उत्तर देता हूँ।

बालक जब माता के उदर से बाहर आता है तो उसी समय रोने लगता है। अब आप विचार कीजिए कि उसे रोना किसने सिखलाया है ? कहा जाय कि तकलीफ के कारण बालक रोने लगता हैं तो भी प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहता है कि बालक को किसने सिखलाया था कि जब तुझे तकलीफ हो तो तू रोने लगना !

माता अपना स्तन बच्चे के मुँह में दे देती है, मगर स्तन को चूसना उसे कौन सिखलाता है ? आंखों से देखना, कानों से

सुनना, नाक से सूंघना और जीभ से स्वाद लेना बालक ने किस किस गुरु से सीखा है ?

भाइयो ! प्राणी मात्र के स्वभाव पर अगर आप गम्भीरता से विचार करेंगे तो आपको आश्चर्य होगा कि वह अधिकांश बातें बिना सिखलाये ही सीखता है। मनुष्य बाद में तो कहने सुनने और पढ़ने से सीखने लगता है मगर प्रारम्भिक स्थिति में तो उसे सब कुछ आप ही आप सीखना पड़ता है। अतएव बिना सीखे किसी को विशिष्ट ज्ञान-प्राप्त हो जाय तो इसमें कोई भी आश्चर्य की बात नहीं है।

लोग समझते हैं कि मनुष्य ने जन्म लिया है तो उससे पहले उसकी सत्ता थी ही नहीं ! वह माता के पेट में शून्य से बालक बन गया है ! मगर यह खयाल एकदम भ्रमपूर्ण है। शून्य से कोई वस्तु न बनी है न बन ही सकती है। गर्भ में बालक का शरीर माता के आहार से बनता है और जीव परभव से आता है। पूर्व भव को छोड़कर जीव जब अगले भव में जाता है तो वह अपने उस भव के संस्कारों को भी साथ ले जाता है। इन संस्कार की भिन्नता के कारण ही बालकों की योग्यता, शक्ति और रुचि में भिन्नता होती है। जो जीव पूर्वभव में खूब विकसित संस्कारों का धनी होता है, वह अगले भव में अनायास ही, उन संस्कारों के कारण, योग्यता प्राप्त कर लेता है।

तीर्थङ्कर बनना सरल बात नहीं है। दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम जितने सुदीर्घ-काल में सिर्फ चौबीस आत्माएँ ही तीर्थङ्कर के रूप में जन्म लेती हैं। इसीसे कल्पना की जा सकती है

कि तीर्थंकर बनने के लिए कितनी महान्-महतो महीयान्-पुण्य मयी साधना की आवश्यकता होती है। तीर्थंकर बनने के लिए जिस प्रचण्डतम साधना की अपेक्षा है, वह साधना एक ही जन्म में होना संभव नहीं है। लगातार अनेक भवों की साधना के फलस्वरूप ही तीर्थंकर के रूप में आत्मा का जन्म होता है। अनेक जन्मों के पुण्यमय संस्कार तिल-तिल करके इकट्ठे होते हैं, तब कहीं आत्मा को तीर्थङ्कर पदवी प्राप्त होती है: जब ऐसी बात है तो सहज ही समझा जा सकता है कि तीर्थंकर पूर्वभव के संस्कारों के कारण जन्म के समय भी विशिष्ट ज्ञान के धारक हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में अगर उन्हें बिना ही सीखे ज्ञान प्राप्त हो जाय तो क्या आश्चर्य है? राजकुमार वर्द्धमान ऐसे ही संस्कारों को लेकर आये थे और इसी कारण उन्हें बिना सिखाये ज्ञान प्राप्त हो सकता था।

वर्द्धमान तीन ज्ञान के धारक थे। उन्हें मतिज्ञान, श्रुत-ज्ञान और अवधिज्ञान प्राप्त, था। वे स्वयंबुद्ध थे-स्वयमेव तत्त्वज्ञ थे। और धीरे धीरे उनकी उम्र बढ़ती गई और वे नवयुवक हो गए।

माता-पिता ने वर्द्धमान कुमार का विवाह करने का विचार किया। मगर समझदार माता-पिता अपनी सन्तान की इच्छा को जाने बिना विवाह नहीं करते। अतएव कुमार के माता-पिता ने उनके मित्रों से कहा-विवाह के सम्बन्ध में राजकुमार से बातचीत करो और उनकी स्वीकृति लेकर हमें सूचना दो।

मित्रों ने राजकुमार वर्द्धमान से उनके विवाह के विषय में बातचीत की। मगर वे स्वाभाव से विरक्त थे। भोगोपभोग के

कीचड़ में फँसना उन्हें रुचिकर नहीं था। उनके मित्रों ने कहा कि मनुष्य को विवाह करना आवश्यक है, क्यों कि विवाह किये बिना मनुष्य अपने उत्तरदायित्व को ठीक तरह नहीं समझ पाता। तब वर्द्धमान ने कहा—तुम्हारा विचार सही नहीं है। मनुष्य का उत्तरदायित्व न केवल मनुष्य मात्र के प्रति है, वरन् प्राणी मात्र के प्रति है। विवाह इस विशाल उत्तरदायित्व को कुटुम्ब की छोटी-सी परिधि में कैद कर देता है। मैं अपने इर्दगिर्द ऐसी कोई परिधि नहीं बनाना चाहता। मैं सारे जगत का हूँ और सारा जगत मेरा है। ऐसी हालत में मैं विवाह करना नहीं चाहता।

मित्रों ने कहा—विवाह किये बिना सांसारिक सुख प्राप्त नही होते हैं। अतः अपने सांसारिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए विवाह करना आवश्यक है। इस पर वर्द्धमान कुमार ने कहा—सुख किसे कहते हैं, यह बात मैं भलीभांति समझता हूं और शायद तुम नहीं समझते। विषयभोग और उनके साधनों की आकांक्षा ही असल में दुःख है और उस आकांक्षा का त्याग सुख है। ज्यों-ज्यों जीवन निवृत्तिमय बनता जायगा, त्यों-त्यों सुख की वृद्धि होगी। शान्ति निराकुलता में है, व्याकुलता में नहीं है। यह उत्तर सुनकर उनके मित्र बोले—आपकी बात ठीक है, दिल चाहता है कि हम भी विवाह न करें।

इस तरह मित्रों का कहना जब निरर्थक हुआ तो एक दिन माता त्रिशला ने स्वयं कहा—लल्ला! मैं अपनी पतोहू देखना चाहती हूं। तब राजकुमार मौन हो रहे। माता के बहुत कुछ कहने पर भी उन्होंने स्वीकृति सूचक एक भी बात नहीं कही, चुप ही बने रहे। तब माता फिर बोली—लाल! तुम तो बड़े ही

विनीत हो; माता-पिता के आज्ञाकारी हो। फिर आज मौन क्यों पकड़ रक्खी है? पतोहू देखे विना मुझे सुख नहीं होगा।

भगवान ने ज्ञान का उपयोग लगाकर देखा कि मुझे इस जीवन में कर्म भी करने पड़ेंगे। जो कर्म पहले बांध चुका हूँ, उन्हें भोगना ही होगा, भोगे विना छुटकारा नहीं मिल सकता। यह सब जानकर भोगों से विरक्त होने पर भी आपने विवाह करने की स्वीकृति दे दी।

जब आप अट्ठाईस वर्ष के हुए तो माता पिता का देहान्त हो गया। दोनों मृत्यु के पश्चात् बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् आपने गृहस्थी का त्याग कर तपस्या करने का विचार किया। अपने बड़े भाई नन्दिवर्द्धन के सामने तपस्या करने का प्रस्ताव उपस्थित किया तो वे रोने लगे और बोले—माता पिता के वियोग का आघात एकदम ताजा है। वह घाव अभी भर भी नहीं पाया है कि तुम तपस्या करने की बात कह रहे हो! भैया! तुम्हारे सिवाय मेरे लिए और क्या सहारा है? तुम भी न रहे तो मैं क्या करूँगा? मेरी क्या हालत होगी?

इधर भगवान् ने अपने ज्ञान में भी देखा कि संसार में अभी दो वर्ष रहना पड़ेगा। अतएव उस समय उन्होंने दीक्षा लेने का विचार स्थगित कर दिया। लेकिन अपनी जीवनचर्या में बहुत-सा परिवर्तन कर लिया। सचित्त जल के पीने का त्याग कर दिया पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर लिया और आरम्भ-समारम्भ के कार्यों से बचने लगे। इस प्रकार भगवान् गृहस्थ योगी के समान अपना जीवन यापन करने लगे।

एक वर्ष और बीत गया। अब आपकी उम्र २९ वर्ष की हो गई तो स्वर्ग से देवता आये और बोले-प्रभो ! जगत् में अशान्ति फैली हुई है। प्राणी संकट में पड़े हैं। अतः अब आप जल्दी कीजिए। जगत् के उद्धार का भार आपके ऊपर ही है ! भगवन् ! उसके उद्धार के लिए संकल्प कीजिए।

देवगण की इस अभ्यर्थना के बाद भगवान् ने प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख सोनैया का दान देना आरंभ किया। इससे यह प्रकट होता है कि आगे चलकर आपने दानधर्म का उपदेश दिया तो पहले अपने जीवन में स्वयं ही उसका पालन किया था। भगवान् के इस व्यवहार से सर्वसाधारण को दान देने की महान् शिक्षा मिलती है।

भगवान् का दान देना एक वर्ष तक जारी रहा। इसके पश्चात् आपने संयम ग्रहण करने की तिथि निश्चित की। निश्चित तिथि पर देश-देश के राजा इकट्ठे हुए। अन्य तीर्थंकरों के साथ तो दूसरे हजारों-सैंकड़ों लोगों ने दीक्षा धारण की थी, मगर वर्द्धमान भगवान् ने अकेले ही दीक्षा ली। पहले के जमाने में लोगों को जल्दी वैराग्य आ जाता था, परन्तु ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जा रहा था और पांचवां आरा सन्निकट आ रहा था, वैराग्य में भी कमी होती जा रही थी। लोगों को मुश्किल से वैराग्य आता था।

भगवान् वर्द्धमान ने गृहत्याग करके साधु-अवस्था अंगीकार कर ली। दीक्षा लेते ही आपको मनःपर्ययज्ञान भी प्राप्त हो गया। प्रभु ने ज्ञान से जाना—मुझे बहुत कर्म भोगने हैं। पहले के बँधे हुए उन कर्मों को पूरी तरह काटने के लिए मुझे बड़े-बड़े परी-

पड़ सहन करने पड़ेंगे। कहते हैं—तेईस तीर्थङ्करों के कर्म एक तरफ और चौबीसवें तीर्थङ्कर के कर्म दूसरी तरफ! कर्मों का इतना बड़ा भारी पटल उनकी आत्मा पर छाया हुआ था। पूर्व जन्मों में उनके बहुत से कर्म इकट्ठा हो गये थे! अतएव भगवान् ने उन समस्त कर्मों को विनष्ट करने के लिए घोर से घोर तप करना आरम्भ किया। इस तीव्रतर तपस्या को भी पर्याप्त न समझ कर आपने अनार्य देश में विहार किया! वहां के असंस्कृत और क्रूर लोगों ने भगवान् पर पत्थर बरसाये, लकड़ियों से मारा अपशब्दों का प्रयोग किया, धूल उछाली मगर वर्द्धमान स्वामी इन सब उपसर्गों को अत्यन्त शान्त भाव से सहन करते रहे। बल्कि वे तो इन कष्टों को सहन करके अपने कर्म खपाने के लिए ही वहां गये थे! कभी कभी भगवान् जब अनार्य देश के किसी ग्राम मे पहुँचते थे तो वहां के लोग कुत्तों को छुछकार कर उन पर छोड़ देते थे या गांव मे घुसने से ही रोक देते थे। मगर प्रभु ऐसे विकट और वेदनाजनक अवसर पर भी एकदम शान्त और प्रसन्न रहते थे। ज्यों ज्यों कष्ट आते थे, प्रभु समझते थे कि मुझे महान् लाभ हो रहा है, मेरा प्रयोजन सिद्ध हो रहा है-मेरे कर्म क्षीण होते जा रहे हैं। इस प्रकार सन्तोष के साथ प्रभु घोर अतिघोर कष्ट सहन करते हुए विचर रहे थे।

भगवान् वर्द्धमान ने जिस कठोरतम साधना को स्वीकार किया था, उसकी संसार के इतिहास में कोई उपमा नहीं मिलती। एक राजकुमार ने स्वेच्छापूर्वक कष्टों का जो मार्ग अपनाया वह असाधारण था, अभूतपूर्व था और उसका विवरण पढ़ते-सुनते ही रोमाञ्च हो आता है! ऊपर से इतना उग्र और तीव्र कष्ट सहन करते हुए भी अकसर वे निराहार ही रहते थे। भगवान् ने बारह

वर्ष और तेरह पक्ष में इस प्रकार अनशन तप किया था:—

१ छह महीने की तपश्चर्या
१ पांच दिन कम छह महीने की तपस्या
६ चार मास की तपस्या
२ तीन मास की ,,
२ अढाई मास की ,,
६ दो मास की ,,
२ डेढ मास की ,,
१२ एक मास की ,,
७२ पाक्षिक तपस्या
१ सोलह उपवासों की तपस्या
१२ तीन तीन दिन की ,,
२२६ दो दो दिन की ,,

कितनी कठोर साधना है ! फिर भी कभी भगवान् ने असाता या अशान्ति का अनुभव नहीं किया। वे जीवनमुक्त महायोगी थे। शरीर में रहते हुए भी शरीर के अध्यास से अतीत आत्मा के स्वरूप में रमण करने वाले और आत्मानन्द के अनिर्वचनीय सागर मे निमग्न रहने वाले थे।

इस प्रकार दान, शील, तप और भावना के प्रताप से उन्हें लोकोत्तर ज्ञान की प्राप्ति हुई। भगवान् एक वार वेले की तपस्या करके ऋजुवालिका नदी के तट पर, शालिवृक्ष के नीचे ध्यान में आरुढ थे कि मोहनीय कर्म का क्षय हो गया। मोहनीय कर्म का क्षय होते ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म भी नष्ट हो गये। भगवान् को अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन,

अनन्तसुख और अनन्तवीर्य की प्राप्ति हुई। भगवान् की उग्र साधना सफल हो गई।

इस समय स्वर्ग से चौसठ इन्द्र आये। उन्होंने मिलकर केवलज्ञान का महोत्सव मनाया। उस समय तक भगवान् एकाकी ही विचरते थे। पश्चात् वे विचरते-विचरते पावापुरी में पधारे और नगरी से बाहर एक उद्यान में ठहरे, इस अवसर पर पावापुरी में एक बड़ा भारी यज्ञ हो रहा था। उसमें भाग लने के लिए बड़े उद्भट विद्वान ग्यारह पण्डित भी आये हुए थे। इन ग्यारह में इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति-तीन पण्डित सगे भाई थे और उस जमाने के बहुत प्रतिष्ठित पण्डित थे। इनका गोत्र गौतम था।

भगवान् के पधारने का समाचार पाकर पावापुरी के नर नारी, तथा देव, देवियां और इन्द्र आदि भगवान् के दर्शन के लिए जाने लगे। देवलोक से उतरते हुए विमानों को देख कर पहले तो उनकी प्रसन्नता का पार नहीं रहा। वे समझे हमारे यज्ञ में शामिल होने के लिए देवता आ रहे हैं। मगर जब सभी देव यज्ञस्थल की ओर न जाकर, भगवान् जिस उद्यान में ठहरे थे, उस उद्यान की ओर चले गये तो उन्हें बहुत बुरा मालूम हुआ। इन्द्रभूति उन सब में अग्रणी थे। उन्होंने कहा—देवगण का यज्ञ मे न आना और महावीर के पास चले जाना धर्म का बड़ा अपमान है। मालूम होता है उस जालसाज महावीर ने जादू करके उन्हें अपने पास बुला लिया है। इन्द्रभूति चारों वेदों के ज्ञाता थे और ५०० शिष्य उनके साथ थे। अपनी विद्वत्ता पर उन्हें विश्वास था और अपनी मान्यता पर अटल श्रद्धा थी। वे

सोचने लगे-अगर इस अवसर पर मैंने अपने पाण्डित्य का प्रभाव प्रकट नहीं किया तो धर्म की मर्यादा लुप्त हो जायगी। हमारे धर्म का उपहास होगा। अगर मैंने शास्त्रार्थ नहीं किया तो लोग क्या समझेंगे। और मेरी विद्वत्ता भी किस काम आएगी ?

इस प्रकार सोच विचार कर इन्द्रभूति अपने पांच सौ शिष्यों को साथ लेकर भगवान् महावीर से शास्त्रार्थ करने के लिए चल पड़े। भगवान् के पास पहुँच कर, लोकोत्तर तेज से मंडित भगवान् का मुखमण्डल देखकर और वहां के रङ्गढङ्ग को देख कर वे चकित-से रह गये। सोचने लगे ऐसा पुरुष तो मैंने अपने जीवन में कभी देखा ही नहीं है। यह हरि है, हर हैं या ब्रह्मा हैं! इन्द्रभूति खड़े होकर सोच ही रहे थे कि किस प्रकार वार्त्तालाप आरम्भ किया जाय, तब तक भगवान् महावीर ने कहा—इन्द्रभूति गौतम ! आ गये ?

गौतम सोचने लगे अरे ! इन्हें तो मेरा नाम और गोत्र भी मालूम है ? क्या बात है ? मगर फिर सोचा—मैं साधारण आदमी नहीं हूँ। इस युग का सबसे बड़ा पंडित हूँ। मुझे पहचान लेने में आश्चर्य ही क्या है ? इतने से ही मैं इन्हें भगवान् थोड़े ही मान सकता हूँ। सूर्य को कौन नहीं जानता ?

दिनकर ने तो जाने जगत् में,
यों मुझ नाम पिछाणे।

मेरा नाम तो बच्चे बच्चे की जीभ पर तैर रहा है। यह मेरी शंकाओं का समाधान कर दें तो जानूं ज्ञानी है।

घट-घट की जानने वाले महाप्रभु महावीर गौतम के संकल्प विकल्पों को भलीभांति समझ रहे थे। उन्होंने कहा:—

वीर प्रभु गौतम को समझावे।
यो आतम-ज्ञान सुनावे ॥

भगवान् ने कहा-गौतम ! मैं तुम्हारे मन का संदेह निवारण करता हूं। तुम्हें आत्मा के विषय में सदेह है। तुम वेद पढ़े हो, इतिहास, पुराण और दर्शन शास्त्र भी पढ़े हो, मगर आत्मा के अस्तित्व के सबंध में तुम्हें संशय बना हुआ है। तुम निश्चय नहीं कर पाते कि आत्मा का अस्तित्व है या नहीं ? इस संशय का कारण वेद की कुछ ऋचाएँ हैं। उन ऋचाओं का असली अर्थ तुम्हें मालूम नहीं है। असली अर्थ जान लेने पर वही ऋचाएँ जो तुम्हें आत्मा का निषेध करने वाली जान पड़ती हैं, आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करने वाली प्रतीत होने लगेंगी।

यह कहकर भगवान् ने उन ऋचाओं को पढ़ कर सुना दिया और उनका शुद्ध अर्थ ही बतला दिया। इसके प्रश्चात् भगवान बोले देखो, वेद में दया, दान और दमन का विधान है। अगर आत्मा का अस्तित्व न होता तो दान का विधान क्यों किया जाता ? दया किसकी की जाती ? और दमन करने का प्रयोजन ही क्या था ? जब आत्मा नहीं है तो परलोक भी नहीं है। फिर दमन क्यों किया जाय ? वेद के यह तीन दकार भी आत्मा का अस्तित्व प्रमाणित करते हैं।

समस्त संख्याओं का मूल एक है। एक न हो तो दो, चार, दस आदि संख्याएँ टिक ही नहीं सकतीं। इसी प्रकार सारे धर्म-

कर्म का आधार आत्मा है। आत्मा है तो उसकी शुद्धि के लिए विविध प्रकार साधनाएँ और क्रियाएँ की जाती हैं। जब आत्मा ही न होगी तो किसके लिए साधनाएँ की जाएँगी और साधना करने वाला होगा कौन ? हे गौतम ! आत्मा का अस्तित्व है और वे भी अनन्त हैं:—

द्रव्य से जीव अनन्त विश्व में, लोकाकार कहावे ।
काल से नित्याखंड अविनाशी, चेतनालक्षण पावे ॥

कुछ लोग समझते हैं कि आत्मा सारे विश्व में एक ही है। समस्त जीव-शरीरों में उसी की सत्ता व्याप्त है। मगर यह समझ सत्य से विपरीत है। अगर एक ही आत्मा होती तो संसार के समस्त प्राणियों को एक साथ, एक ही सरीखा सुख और दुःख होना चाहिए था। मगर ऐसा तो देखा नहीं जाता। कोई राजा है, कोई रंक है, कोई नारकीय यातनाएँ भुगत रहा है तो कोई स्वर्गीय सुखों का संवेदन कर रहा है ! जिस समय एक जन्म लेता है, उसी समय दूसरा मरता है। ऐसी स्थिति में यह कैसे माना जा सकता है कि सारे संसार में एक ही जीव की सत्ता है ?

जब आपके शरीर में किसी जगह सुई चुभाई जाती है तो आपको कितनी वेदना होती है ? मगर आपके नजदीक बैठे हुए दूसरे व्यक्ति को जरा भी वेदना नहीं होती है। अगर सब शरीरों में एक ही आत्मा होती तो एक के शरीर में सुई चुभाने से सभी जीवों को समान वेदना होनी चाहिए थी ?

अतएव यही मानना उचित है कि प्रत्येक शरीर में आत्मा अलग-अलग है और संख्या के लिहाज से वह अनन्त हैं।

एक एक आत्मा में असंख्यात-असंख्यात प्रदेश हैं लोकाकाश में जितने प्रदेश हैं उतने ही प्रदेश एक आत्मा में हैं। मगर आत्मा के प्रदेश सकोचशील और विस्तारशील हैं। जैसे दीपक कमरे में रख दिया जाता है तो उसका प्रकाश सारे कमरे में फैलता है। फिर दीपक को उठा कर छोटी-सी कोठरी में रख दिया जाय तो वह प्रकाश सिकुड़ कर कोठरी में ही समा जाता है। इसी प्रकार आत्मा जब हाथी के जैसे विशाल शरीर में जाती है तो उसके प्रदेश फैल जाते हैं, और वही जब चींटी के जैसे छोटे शरीर में जाती है तो उसके प्रदेश सिकुड़ जाते हैं। इस प्रकार संकोच-विस्तार स्वभाव के कारण आत्मा अपने असंख्यात प्रदेशों को ज्यों का त्यों रखता हुआ भी विभिन्न प्रकार के शरीरों में चली जाती है।

पुद्गल के प्रदेश कम-बढ़ हो सकते हैं, किन्तु आत्मा का एक भी प्रदेश कभी कम या बढ़ नहीं सकता।

काल की दृष्टि से आत्मा नित्य है, अविनाशी है, अनादिकाल से है और अनन्त काल तक रहेगी। गीता भी कहती है:—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥

आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और हवा सोख नहीं सकती।

महावीर स्वामी ने भी यही फरमाया है:—

नो इंदियग्गेज्झ अमुत्तिभावा,
अमुत्तिभावा वि य होइ निच्चो।

अज्झत्थहेउं नियस्स बंधो,
संसारहेउं च वयंति बंधं ॥

भगवान् यही कहते हैं कि आत्मा अमूर्तिक है और अमूर्तिक अर्थात रूप, रस गंध और स्पर्श से रहित होने के कारण इन्द्रियों से उसका ग्रहण नहीं होता है। अमूर्तिक और नित्य होने पर भी आत्मा कर्म-बंध के कारण मूर्तिक बनी हुई है और संसार में भ्रमण करती है।

ऊपर के पद्य में कहा है—'चेतना लक्षण पावे' अर्थात् आत्मा का लक्षण चेतना है। जानना और देखना रूप उपयोग चेतना कहलाता है। यही चेतना जीव का स्वरूप है चेतना स्वरूप के कारण ही आत्मा जड़ पदार्थों से भिन्न होता है। आत्मा में चेतना न होती तो आत्मा और जड़ में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। कहा है:—

दृश्य अदृश्य जो भी पदारथ, ज्ञाता अवश्य कहावे।
तन इन्द्रिय जो भोग है वस्तु, यों भोक्ता सिद्ध हो जावे॥

कोई पदार्थ इन्द्रियों से मालूम हो सकने वाले हैं और कोई न मालूम हो सकने वाले भी हैं। किन्तु वे सब ज्ञेय अवश्य हैं और जो ज्ञेय हैं उनका ज्ञाता भी कोई न कोई अवश्य है। अगर कोई ज्ञाता न होता तो पदार्थ ज्ञेय किस प्रकार कहला सकते थे?

भगवान् महावीर ने फरमाया—हे गौतम! तुम आत्मा के सद्भाव में शङ्का करते हो, मगर यह क्यों नहीं सोचते यह शङ्का

करने वाला कौन है? जो आत्मा की सत्ता में सदेह करता है, वह स्वयं आत्मा है। आत्मा के सिवाय किसी में सन्देह करने की भी शक्ति नहीं है।

पदार्थ कई प्रकार के होते हैं। कोई-कोई पदार्थ देखे जा सकते हैं परन्तु पकड़े नहीं जा सकते, और कोई देखे भी जा सकते हैं और पकड़े भी जा सकते हैं। कोई देखा नहीं जा सकता मगर पकड़ में आ सकता है और कोई नजर भी नहीं आता और पकड़ा भी नहीं जा सकता। कपड़े वगैरह स्थूल पदार्थ देखे जाते हैं और पकड़ में भी आते हैं। धूप-छाया आदि देखे तो जाते हैं मगर पकड़ में नहीं आ सकते। शब्द नजर नहीं आते किन्तु फोनोग्राफ आदि के द्वारा पकड़ में आ जाते हैं। आत्मा ऐसा पदार्थ है जो न देखा जा सकता है और न पकड़ में ही आ सकता है। फिर भी ज्ञान के द्वारा वह ज्ञेय है। अतएव उसके अस्तित्व से इंकार नहीं किया जा सकता।

सर्वज्ञ के प्रत्यक्ष आत्मा, अल्पज्ञ अनुमान लगावे।
बिना जीव संशय हो किसके, क्यों न ध्यान में लावे?

भगवान् फरमाते हैं—हे गौतम! कान शब्दों को सुनता है आंख रूप-रङ्ग को देखती है, नाक गंध को सूंघती है, जीभ रस का आस्वादन करती है और स्पर्शेन्द्रिय ठंडा, गर्म, चिकना, रूखा आदि स्पर्शों को ग्रहण करती है। सब इन्द्रियों के विषय नियत हैं। अपने नियत विषय को छोड़कर इन्द्रियां दूसरे विषय को ग्रहण नहीं कर सकतीं। ऐसी स्थिति में

पहले देखी हुई स्तुओं का स्मरण कौन करता है? सुख-दुख की अनुभूति किसको होती है? अनेक इन्द्रियों से होने वाले अनुभव को जोड़ने का काम कौन करता है? अर्थात् 'मैं सुन भी रहा हूँ और देख भी रहा हूं' इत्यादि जोड़ रूप ज्ञान किसे होता है? यह विषय किसी भी इन्द्रिय के द्वारा नहीं जाने जा सकते। अगर इन्द्रियों के अतिरिक्त और कोई ज्ञाता न होता तो इस प्रकार का ज्ञान होता ही नहीं। मगर इस ज्ञान का होना अनुभव से सिद्ध है, इससे भली भांति साबित हो जाता है कि इन्द्रियों के सिवाय भी कोई और ज्ञाता है। उसी ज्ञाता को 'आत्मा' कहते हैं।

शरीर रथ के समान है तो आत्मा उसे चलाने वाले सारथि के समान है। सारथी न हो तो रथ व्यवस्थित रूप से नहीं चल सकता इसी प्रकार आत्मा के अभाव में शरीर व्यवस्थित रीति से नहीं चल सकता। शरीर जड है। उसमें बुद्धिपूर्वक क्रिया करने की शक्ति नहीं है। जैसे—यह रास्ता कांटों वाला है, इससे मुझे नहीं जाना चाहिये। यह मार्ग कटकरहित है, सम है, सीधा है और इसमें चोरों का, लुटेरों का और जङ्गली जानवरों का भय नहीं है। इस मार्ग से मुझे जाना चाहिए। इस प्रकार का विचार जड़ शरीर नहीं कर सकता। मगर चूं कि इस प्रकार के विचार पूर्वक गमन-आगमन आदि क्रियाएँ होती हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि शरीर में, शरीर के अतिरिक्त और कोई दूसरी शक्ति भी मौजूद है।

मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूं इत्यादि ज्ञान भी शरीर को नहीं होता। अगर यह ज्ञान शरीर को होता तो मुर्दे को भी ऐसा ज्ञान होना चाहिए।

भाइयो ! यह कर्मों का ही प्रभाव है कि आत्मा स्वयं अपने अस्तित्व के सबंध में संदेह प्रकट करता है मगर जैसा कि मैंने अभी कहा था, इसी संदेह से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। जड़ शरीर में संदेह करने की भी शक्ति नहीं है। संदेह प्रकट करने वाला स्वयं आत्मा है और वह अपने ही विषय में संदेह प्रकट करता है। आत्मा न होता तो संदेह किसे होता ?

आत्मतत्त्व बड़ा ही गूढ़ है। आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए ही योगी जन चिरकाल पर्यन्त कठोर से कठोर साधना करते हैं। इस साधना से चेतना शक्ति पर चढ़ा हुआ आवरण का मैल जब दूर हो जाता है तो आत्मा अपने असली रूप में चमकने लगता है। इस प्रकार सर्वज्ञता प्राप्त हो जाने पर आत्मा प्रत्यक्ष प्रमाण से मालूम होने लगता है छद्मस्थ अर्थात् अल्पज्ञ लोग आत्मा को पूरी तरह प्रत्यक्ष से नहीं जान सकते। वे अनुमान प्रमाण से आत्मा का अस्तित्व जानते हैं। आगम प्रमाण भी आत्मा का अस्तित्व बतलाता है। आगम में वही बातें लिखी गई हैं जिन्हें ज्ञानियों ने अपने अलौकिक ज्ञान से प्रत्यक्ष देखा था। आगम भी विश्वसनीय प्रमाण है। आत्मा के संबंध में आगम कहता है:—

सव्वे सरा नियट्टंति,
तक्का जत्थ न विज्जइ,
मई तत्थ न गाहिया,
ओए, अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने,

से न दीहे, न हस्से, न वट्टे, न तंसे, न चउरंसे, न परिमंडले,
न किण्हे, न नीले, न लोहिये न हालिद्दे, न सुक्लि, न सुरभिगंधे, न दुरभिगंधे,
न तित्ते, न कडुए, न कसाए, न अंबिले, न महुरे,
न कक्खडे, न मउए, न गुरुए, न लहुए' न सीए, न उण्हे, न निद्धे, न लुक्खे,
न काऊ, न रुहे, न संगे; न इत्थी न पुरिसे, न अन्नहा,
परिन्ने, सन्ने, उवमा न विज्जइ—अरूवी सत्ता, अपयस्स पयं नत्थि।
से न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे।

—श्रीमदाचारांग, अ ५, उ ६

भगवान् फरमाते हैं—शुद्ध आत्मा का स्वरूप बतलाने के लिए कोई भी शब्द समर्थ नहीं है। आत्मा तक तर्क की गति नहीं है। बुद्धि का वहां प्रवेश नहीं है। शुद्धात्मा चिन्मय है-समस्त उपाधियों से शून्य और समग्र विश्व का ज्ञाता है।

आत्मा न लम्बा है, न छोटा है, न चपटा गोल है, न त्रिकोण है, न चौरस हैं, न गोलमटोल है, न काला है, न नीला है, न लाल है न पीला है न सफेद है, न सुगंध है और न दुर्गन्ध है न तिक्त है, न कटुक है न कसैला है, न खट्टा है, न मीठा है, न खुरदरा है न नरम है, न भारी है, न हल्का है, न ठंडा है, न गर्म है, न चिकना

है, न रूखा है, न शरीरधारी है न पुनर्जन्मा है न आसक्त है, न स्त्री है, न पुरुष है और न अन्यथा (नपुंसक) है।

आत्मा परिज्ञाता है, ज्ञाता है, उसके लिए कोई उपमा नहीं है। वह अरूपी सत्ता है। वह अपद है, अतएव कोई भी पद उसका वर्णन करने में समर्थ नहीं है। वह शब्दरूप रूप-रूप, गंध-रूप, रसरूप और स्पर्श रूप नहीं है।

भव्यजीवों ! सर्वज्ञ भगवान् प्रत्यक्ष रूप से आत्मा को जानते हुए भी स्पष्ट कहते है कि उसका स्वरूप शब्दों के गोचर नहीं है, किसी भी शब्द से आत्मा का पूर्ण स्वरूप नहीं बतलाया जा सकता; तब हम जैसे अल्पज्ञ किस प्रकार आत्मा का प्रत्यक्ष आपको कराएँ ? रूप, रस, गंध और स्पर्श पुद्गल के धर्म हैं। इनमें से आत्मा में कोई भी धर्म नहीं पाया जाता। अतएव उसे आंख, जीभ, नाक और हाथ पैर आदि जान नहीं सकते। आत्मा चित्-चमत्कारमय वस्तु है। एक मात्र ज्ञान के द्वारा ही उसकी सत्ता समझी जा सकती है। सर्वज्ञ भगवान् उसे प्रत्यक्ष देखते हैं और अल्पज्ञों को अनुमान का आश्रय लेना पड़ता है अथवा आगम प्रमाण पर श्रद्धा रख कर आत्मा के साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

संसार के समस्त दर्शनशास्त्र एक प्रकार से आत्मा-अनात्मा के विवेचन में ही समाप्त हो जाते हैं। फिर भी उस गहन आत्मा-तत्त्व को समझना बहुत कठिन है। अतएव अनुमान और आगम से ही आत्मा का अस्तित्व समझना चाहिए।

आपको या आपके किसी कुटुम्बी को कोई बीमारी हो जाती है। यह बात आपको भलीभांति मालूम है। इस विषय में

संशय करने की कोई गुञ्जाइश नहीं है। मगर बीमारी क्या आपको दिखाई देती है? अगर दिखाई नहीं देती तो फिर आप कैसे मान लेते हैं कि बीमारी हुई है? आखिर चेहरे को देखकर बीमारी का अनुमान करना पड़ता है। वैद्य आता है और नब्ज देखकर अनुमान करता है कि रोगी को अमुक बीमारी है। वह आयुर्वेदशास्त्र के आधार से बीमारी के लक्षण मिलाकर बीमारी का निश्चय करता है और फिर औषध देता है। इस प्रकार अनुमान और शब्द (आगम) प्रमाण ही बीमारी को बतलाते हैं। तो जब बीमारी जैसी स्थूल वस्तु भी प्रत्यक्ष से नहीं जानी जाती तो अरूपी-अमूर्त्तिक आत्मा का प्रत्यक्ष किस प्रकार हो सकता है? कहा है:—

अरूपी होने से इन्द्रिय अगोचर, वर्णादिक नहीं पावे।
चौथमल कहे इन्द्रभूतिजी, दीक्षित तब हो जावे॥

भगवान् ने इन्द्रभूति से कहा—गौतम! विश्वास रक्खो कि शरीर में आत्मा है। मान लो, आपको कोई मकान दिखाई दिया। अब आप सोचने लगे की इसमें कोई आदमी है या नहीं? आपने यह जानने के लिए आवाज दी, मगर जवाब नहीं मिला। तब आपका साथी कहता है—मकान में पत्थर फेंकना शुरू करो। आदमी होगा तो बोल पड़ेगा। अन्यथा समझ लेना कि कोई आदमी नहीं है। इसी प्रकार आपको शरीर दिखाई देता है। शरीर देखकर आप सोचते हैं कि इसके भीतर आत्मा है या नहीं? तब ज्ञानी कहते हैं कि शरीर में सुई चुभाकर देख लो। अगर दर्द मालूम पड़े तो समझ लेना कि शरीर में जीव है। अगर सुई चुभाने का कुछ असर न हो तो समझना कि यह मुर्दा है निर्जीव है।

इस प्रकार की अनेक युक्तियों से जब प्रभु ने इन्द्रभूति को आत्मा की सत्ता समझाई तो उनका संशय दूर हो गया। वाद-विवाद करके भगवान् को पराजित करने के उद्देश्य से गये हुए इन्द्रभूति भगवान् के चरणों पर गिर पड़े बोले—देवाधिदेव ! मैं आपके चरणों का सेवक बनना चाहता हूँ। अभी तक अज्ञान के कारण ज्ञान के मद में चूर होकर आपके विषय में दुर्भावना रखता आ रहा था, आपने मेरा मद दूर कर दिया है। प्रभो ! मुझे अज्ञान के अन्धकार से निकाल कर ज्ञान के प्रकाश में ले चलिये। मुझे दिव्य आलोक की झांकी दिखाइये। मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कीजिए।

इस प्रकार प्रभु की अभ्यर्थना करके इन्द्रभूति ने दीक्षा अङ्गीकार की। जब गुरुजी स्वयं शिष्य बन गये तो शिष्यों का तो कहना ही क्या था ? इन्द्रभूतिजी के पांच सौ शिष्यों ने भी संयम स्वीकार कर लिया।

वायु-वेग से यह समाचार अग्निभूति के पास पहुंचा। अग्निभूति को बड़ा आश्चर्य और क्रोध हुआ। उन्होंने सोचा मालूम होता है, महावीर बड़ा भारी जादूगर है ! उसने मेरे बड़े भाई और सर्वश्रेष्ठ विद्वान् को भी अपने झांसे में ले लिया ! मगर मैं उसे छोड़ने वाला नहीं। मैं महावीर की महिमा को मिट्टी में मिला दूंगा और अपने भाई को वापस ले आऊंगा। इस प्रकार सोचकर अग्निभूति भगवान् के समक्ष उपस्थित हुए। चर्चा हुई और सम्यग्ज्ञान का प्रकाश पाकर उनकी दृष्टि भी खुल गई। वे भी अपने पांचसौ शिष्यों के साथ भगवान् के शिष्य बन गये।

तीसरे भाई वायुभूति से नहीं रहा गया। वे गये। उन्होंने भी भगवान् के सामने अपना मस्तक झुकाया और अपने बड़े भाइयों का मार्ग अङ्गीकार किया। अर्थात् वे भी अपने शिष्यों सहित साधु हो गए। इस प्रकार भगवान् के ग्यारह गणधर और ४४०० साधु-शिष्य बने।

चम्मालीसे चेला किया, एक दिवस में महाव्रत दिया।
गौतम सरीखा हुआ वजीर, मन वांछित पूरण महावीर॥

जिस दिन इन्द्रभूति गौतम ने दीक्षा ली, उसी दिन दधिवाहन राजा की लड़की चन्दनवाला ने भी दीक्षा धारण की। इधर इन्द्रभूतिजी प्रधान शिष्य बने और उधर चन्दनबालाजी प्रधान शिष्या बनीं।

इसके पश्चात् भगवान् के पावन धर्मोपदेश का निर्मल प्रवाह वहा। भगवान् के समस्त उपदेश गौतम जैसे ज्ञानी भी पूरा ग्रहण न कर सके और जितना ग्रहण कर सके उतना भी न कह सके तो हम जैसे उसे पूरी तरह किस प्रकार समझ और कह सकते हैं? फिर भी उनके उपदेश की मुख्य २ बातें आज भी आगमों में सुरक्षित हैं और हम चाहें तो उन्हीं से अपनी आत्मा का कल्याण कर सकते हैं। भगवान ने फरमाया कि—हे भव्यजीवो! यदि तुम सुखी रहना चाहते हो तो किसी के सुख में बाधक मत बनो। यदि तुम अपने लिए दुःख को अनिष्ट समझते हो तो दूसरों को दुःख न पहुँचाओ। जिस प्रकार तुम स्वयं जीवित रहना चाहते हो, उसी प्रकार सभी प्राणी जीवित रहना चाहते हैं। कोई मरना नहीं चाहता। अतः किसी के प्राणों का वियोग मत करो। कहा है:—

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं॥

—श्री दशवैकालिक

भव्यो ! प्राणिवध अत्यन्त घोर है—घोर वेदना का कारण है। सभी जीव जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता। यही समझ कर संयमी पुरुष प्राणिवध का त्याग करते हैं।

इसी प्रकार असत्य भाषण मत करो, चोरी मत करो, अब्रह्मचर्य का सेवन मत करो, परिग्रह सम्बन्धी ममता त्यागो, और क्रोध, मान, माया तथा लोभ को छोड़ो, राग, द्वेष और कलह का परित्याग करो।

भाइयो ! भगवान् ने कलह को अठारह पापों में गिना है। चाहे धन सम्पत्ति के लिए कलह हो, चाहे जमीन-जायदाद के लिए हो, चाहे धर्म, सम्प्रदाय, मत या पन्थ के लिए हो कलह हर हालत में पाप है और वह त्याग देने के योग्य है। मगर बड़ी लज्जा की बात है कि आज जैन-जैन भी आपस में लड़ते हैं। जैन मात्र एक ही परम पिता की सन्तान हैं। सब चौबीस तीर्थङ्करों के उपासक हैं। सब का एक ही जपने योग्य महामन्त्र है। सब की मान्यता के अनुसार वही नौ पदार्थ हैं, सब षट् द्रव्यों को स्वीकार करते हैं, सब का मोक्ष मार्ग—सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप है। इत्यादि बातों मे समानता होते हुए भी और स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रति दृढ़ आस्था रखते हुए भी जैन आपस मे लड़े और कलह करें तो कैसे समझा जाय कि उन्होंने प्रभु के वास्तविक उपदेश को समझा है ? मगर कलियुग का जमाना है। कलियुग में मनुष्यों की बुद्धि विपरीत हो गई है:—

कैसे-कैसे कलियुग में जैनी लड़ते आपस मांय।
एक दूजे की आपस माहीं, निंदा कर हुलसाय।
अगर किसी की त्रुटि मिली तो, जैसे धन मिल जाय॥

देखो, मन्दिरमार्गी, साधुमार्गियों की निंदा करते हैं और साधुमार्गी, मंदिरमार्गियों की तथा तेरापंथियों की निंदा करते हैं और तेरहपंथी साधुमार्गियों एवं मंदिरमार्गियों की निंदा करते हैं। साधुमार्गियों और मंदिरमार्गियों में भी कई उपसम्प्रदाय हैं। वे आपस में ही एक दूसरे की निन्दा करते हैं। निन्दा के कारण कलह का जन्म होता है और उससे अशान्ति फैलती है। चार आदमी कहीं मिलते हैं तो दूसरों की बुराई करना ही उनका काम होता है। उन्हें निन्दा करने में ऐसा मज़ा आता है, मानों कलाकंद खाने को मिल गया हो! अचानक खजाना पाकर जैसे लोभी को प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार कई लोगों को परनिन्दा करके प्रसन्नता होती है। किन्तु भगवान् ने फरमाया है कि दूसरों की निन्दा करना पाप है। असली जैनी के मुख से निन्दा का शब्द नहीं निकल सकता।

श्रीसंघ की करे बुराई, विधर्मी पै जाय।
सुन कर वह तो हँसी उड़ाए, तो भी शर्म न आय॥

भाइयो! किसी की भूल तुम्हें मालूम पड़ी हो या किसी साधु के व्यवहार में तुमने त्रुटि देखी हो तो हिम्मत के साथ, धर्म-प्रेम के साथ, शुद्ध भावना से, सुधार के उद्देश्य से उसी के पास जाओ। जो कुछ कहना हो उसी के सामने कहो। उसकी भूल उसे समझाओ। झूठ-सच मिला कर दुनिया में ढिंढोरा मत पीटो:—

जो श्रीसंघ की बुराई करता है वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है। अतएव श्रीसंघ की, साधु की, साध्वी की या श्रावक श्राविका की निन्दा का ढिंढोरा पीट कर तुम क्या पाओगे? जो लोग धर्म को नहीं समझते, उनके पास तक जब वह निन्दा पहुँचती है तो वे हँसी उड़ाते हैं। वे एक के दोष को सब का दोष समझ लेते हैं और उस निन्दा को सब पर लागू करके कहते हैं— देखो, तुम्हारे साधु तो ऐसे होते हैं, वैसे होते हैं!

कुछ लोग समझते हैं कि हम अमुक साधु की निन्दा करके धर्म की सेवा कर रहे हैं। मगर वे भूल में हैं। वे धर्म का उपहास कर रहे है, करा रहे हैं, जिनशासन को मलिन बना रहे हैं! मैंने ऐसे ऐसे गन्दे पर्चे देखे हैं, जिनका जिक्र करना भी अत्यन्त ही लज्जाजनक प्रतीत होता है। भले ही वह पर्चे एक साधु या कुछ साधुओं के विरुद्ध छपाये गये हों, मगर वे सभी की शान में बट्टा लगाने वाले हैं और कभी शस्त्र का काम देंगे। ऐसे पर्चे छपाने वाला व्यक्ति घोर पाप का भागी होता है। वह निन्दा और कलह उत्पन्न करके संघ में अशान्ति और उत्तेजना फैलाता है, संघ की प्रतिष्ठा को कलंकित करता है। जो लोग मुझसे प्रेम करते है और मुझ पर श्रद्धा रखते हैं, उन्हें मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि वे कभी इस घोर कृत्य का आचरण न करें। अगर तुम्हारा विरोधी विचार वाला ऐसे जघन्य उपायों का अवलम्बन ले तो भी तुम सभ्यतापूर्वक उसे समझाओ और निन्दनीय उपायों को काम मे मत लो। अहिंसा और प्रेम मे जादू का चमत्कार है। इन्द्रभूति, भगवान् को पराजित करने की दुर्भावना लेकर उनके सामने गये थे, मगर भगवान् की उत्कृष्ट अहिंसा के सामने उनकी

समस्त दुर्भावना विलीन हो गई। उनका अभिमान गल कर पानी हो गया।

आज जैन संघ की कलहमयी स्थिति देखकर खेद और आश्चर्य होता है:—

कितना तीव्र कषाय है देखो, जैनी नाम धराय।
पानी में ही आग लगी है, बड़ो अचम्भो थाय॥

राग द्वेष पूरी तरह जीतने वाले जिन कहलाते हैं। जो जिन के मार्ग का अनुसरण करें अर्थात् जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग पर चले उसे जैन कहते हैं। इस हिसाब से जैन में औरों की अपेक्षा कम कषाय होना ही चाहिए। परन्तु जो लोग अपने आपको जैन कहते हैं और फिर भी तीव्र कषाय रखते हैं, उन्हें क्या कहा जाय? जैन में तीव्र कषाय होना पानी में आग लगने के समान आश्चर्यजनक है।

सभी एक से नहीं होते हैं, जैन जगत् के मांय।
चौथ मुनि कहे समभावों बिन, तिरना होगा नाय॥

संसार में क्या जैन और क्या दूसरे धर्म के अनुयायी—सब एक सरीखे नहीं होते। सब की रुचि और शक्ति बराबर नहीं होती। जो ज्यादा शक्तिमान हैं और जिनका कषाय भाव कम हो गया है, उनमें अधिक उच्च आचार पाया जाता है। जो कम शक्तिशाली हैं, उनके आचार में त्रुटियां भी मिल सकती हैं। इस प्रकार की तरतमता गृहस्थों में तो होती है, साधुओं में भी होती है, सदा रही है और सदा रहेगी।

मेवाड़ की एक घटना याद आ रही है। किसी समय ऐसा अवसर आ गया कि उदयपुर के महाराणा साहब ने हुक्म दे दिया कि मुँहपत्ती वाले साधुओं को बाहर निकाल दिया जाय। उस समय मानजी स्वामी नामक एक मुनि जिनके विषय में मैं पहले जिक्र कर चुका हूं-वहीं विराजते थे। उन्होंने सोचा गलती किसी एक की और फल भोगना पड़ेगा सभी को! महाराणा गेहूँ के साथ घुन को भी पीसना चाहते हैं! उनका आदेश साधु मात्र के लिए अप्रतिष्ठा का कारण है। इससे जैन धर्म की उज्ज्वल कीर्ति में कालिमा लगती है। मुँह पत्ती वाले साधु चाहे जैसे हों, फिर भी संसार के किसी भी सम्प्रदाय के साधुओं से आचार में हीन नहीं है ऐसी स्थिति में यह आदेश अन्यायपूर्ण है और इसे बदलवाना ही चाहिए।

मानजी स्वामी बड़े सामर्थ्यवान् थे। जब महाराणा सोने के लिए अपने महल में गये तो रात्रि में वहां जाकर खड़े हो गये। महाराणा जिस ओर दृष्टि डालते, उस ओर साधु ही साधु नजर आते! महाराणा यह अद्भुत दृश्य देखकर चकित रह गये। तब स्वामीजी ने उनसे कहा—महाराणा! आप क्या कर रहे हैं? आप धर्म के रक्षक हो फिर धर्म के विपरीत आज्ञा आपने कैसे जारी की?

महाराणा सारा भेद समझ गये। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार करके स्वामीजी से क्षमा याचना की। इस घटना के बाद राणाजी ने धर्म का उद्योत किया।

आज भी महाराणा साहब के परिवार में धर्म के प्रति बड़ी भावना है। मैंने एक बार महाराणा भूपालसिंहजी से कहा-

मरते हुए जीव को बचा लेने से बड़ा धर्म होता है। कुछ दिनों बाद वे शिकार खेलने के लिए जयसमंद गये। आदमियों ने कहा—वह शेर आया! राणाजी बोले—बंदूक लाओ। उन्होंने बंदूक ली और निशाना ताक कर वापिस रख दी। और बोले—जाओ गुरु महाराज से कहो कि आज मैंने मरते हुए जीव को बचाया है। कर्मचारियों ने आकर मुझ से यह बात कही।

सारांश यह है कि इस गये-बीते जमाने में भी कई एक अच्छे-अच्छे मुनिराज मौजूद हैं। कई उत्कृष्ट चारित्रशाली हैं। कई ज्ञानवान् हैं, कई सेवाभावी हैं और कई वक्ता और प्रभावक हैं। कई सामान्य साधु भी हैं। सब की यथोचित सेवाभक्ति करना योग्य है।

भाइयो! धर्म के प्रति सच्चा अनुराग रक्खो। जब आपका अन्तःकरण धर्म के रँग से रँग जायगा तो आप निन्दा, विकथा और कलह आदि पापों से सहज ही बच सकेंगे। वीतराग भगवान् का धर्म सच्चा है। आपस में मत लड़ो।

तेरहवां पाप अभ्याख्यान, चौदहवां पैशुन्य; पन्द्रहवां परपरिवाद, सोलहवां रति-अरति, सत्तरहवां मायामृषावाद और अठारहवां मिथ्यात्व है।

इन सब पापों की विस्तृत विवेचना की आवश्यकता है। पर आज समय पूरा हो रहा है। फिर कभी इन पर विचार करेंगे।

भगवान् ने पापों के परित्याग का जो उपदेश दिया, उसको समझ कर जो पालन करेगा, उसे आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

जोधपुर
ता० ४-६-४८



सामायिक



स्तुतिः—

आपादकण्ठमुरुश्रृंखलवेष्टिताङ्गा,—
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे भगवन् ! कहां तक आपके गुण गाये जाएँ ?

भगवान् ऋषभदेवजी के नाम में ऐसी अद्भुत और अनूठी शक्ति है कि यदि कोई पुरुष किसी जेलखाने मे पड़ा हो-हाथों में

हथकड़ियां और पैरों में बेड़ियां पड़ी हों—पैरों से लेकर गले तक भारी-भारी सांकलों से जकड़ा हो, काल कोठरी में बन्द कर दिया गया हो, ऐसे समय में वह पुरुष यदि सच्चे हृदय से आपका स्मरण करे अर्थात् 'ॐ उसभ, ॐ उसभ, ॐ उसभ!' इस प्रकार चार अक्षरीय महामन्त्र का जाप करे तो वह शीघ्र ही समस्त बंधनों और भयों से मुक्त हो जाता है। भगवान् ऋषभदेवजी की उपासना, स्मरण, ध्यान, कथाश्रवण या कथा करने से उसके घर में आनन्द-मंगल हो जाता है। ऐसे भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार हो!

कई भाई और बहिन वर्षी तप करते हैं। उन्हें ध्यान रखना चाहिये कि वे वैसाख शुक्ला तृतीया से तप आरभ करे। साथ ही भगवान् ऋषभदेवजी की कथा सुनें और सुनावें। भगवान् के महामहिमामय जीवन चरित को पढ़ें, सुनें, उस पर मनन करें और उसे अपने जीवन मे उतारने का यत्न करें। इस प्रकार एक वर्ष तक धर्मकथा श्रवण करते-करते, आगामी वैसाख शुक्ला तृतीया (अक्षय तृतीया) को तपस्या की पूर्ति करें। इसी दिन भगवान् ऋषभदेवजी का पारणा हुआ था।

वर्षी तप एक वर्ष तक चलता है। मगर तप के साथ विशेष धर्मध्यान अवश्य करना चाहिए। धर्मध्यान न किया, भगवान् की कथा का श्रवण न किया और अपने भावों को निर्मल न बनाया, हृदय में भक्ति का प्रवाह नहीं बहाया तो तपस्या का फल अधूरा रह जाता है।

भगवान् ऋषभदेव जगन्मान्य महापुरुष हो गये हैं। उनके नाम में जो शक्ति है, उसका वर्णन हजार जिह्वाओं से भी नहीं

किया जा सकता। और जो शक्ति एक तीर्थङ्कर के नाम में है वही शक्ति सब तीर्थङ्करो के नाम मे है, क्योंकि चौबीसों तीर्थंकरों की आत्मा ने समान रूप से अपना विकास करके पूर्ण वीतरागता और निर्मलता प्राप्त की है। चौबीसों तीर्थङ्करों में अंतिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर हुए। उन्हीं का आज शासन चल रहा है। कल व्याख्यान मे, संक्षेप में उनकी जीवनी पर प्रकाश डाला गया। भगवान ऋषभदेव और भगवान महावीर के शासन में कोई अन्तर नहीं था। दोनों ने अपने-अपने समय में साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना की थी।

जो महापुरुष तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन करके अरिहन्त अवस्था प्राप्त करते हैं वे तीर्थङ्कर कहलाते हैं। तीर्थङ्कर का अर्थ है—तीर्थ की स्थापना करने वाले। जिसके सहारे संसार रूप सागर से तिरा जाय, उसे तीर्थ कहते हैं और उसका निर्माण करने वाले भगवान् तीर्थङ्कर कहलाते हैं। बडी बडी नदियों को सरलता के साथ पार करने की सुविधा के लिए उनके एक छोर से दूसरे छोर तक पुल बना दिया जाता है। पुल बन जाने से नदी को पार करना सरल हो जाता है। वह पुल भी तीर्थ कहलाता है। यह द्रव्य तीर्थ है—लौकिक तीर्थ है। इसी प्रकार संसार सागर से पार होने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं। उस भावतीर्थ के सहारे संसारी जीव अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं और भवसागर को पार करते हैं।

जो पुरुष या स्त्रियां पांच महाव्रतों का पूर्ण रूप से पालन करे उन्हें साधु और साध्वी कहते हैं। पांच समिति, तीन गुप्ति आदि जिनोक्त आचार का पालन करना उनके लिए अनिवार्य

होता है। तथा जो एकदेश—विरति रूप बारह व्रतों का पालन करें, अष्टमी-चतुर्दशी आदि विशिष्ट तिथियों को पौषध करें और श्रावकोचित अन्य आचार का पालन करें उन्हें श्रावक और श्राविका कहते हैं। इस प्रकार श्रावकों और श्राविकाओं की भी भगवान् ने बड़ी कद्र की है। किन्तु आप लोग लोभ-लालच और आसक्ति में फँस कर अपनी मर्यादा को छोड़ रहे हैं। देखो, आप की बैठक के बाद देवताओं की बैठक है क्योंकि उनमें चारित्र-व्रत-प्रत्याख्यान नहीं आता है। इस तरह तुम्हारा पद देवों से भी ऊँचा है। और यह बहिनें, जो बेला, तेला अठाई करती हैं, दान देती हैं शील पालती हैं और भावना भाती हैं, तो यह भी तीर्थ में शामिल हैं।

आगम में कहा गया है कि चारों तीर्थों का गुणग्राम करता हुआ जीव कर्मों की कोटि खपाता है और उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो तीर्थङ्कर गोत्र बांधता है। इसके विपरीत पाप करते हुए जीव को उत्कृष्ट रसायन आवे तो अनन्त काल पर्यन्त नरक-निगोद में रुलता फिरता है।

बहिनो और भाइयो ! तीर्थङ्कर भगवान् ने तुम्हें तीर्थ का अंग माना है, तुम्हें बड़ी जबर्दस्त प्रतिष्ठा प्रदान की है। इस प्रतिष्ठा के योग्य बनना और उसे कायम रखना आपका कर्त्तव्य है। भगवान् द्वारा दी हुई प्रतिष्ठा को निभाने में आपका ही एकान्त हित है। अगर आप तपस्या करेंगे तो आपके ही कर्मों का नाश होगा। इसी प्रकार दान, शील और भावना भी आपके कल्याण के लिए ही है।

आप सामायिक करते हो मगर उसके स्वरूप को समझते

भी हो ? सामायिक श्रावक का नौवां व्रत है अड़तालीस मिनिट तक दो करण और तीन योगों से आस्रवों का त्याग करना सामायिक व्रत कहलाता है। यों सामायिक शब्द का अर्थ है—समभाव की प्राप्ति कराने वाली साधना। जिसके द्वारा विषमभावों से—राग द्वेप और वासनाओं से मलीन अन्तकरण में समभाव जागृत होता है और आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, वह सामायिक है। यह भावसामायिक है। भावसामायिक के लिए कोई निश्चित कालमर्यादा नहीं है। वह थोड़ी देर के लिए भी आ सकती है। मगर आचार्यों ने द्रव्यसामायिक के लिए उक्त आवश्यक मर्यादा बांधी है।

सामायिक सच पूछो तो समस्त साधना का सार है। राग द्वेप रूप विपमभावों के कारण आत्मा में जो व्याकुलता और चञ्चलता वनी रहती है, उसका मिट जाना और समता का जागृत हो जाना वहुत बड़ी वात है। अतएव जब आप द्रव्य-सामायिक करें तो भावसामायिक की प्राप्ति के लिए भी अवश्य प्रयत्न करें। भाव के विना अकेले द्रव्य से पूरे फल की प्राप्ति नहीं होती है।

भावसामायिक प्राप्त करने के लिए चित्त को किसी भी प्रशस्त कार्य में उलझाए रखना चाहिए। उस समय में भगवान् वीतराग की वाणी को सुनना, स्वयं स्वाध्याय करना, ध्यान करना, स्तुति करना, तत्व का चिन्तन-मनन करना या महामन्त्र का जाप करना आवश्यक है। मन वड़ा ही चपल है। वह पल भर में ही न जाने कहां से कहां पहुँच जाता है। कुछ सोचते-सोचते कुछ सोचने लगता है। इसलिए वड़ी ही सावधानी के

साथ उसकी चौकसी करने की आवश्यकता है। हर समय सजग रह कर मन को काबू में रखने वाला ही ध्यान योग सामायिक आदि की साधना मे सफल हो पाता है। अतएव एक भी क्षण के लिए कभी मन को बेलगाम मत होने दो। उसे स्वाध्याय ध्यान आदि में ही लगाये रहो। फिर आपकी सामायिक असली सामायिक होगी और सामायिक करने से आपको आत्मशान्ति प्रतीत होने लगेगी। आपको अपूर्व आनन्द की प्रतीति होगी।

मान लीजिए, कोई व्यक्ति अपने सिर पर बोझा उठाये ले जा रहा है। वह रास्ते में थक जाता है तो उस बोझ को टेके पर रखकर विश्राम करता है। ठीक इसी प्रकार गृहस्थ लोगों पर संसार के प्रपंचों का बोझा लदा हुआ है। यह बोझ सामायिक का टेका लेकर हल्का किया जा सकता है। सामायिक करने से थोड़ी देर साक्षात् शान्ति का अनुभव होता है। गधे की तरह रात दिन कुटुम्ब–परिवार, मोह-माया और ममता का वजन मत लादे रहो। सामायिक करते समय तो दुनिया के बोझे से शान्ति मिलती ही है, मगर सामायिक के संस्कार दूसरे समय में भी शान्ति प्रदान करते हैं।

शंकराचार्य से पूछा गया—तुम्हें ईश्वर कब मिलता है? उन्होंने उत्तर दिया-जब हम संध्या करते हैं! मुहम्मद साहब से यही प्रश्न पूछा गया तो उन्होंने कहा—नमाज के समय! ईसा-मसीह से पूछा गया तो जवाब मिला–जब हम प्रार्थना करते हैं। और जैनी से पूछा गया कि तुम ईश्वर से कब मिलते हो? तो उसने कहा–जब हम सामायिक करते हैं! जब आत्मा समस्त संकल्प–विकल्पों से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप में लीन हुआ कि समझ लो वह परमात्मा से मिल गया।

अरे भाइयो ! जब पेट के लिए राजा, सेठ साहूकार, के पास कई बार जाकर राम-राम करते हो, तब ठेठ के लिए अर्थात् मुक्ति प्राप्त करने के लिए भी तो दो घड़ी सामायिक किया करो ! आपको किसी से मिलने जाना है तो कहते हो—अमुक समय पर पहुँचना चाहिए, नहीं तो वे हवाखोरी के लिए निकल जाएँगे। और फिर मोटर, बग्घी या साइकिल से भागते हो कि वे कहीं निकल न जाएँ। ऐसा क्यों किया जाता है ? क्योंकि उनसे मतलब है। तो क्या आत्मा का शाश्वत हित करना उससे भी छोटा मतलब है ? फिर परमात्मा से मिलने के लिए क्या इससे भी अधिक उत्साह और तत्परता नहीं होना चाहिए ? मुसलमान पांच बार नमाज पढ़ते हैं तो तुम्हारे लिए एक सामायिक करना भी क्या भारी है ? जितना ज्यादा गुड़ डालोगे उतनी ही मिठास आएगी। जितनी ज्यादा सामायिकें करोगे उतना ही अधिक लाभ होगा।

एक मालदार आदमी दिन निकलते ही बाजार में गया। वहां कूंजड़े की टोकरी मे एक सुन्दर पीला पका हुआ आम उसने देखा। सेठ को आम बहुत प्रिय लगते थे, अतः वह आम देख कर उसके मुंह में पानी भर आया। सेठ ने कूंजडे से उस आम की कीमत पूछी। कूंजड़े ने उसकी कीमत चार आना बतलाई। मगर उस समय सयोगवश सेठ की जेब में पैसे नहीं थे। पास ही एक आदमी की हवेली थी, जिससे उक्त सेठ एक लाख रुपया मांगते थे। सेठ ने उसे आवाज दी, मगर वह आदमी जागता हुआ भी बोला नहीं। तब सेठजी ने आकर उसके नौकर को आवाज देकर कहा—अपने मालिक को कह दे कि सेठजी याद कर रहे हैं। मगर उत्तर मिला कि अभी याद करने की जरूरत नहीं

है। सेठजी ने कहलाया-मुझे इस समय सिर्फ चार आने की आवश्यकता है! मगर जब उन्हें वह भी नहीं मिले और आम खरीदने की प्रबल लालसा हुई तो सेठजी ने कहा-लाख रुपये का ब्याज छोड़ता हूँ। तब भी पैसे न मिलने पर कहा-पच्चीस हजार छोड़ता हूँ, पचास हजार छोड़ता हूं, अच्छा ले एक लाख ही छोड़ता हूँ। इतने पर भी वह आदमी नहीं उठा। सेठजी ने कहा-नहीं उठते तो न सही, वहीं से चार आने फेंक दो, मगर उसने नहीं फेंके।

इसी समय कोई दूसरा आदमी उधर से निकला। उसने पूछा-सेठ साहब! कैसे खड़े हैं? सेठजी ने कहा-अजी, थोड़े देर के लिए चार आने की आवश्यकता पड़ गई है। उसने चार आने निकाल कर सेठजी को तत्काल दे दिये और सेठजी ने आम खरीद लिया।

सेठजी घर पहुँच कर दुकान पर गये। दुकान पर जाते ही उन्होंने सब से पहले जो काम किया, वह यही कि उस आदमी को-जिस पर वे लाख रुपया मांगते थे नोटिस दिया कि ब्याज समेत एक लाख रुपया अदा करो। नोटिस पाकर उसके होश उड़ गये।

भाइयो! एक लाख के बदले चार आने पैसे भी न देने वाले आदमी को आप क्या कहते हैं? मूर्ख या अक्लमन्द? वह अब अपनी तकदीर के लिए रोता है। मगर रोने से स्थिति कैसे बदल सकती है? आखिर पश्चाताप करने पर भी कोई नतीजा नहीं निकला। कुड़की हुई और पत्नी का घाघरा तक नीलाम पर चढ़ गया।

यह तो एक दृष्टान्त है। मगर इस दृष्टान्त में जो मर्म है, उसकी ओर आप ध्यान दीजिए। उचित अवसर पर थोड़े में जिससे छुटकारा पाया जा सकता है, अवसर बीत जाने पर बहुत से भी पिंड नहीं छूटता। अवसर बड़ी चीज है। आप जानते ही हैं कि बिमारी जब आरम्भ होती है तो इलाज करने से सहज ही मिट सकती है। मगर अवसर पर न चेतने से खराबी बढ़ती जाती है। बढ़ते बढ़ते वह इतनी बढ़ जाती है कि असाध्य हो जाती है और प्राण लेकर ही जाती है। इसलिए अवसर पर चेत जाना ही बुद्धिमानों का काम है। जो दुराग्रह से, लापरवाही से या अज्ञान से अवसर को खो देते हैं, उन्हें पछताना पड़ता है और पछताने के बाद भी कोई लाभ नहीं होता।

जब मैं तुमसे कहता हूं कि कम से कम एक सामायिक ही प्रतिदिन किया करो, तब समझ लो कि मैं लाख रुपये के बदले चार आना ही मांग रहा हूं। अगर तुम इतना दे दोगे तो तुम्हारे पापों का अन्त हो जायगा—किसी दिन सिर पर चढ़े हुए ऋण के बोझ से छुटकारा पा जाओगे। अगर आज तुमने प्रमाद किया, लापरवाही की और चार आने भी न चुकाये तो याद रखना, कुडकी आएगी और उस समय तुम पूरी तरह विवश और दुखी हो जाओगे।

सामायिक करने में एक पैसा भी खर्च नहीं होता और पापों से बचाव होता है। नवीन कर्मों का आस्रव रुकता है और पहले के पापों की निर्जरा होती है। भाइयो! तुम्हें अपूर्व अवसर मिला है। इसे मत चूको। इससे अधिक लाभ उठा लो। आप

में से जिन्होंने प्रतिदिन सामायिक करने की प्रतिज्ञा पहले न ली हो वे आज अवश्य ले लें।

(बहुत से श्रोताओं ने प्रतिज्ञा ली)

भाइयो ! सामायिक की महिमा अचिन्तनीय है। सामायिक इसी भव में परम शान्तिदायक और परलोक में परमानन्ददायक है। सामायिक मोक्ष का मार्ग है। कोई कितना ही कायक्लेश क्यों न करें, सामायिक भाव अगर नहीं आया तो कदापि मुक्ति नहीं मिल सकती। एक सामायिक करने से ६२५६२५६२५ पल्योपम तक स्वर्ग—सुख की प्राप्ति होती है। सामायिक का यह तो लौकिक फल है। लोकोत्तर फल शिव-सुख की प्राप्ति होना है। कहा भी है:—

समभावभावियप्पा; लहेइ मुक्खं न संदेहो।

अर्थात् जिसकी आत्मा समभाव से भावित हो गई है, वह मुक्ति पाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

भाइयो ! सामायिक कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि से भी अधिक फल देने वाली है। मानव-जीवन की और कमाई तो यहीं रह जाती है और कभी कभी घोर दुख का भी कारण बन जाती है परन्तु सामायिक असली कमाई है। वह शाश्वत सुख का द्वार खोल देती है। कहा है—

असली है यही कमाईजी, करे जो कोई समाईजी।
उत्तम के मन में भाईजी, मूर्ख के दाय नहीं आईजी॥

अरे ! सामायिक करना तो कुंकुम का तिलक लगाना है।

यह तिलक लगाते समय सिर क्यों हिलाते हो ? पापों का आचरण करना कोयले का तिलक लगाना है। बचना हो तो उससे बचो। कुंकुम के तिलक से क्यों बचते हो ? यह तो शुभ सौभाग्य का चिह्न है। आठ पहर नहीं तो चार पहर, और चार पहर नहीं तो दो पहर और दो पहर भी नहीं तो दो घड़ी ही सामायिक धर्म का आचरण किया करो। शास्त्रों में सामायिक का बड़ा महत्व बतलाया है। सामायिक अनमोल वस्तु है। विशाल साम्राज्य की भी उसके आगे कोई कीमत नहीं है।

एक बार मगध सम्राट श्रेणिक ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—भगवन् ! मैं इस शरीर को त्याग कर कहां जाऊंगा ?

भगवान् पूर्ण निस्पृह और वीतराग थे। किसी के लिहाज या दबाव या भय से सत्य का अपलाप नहीं करते थे। जो बात जैसी उनके ज्ञान में झलकती थी, उसे उसी रूप में प्रकट कर देते थे। क्या आप में ऐसी शक्ति है ? सत्य के प्रति आपकी ऐसी अनन्य निष्ठा है ? नहीं, भाइयों ! यह हृदय की दुर्बलता है। आप जिस बात को जिस रूप में समझते हैं, उसे उसी रूप में स्पष्ट नहीं कह सकते। भय से, लिहाज से या दबाव से आप सत्य को प्रकट नहीं करते। मगर ऐसा करना उचित नहीं है। सत्य के प्रति गाढ़ी आस्था रखने वाला व्यक्ति कभी किसी भी कारण से असत्य का आश्रय नहीं लेता। वह नम्रता धारण करेगा अवश्य फिर भी सत्य को नहीं छोड़ेगा।

श्रेणिक मगध का प्रतापी सम्राट था और भगवान का अग्रगण्य भक्त था। उसने अपने अगले भव के संबंध में भगवान्

से प्रश्न किया था। मगर भगवान् ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया— सम्राट्! तुम इस देह को त्याग कर नरक में जाओगे! जब तुम श्रावक नहीं बने थे, उस समय शिकार खेलने गये थे। तुमने एक गर्भवती हिरनी को तीर मारा था। उसी समय तुम्हारे नरक की आयु का बंध हो चुका है। उसे भोगना ही पड़ेगा। तुम्हें ८४ हजार वर्ष पर्यन्त नरक में दुःख उठाना पड़ेगा।

श्रेणिक बोले—भगवन्! नरक से बचने का कोई उपाय बतलाइए।

भगवान् ने सामायिक धर्म की महिमा प्रकट करने के लिए कहा—अगर तुम पूणिया श्रावक की एक सामायिक खरीद सको तो नरक से बच सकते हो।

राजा श्रेणिक को यह सुन कर प्रसन्नता हुई। उसने सोचा मेरे पास क्या कमी है? विशाल भंडार भरा है और लम्बा चौड़ा राज्य है। एक सामायिक खरीद लेना क्या बड़ी बात है? पूणिया श्रावक को मुँहमांगा मूल्य देकर उससे एक सामायिक खरीद लूंगा।

श्रेणिक को अपने भौतिक वैभव का भरोसा था। उसे अपने भण्डार का भारी अभिमान था। इस अभिमान को गला देने के लिए भगवान् ने कितने सुन्दर उपाय का आयोजन किया! कितने कौशल के साथ उन्होंने समझा दिया कि संसार का बड़े से बड़ा राज्य और लक्ष्मी का भंडार भी धर्म क्रिया की तुलना में तुच्छ और नाचीज है।

श्रेणिक पूणिया श्रावक के पास पहुँचे। उन्होंने कहा— श्रावकजी! आप प्रतिदिन सामायिक करते हो। चाहोगे तो एक

सामायिक अधिक कर लोगे। मुझे आपकी एक सामायिक की आवश्यकता है। जितनी कीमत आप कहेंगे मैं चुका दूंगा।

कहते हैं, पूणिया श्रावक निर्धन गृहस्थ था। उसने अपने पास का धन दान कर दिया था। वह रुई की पौनियां वना-वना कर अपनी आजीविका चलाता था। आज उसे ऐसा अवसर प्राप्त था कि अगर चाहता तो वहुत-सी सम्पत्ति उसे मिल सकती थी। राजपाट भी मिल सकता था। लम्बे समय तक नरक मे निवास करने से वचने के लिए राजा श्रेणिक उसे क्या नहीं दे डालते ? मगर नहीं, पूणिया श्रावक के पास भौतिक वैभव नहीं था तो क्या हुआ ! उसे सन्तोष का परम धन प्राप्त था जिस धन के सामने और सव धन तुच्छ हो जाते हैं। इस कारण राजा की मांग पर पूणिया ने चतुराई से कहा—सम्राट् ! एक सामायिक की कीमत कितनी होती है, यह मुझे मालूम नहीं है। जिन्होंने आप से मेरी सामायिक खरीदने के लिए कहा है, उन्हीं से पहले कीमत पूछ लीजिए।

पूणिया श्रावक और उसकी पत्नी दोनों ही सन्तोष और उदारता की प्रतिमूर्ति थे। एक दिन श्रावक के मन में आया-अपन तो खाते और पेट भरते ही हैं लेकिन कभी किसी साधर्मी को तो खिलाते ही नहीं हैं ! अपने यहां कोई साधर्मी भाई जीमने नहीं आया ! आता भी कैसे, कभी किसी को वुलाया भी तो नहीं है। साधर्मी को जिमाने से भी बड़ा पुण्य होता है।

श्रावक की पत्नी ने कहा—आपकी भावना वहुत शुभ है। साधर्मी भाई को जिमाने मे मैं अपना अहोभाग्य समझूंगी, मगर जिमाएँगे कैसे ? हमारी कमाई उतनी ही है जितनी हमें

अपना पेट भरने को चाहिये। अगर ज्यादा कमाई करें तो दूसरे को जिमा सके!

श्रावक बोला—नहीं, जिस झंझट को हमने छोड़ दिया है, उसे फिर से अपनाना उचित नहीं है। इससे अधिक आरम्भ-समारम्भ का अड़गा अब नहीं करना है। फिर भी साधर्मी को जिमाने का मार्ग निकालना होगा। मार्ग यही है कि मैं और तुम दोनों वारी वारी एकान्तर उपवास करें। दोनों एक दिन जीमेंगे और एक दिन उपवास करेंगे। इस प्रकार अपने पेट से जो बच जायगा, वह साधर्मी को जिमा देंगे।

ऐसा भावनाशाली था पूणिया श्रावक! तभी तो भगवान् महावीर के मुखारविन्द से उसकी प्रशंसा के पुनीत पुष्प झरे थे! भगवान ने उसकी झूठी प्रशंसा नहीं की थी। वास्तव में वह प्रशंसनीय गुणों से युक्त था। व स्वधर्मी-वात्सल्य और आहारदान की महिमा को भलीभांति समझता था—

मिथ्यादृष्टिसहस्रेषु, वरमेको ह्यणुव्रती।
अणुव्रतिसहस्रेषु, वरमेको महाव्रती ॥१॥
महाव्रतिसहस्रेषु, वरमेको हि गणधरः।
तीर्थंकर समं पात्रं, न भूतो न भविष्यति ॥२॥

हजारों मिथ्यात्वियों को जिमाने की अपेक्षा एक अणुव्रतधारी श्रावक को जिमाने में ज्यादा लाभ है। हजारों अणुव्रतियों को जिमाने से जितना लाभ होता है उसकी अपेक्षा एक महाव्रती को आहारदान देने से अधिक लाभ होता है। इसी प्रकार हजारों महाव्रतियों की अपेक्षा एक गणधर उत्तम पात्र हैं और

तीर्थङ्कर भगवान के समान पात्र तो कोई हो ही नहीं सकता। तीर्थङ्कर को आहारदान देने से महान् निर्जरा और महान् पुण्य की प्राप्ति होती है।

पूणिया श्रावक पौनियां वेच वेच कर अपना पेट भरता है और दूसरे दिन के लिए एक पैसा भी नहीं बचाता। पति-पत्नी ने वारी-वारी से एकान्तर शुरु कर दिया। एक दिन वह उपवास करता है और दूसरे दिन उसकी पत्नी उपवास करती है। प्रतिदिन एक आदमी के भोजन की जो वचत होती है उससे एक साधर्मी को भोजन कराया जाता है! इस प्रकार वह त्याग-तपोमय जीवन व्यतीत कर रहा था।

एक दिन की बात है। दिन का तीसरा प्रहर वीत गया, मगर कोई साधर्मी जीमने के लिये नहीं मिला। पूणिया श्रावक खोज मे निकले। वापिस लौटते समय, सामने से आते हुए अभयकुमार मिले। पूणिया श्रावक ने कहा—'कुमार! कृपा कर मेरी कुटिया में पधारो और भोजन करो तो मैं भी पारणा कर लूं।' श्रेणिक नन्दन अभयकुमार पूणिया की प्रार्थना सुन कर गद्गद हो गये। उन्होंने कहा–धन्य हो श्रावकजी! वास्तव में आपने धर्म का मर्म समझा है और उसे अपने जीवन मे उतारा है। आपका मानव जीवन सफल है। आपने मनुष्य जाति में जन्म लेकर पूरा-पूरा लाभ उठाया है! आप सरीखे धर्मनिष्ठ और पुण्यचरित श्रावकों से भगवान के संघ की शोभा है।'

अभयकुमार अत्यन्त प्रसन्नता के साथ पूणिया के घर गये। उनके भोजन कर चुकने के पश्चात् पूणिया श्रावक ने उपवास का पारणा किया। अभयकुमार अपने महलों मे आये। महा-

राजा श्रेणिक से उन्होंने पूणिया-श्रावक का जिक्र किया और कहा—श्रावक तो बहुत हैं और सब अपनी-अपनी शक्ति के अनुरूप व्रत, नियम प्रत्याख्यान आदि करते हैं, मगर पूणियाजी की तरह सन्तोषशील और त्याग-भावना वाला श्रावक कोई मेरे ध्यान में नहीं आया। राजा श्रेणिक ने यह प्रशंसा सुन कर उन्हें अपने दरबार में बुलाया और हजारों आदमियों के बीच उनकी प्रशंसा करके खिताब देने की इच्छा प्रकट की।

यह सब देख-सुनकर पूणिया श्रावक को बहुत संकोच हुआ। वह कहने लगे—नरेश! आपका और राजकुमार का बड़ा सौजन्य है कि आप मेरे साधारण गुण को महान् रूप दे रहे हैं। लेकिन अपने दोषों को मैं भलीभांति समझता हूँ। वास्तव में मुझमें श्रावक के भी पूरे लक्षण नहीं हैं। आप मेरी प्रशंसा न करें। पदवी के योग्य तो मैं हूं ही नहीं।

वास्तव में जो पुरुष आत्मतत्त्व का वेत्ता होता है, वह अपने अवगुणों, दोषों और त्रुटियों पर नजर रखता है। दुनिया उसके गुणों को देखती है और सराहती है और वह अपने दोषों को देखता है और धिक्कारता है। उसे अपनी छोटी-सी भी त्रुटि कांटे की तरह चुभती है। इसके विपरीत जो आत्मतत्त्व से अनभिज्ञ है, जिसने धर्म के रहस्य को नहीं समझ पाया है, वह अपने अवगुणों को नहीं देखता, बल्कि अपने अवगुणों को भी गुण के रूप में ग्रहण करता है। दुनिया उसके दोष देखती है और वह अपने गुणों का ढिंढोरा पीटा करता है।

पूणिया श्रावक धर्मज्ञ पुरुष था। वह अपनी प्रशंसा को एक प्रकार का उपसर्ग समझता था। उसका ध्यान त्रुटियों की

ओर ही था और उन्हीं को दूर करने की वह चेष्टा किया करता था। तभी तो भगवान् महावीर ने राजा श्रेणिक से कहा था कि अगर पूणिया की एक सामायिक खरीदना संभव हो तो तुम्हारा नरकगति से बचना सभव हो ! जब पूणिया ने कह दिया कि मैं अपनी सामायिक की कीमत नहीं जानता। जिन्होंने आपको यह बात कही है, उन्हीं से सामायिक की कीमत पूछ लीजिए।

श्रेणिक ने भगवान् से पूणिया की एक सामायिक की कीमत पूछी तो भगवान ने फरमाया—सोने के बावन पहाड़ तो उसकी दलाली में जाते हैं। सामायिक का मोल तो हो ही नहीं सकता। यह सुनकर श्रेणिक को बड़ी निराशा हुई। तब भगवान् ने उन्हें आश्वासन दिया—श्रेणिक! भूतकाल में अनन्त बार सभी जीव नरक में रह चुके हैं। एक बार और चले जाने का विषाद करने से कोई लाभ नहीं है। तुम्हारी नरक की आयु बँध चुकी है, वह छूट नहीं सकती। किये कर्म भोगने ही पड़ेंगे। तभी आत्मा की शुद्धि होगी। आत्मशुद्धि होने पर नरक से निकल कर तुम मेरी तरह तीर्थङ्कर होओगे।

ये तीर्थंकर मुनि राव रंक नहीं गिनते,
महाराज कर्म बलवंत कहावे जी।
विन भुगत्यां छूटे नांय,
निकाचित जो बँध जावे जी॥

भाइयो ! कर्म दो प्रकार के होते हैं–निकाचित और अनिकाचित। निकाचित अर्थात् अत्यन्त चिकने कर्मों को छुटाने के लिए चाहे जितना यत्न करो, विना फल दिये वे नहीं छूट सकते।

मगर जो कर्म निकाचित नहीं होते वे तपस्या आदि करने से फल दिये बिना ही. केवल प्रदेशों से उदय में आकर, छूट जाते हैं। कर्मों यह का स्वभाव सब के लिए समान है। कर्म किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते। चाहे कोई तीर्थङ्कर हो, मुनि हो, राजा हो या रंक हो, वे किसी के साथ रियायत नहीं करते।

भगवान् ने कहा—मगध नरेश ! चिन्ता का कोई कारण नहीं है। तुम्हारी जिस आत्मा ने कर्मों का उपार्जन किया है वही आत्मा कर्मों को नष्ट करने में भी समर्थ है।

उत्तराध्ययन शास्त्र में कहा है:—

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥

अर्थात्—आत्मा स्वयं ही अपने दुःखों को तथा सुखों को उत्पन्न करता है और स्वयं ही उनका विनाश भी करता है। सन्मार्ग-गामी आत्मा आप ही अपना मित्र है और दुर्मार्गगामी आत्मा आप ही अपना शत्रु है।

इस प्रकार मुख्य वस्तु यही है कि अपने आपको वीतराग भगवान् के मार्ग पर अग्रसर किया जाय। इसी मे आत्मा का सच्चा हित और सुख है।

अन्यत्र भी कहा है:—

यथा धेनुसहस्त्रेषु, वत्सो गच्छति मातरम्।
यथा यच्च कृतं कर्म, कर्त्तारमनुगच्छति ॥

हजारों गायें इकट्ठी होकर चरने जाती हैं। उनसे से किसी का वच्छा छूट जाय और अलग हो जाय, तो भी वह अपनी माता को पहचान कर उसके पास पहुँच जाता है। इसी प्रकार जो कर्म जिसने जिस रूप में किया है, वह उसे उसी रूप में प्राप्त होता है। यह मत समझो कि पाप भूल में पड़ जायगा और किसी दूसरे को उसका फल भोगना पड़ेगा। दुनिया मे तीन चीजें कोई किसी को नहीं दे सकता। उसमें पहली चीज हैं आयु। एक आदमी अपनी आयु दूसरे को कदापि नहीं दे सकता। वेटा मरता हो और वाप चाहे कि मैं अपनी आयु के पच्चीस वर्ष अपने वेटे को देकर जीवित रख लूं तो यह सम्भव नहीं है। दूसरी चीज पुण्य है जो कोई किसी को दे ले नहीं सकता। इसी प्रकार तीसरी चीज पाप को भी कोई नहीं दे सकता और न कोई ले ही सकता है। यह तो जो करेगा सो भरेगा।

गौतम स्वामी एक बार गोचरी के लिए गये। उन्होंने एक अन्धे को देखा जो इधर उधर भटक रहा था। कुछ आगे वढे तो देखा कि एक आदमी ठीकरा लिये मांगता फिर रहा है वह दया भरे स्वर में कहता है—भूखा हूँ, कोई रोटी का टुकड़ा दे दो! फिर उन्होंने एक कोढी को देखा और एक जलोदर रोग से पीड़ित पुरुप को भी देखा। उन्होंने एक स्त्री को अपने पति से कहते हुए सुना—मेरे कोई पुत्र नहीं है। मेरी जिन्दगी वेकार है! वुढापे में कौन मुझे सहारा देगा!

गौतम स्वामी को यह सव दृश्य देखकर वडी करुणा आई। उन्होंने भगवान् के पास आकर कहा—प्रभो! आज वस्ती में दयाजनक दृश्य देखकर मेरे चित्त में वड़ी ठेस पहुची है भगवन्!

यह लोग किस पाप के कारण दुखी हुए हैं ? बिना पाप किये कोई दुखी नहीं होता।

सुनो-सुनोजी कर्म जो जैसा करे वही पाए।
महावीर प्रभु गौतम को यों समझाए ॥

श्री भगवान् ने गौतम से कहा—जो जीव जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है।

गौतम स्वामी बोले—भंते ! किस कर्म के उदय से जीव निर्धन होता है ?

भगवान्—गौतम ! जो दूसरों का धन या माल चुराता है, वह मर कर अगर मनुष्य हो तो निर्धन होता है। उसे दाने दाने के लिए दूसरों का मुँह देखना पड़ता है।

हे भाइयो ! अगर किसी ने किसी की चीज उठा ली हो तो अभी अवसर है। चुपके से उसकी चीज रख आना। हृदय में बल हो तो उससे क्षमायाचना करना। इतना बल न हो तो चुपके से ही रख देना। नहीं तो फिर ऐसा होगा कि खाने को दाना भी नहीं मिलेगा। अरे ! थोड़ी देर के लिए मुँह मीठा कर लेगा तो क्या तेरी जिन्दगी निकल जायगी ? हजारों का माल भी मिल जायगा तो भी वह ठहरने वाला नहीं है। तेरे भाग्य में निर्धनता है तो निर्धन ही रहेगा। अनीति से इकट्ठा किया धन गांठ के धन को भी लेकर हवा हो जायगा। जब तक रहेगा तब तक भी वह सुख नहीं दे सकेगा।

मान लो, किसी ने किसी को पांच रुपया गायों को चारा डालने के लिए दिये। उसने आठ आने हड़प लिये। तो यह भी बड़ी चोरी है और इसके फलस्वरूप उसे दरिद्रता भोगनी पड़ेगी। कोई उदार हृदय पुरुष दान कर रहा हो या परोपकार कर रहा हो और कोई उसमें विघ्न डाल दे या उसे रोक दे तो विघ्न डालने वाला या रोकने वाला दरिद्र होता है।

एक बार अकबर ने वीरबल से पूछा—कोई आदमी दरिद्री होता है, इसका क्या मतलब है ? वीरबल बोले—दरिद्री मनुष्य स्वयं तो दुःख पाता ही है, अगर कोई उसका मुँह देख ले तो उसे भी दिन भर खाने को नहीं मिलता। बादशाह ने कहा—मैं ऐसे दरिद्री को देखना चाहता हूं। तब वीरबल ने सोचा—यह अच्छी बलाय गले पड़ी।

आखिर वीरबल एक दरिद्री के पास गये और उससे कह आये कि आज बादशाह के यहां खाना खाने आना। वह आदमी शाम को आया तो बादशाह ने उसे एक कमरे में बंद कर दिया। वहीं उसे खिलाया पिलाया और ताला बन्द करके चाबी अपने पास रख ली। बादशाह ने अपने सेवकों को हुक्म दिया—कल सवेरे जल्दी खाना तैयार हो जाना चाहिए।

सवेरा हुआ। बादशाह ने कमरे का ताला खोला। दरिद्री को देखा और तुरन्त भोजन करने बैठे। उसी समय आदमियों ने आकर कहा—हुजूर ! एक शेर आ गया है वह अभी नहीं पकडा गया तो फिर हाथ आना कठिन हो जायगा। बादशाह ने कहा—अच्छा, खाना रहने दो। फिर आकर खा लेंगे। बादशाह घोड़े पर चढ़कर रवाना हो गये और उन्हें दिन भर

इधर उधर फिरना पड़ा। शाम हो गई, न शेर मिला और न खाना ही मिला। रात को जब लौटा तो खाना नसीब हुआ।

बादशाह सोचने लगे—बीरबल की बात सच निकली। आज उस दरिद्र का मुँह देखा तो दिन भर खाना नहीं मिला। यह दरिद्र रोज ही किसी को भूखा रखता होगा। ऐसे आदमी को जिन्दा नहीं रहने देना चाहिए। आखिर बादशाह ने शूली पर चढ़ा देने का हुक्म दे दिया। जल्लाद उसे पकड़कर शूली पर ले जाने लगे तो उसने कहा—बीरबल! तेरा खोज मिल जाय! तूने ही मेरी दुर्दशा करवाई है। बीरबल ने पूछा—भाई बात क्या है? तब वह बोला—बादशाह ने मुझे शूली पर चढ़ाने का हुक्म दे दिया है। न तुम यहां मुझे लाते न मुझे प्राणों से हाथ धोना पड़ता। यह सुन बीरबल बोले—भाई तुम दरिद्र हो। दुखी रहते हो, मर जाओगे तो दुःख से बच जाओगे। मरने से डरने की क्या बात है? दरिद्री बोला—कुछ भी हो, मैं मरना नहीं चाहता। बीरबल ने उसके कान में कुछ कह दिया।

जब दरिद्री को शूली दी जाने लगी तो उसने कहा—मेरी अन्तिम इच्छा है कि बादशाह से एक बार मुलाकात करू। बीरबल बादशाह के पास गया। उसने दरिद्री की अन्तिम इच्छा बादशाह को बतलाई। साथ ही मिल लेने की भी सलाह दी। कहा—यदि आप उससे नहीं मिलेंगे तो आकबत में उसका आपसे बदला रह जायगा। बादशाह सवारी पर चढ़कर उससे मिलने चले। वहां पहुँचकर बादशाह ने कहा—क्या कहना चाहते हो?

बीरबल ने दरिद्री के कान में जो मंत्र फूंक दिया था, वही उसने अपनी जीभ से बाहर निकाल दिया! दरिद्री बोला जहांपनाह!

मेरा मुँह देखने से आपको भोजन नहीं मिला, यह मेरा गुनाह है। इस गुनाह की सजा शूली है। मगर आपका मुख देखने से मुझे आज शूली मिल रही है, यह किसका गुनाह है ? और जिसका यह गुनाह हो उसको क्या सजा मिलनी चाहिए।

बात बड़ी मार्मिक थी। बादशाह बीरबल की तरफ देखने लगे। बीरबल ने कहा—हुजूर ! बात तो ठीक है। दुनिया यही कहेगी कि बादशाह का सुबह-सुबह मुँह देखने वाले को प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। यह बात आपकी शान के खिलाफ है।

बादशाह बोला—यह तो मेरे नाम पर बड़ा भारी कलंक है। अच्छा, इस दरिद्री को छोड़ दिया जाय और दस हजार रुपया इनाम दे दिये जाएँ। यही हुआ। दरिद्री छूट गया।

यह तो एक दृष्टान्त है। तात्पर्य यह है कि जो आदमी चोरी या अन्य प्रकार की अनीति से धन कमाता है, वह ऐसा दरिद्री बनता है कि लोग उसका मुँह देखना भी पाप समझते हैं। यह सब कर्मों के खेल हैं। मगर कर्म करना या न करना आपके हाथ की बात है। अगर आप पहले ही विवेक के साथ प्रवृत्ति करेंगे तो अशुभ कर्मों से बचे रहेंगे।

गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से दूसरा प्रश्न किया—भंते ! किसी के पास विपुल सम्पत्ति है—लाखों का माल है, लेकिन वह उस सम्पत्ति का उपभोग नहीं कर सकता। यह किस कर्म का फल है।

भगवान् ने कहा-जो पहले अपने हाथों से दान देता है किन्तु बाद मे देने के लिए पछतावा करता है, वह दान के फल-

स्वरूप सम्पत्ति का स्वामी तो होता है किन्तु पश्चाताप करने के कारण उस सम्पत्ति को भोगने में असमर्थ होता है।

मेरा जन्म-स्थान नीमच है। नीमच के पास तीन मील की दूरी पर एक जमुनिया नाम का गाव है। वहां सातवें दिन बाजार लगा करता था। एक आदमी जिसके पास करीब दो लाख का धन था मगर जो स्वभाव से कंजूस था, बैल पर माल लाद कर बाजार के लिए चला। गर्मी के दिन थे। उसकी पत्नी ने झारी के पानी मे डेढ़ पाव मिश्री घोल दी। पत्नी जानती थी कि इसके लिए वे गालियां तो जरूर देंगे मगर रास्ते में मिश्री मिला पानी पीकर आराम भी पायेंगे। वह आदमी एक जगह बैठा। पानी पिया तो मीठा लगा। समझ गया कि इसमें मिश्री घोली गई है। उसे यह जानकर बड़ा गुस्सा आया। मन ही मन पत्नी को अनेक गालियां दीं और क्रोध में आकर उस पानी को पास के एक बिल में उंडेल दिया। बिल में एक सांप था। मीठा पानी उस सांप के मुँह मे पड़ा तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। वह फुक्कार कर बाहर निकला। उसने मनुष्य की आवाज में कहा—मैं पानी पीकर बहुत प्रसन्न हुआ हूं, अतः तुझे जो मांगना है सो मांग ले। उस आदमी ने कहा—मै अपनी पत्नी से पूछकर मांगूंगा।

वह घर लौट आया। अपनी पत्नी से कहने लगा—क्यों तूने मिश्री डालकर पानी मीठा किया? ऐसा करने से पहले मुझसे पूछ तो लेती! लेकिन खैर, उस पानी को पीकर एक सांप खुश हुआ है और वह इच्छानुसार वर मांगने के लिए कहता है। सांप से क्या वर मांगूं, यही पूछने के लिए लौट कर आया हूँ।

स्त्री ने कहा—यही वर मांगो कि मैं अपना धन आराम से खा पी सकूं।

सेठ सांप के पास पहुँचा। उसने उपर्युक्त वर मांगा तो सांप ने कहा—धन का उपभोग करना तेरी तकदीर में नहीं है। हां, दो चार लाख रुपया और चाहिए तो मांग ले।

देखो, धनवान् सोचता है कि धन मेरा है, परन्तु उस धन के भी न मालूम कितने मालिक हैं! और फिर धन का क्या ठिकाना है? कोई धन गांव में आग लग जाने से भस्म हो जाता है, करोड़ों का धन पानी बरसने और बाढ आ जाने से नष्ट हो जाता है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के विभाजन के समय क्या हुआ? लखपति फकीर हो गये। लाखों-करोड़ों का धन लूट लिया गया। किन्तु हिन्दुओं और मुसलमानों में जो मांसाहारी थे मुख्य रूप से उन्हीं पर आफत आई। मारवाड़, मालवा, मेवाड़, गुजरात दक्षिण आदि प्रान्तों में जहां धर्म की प्रधानता रही, वहां कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। जुल्म करने वाले और नारी जाति का अपमान करने वाले उनकी वेइज्जती करने वाले लोग दुखी हुए हैं और होंगे। पाकिस्तान में हिन्दुओं और खास कर हिन्दू स्त्रियों पर जो अत्याचार हुए हैं उनका विवरण सुनकर इधर के लोग भी उत्तेजना के वशीभूत हो गये हैं। यहा के लोगों की भी बुद्धि बिगड़ गई है। मगर ऐसे विकट प्रसगों पर ही तो अपनी बुद्धि को सम्भाल कर रखने की आवश्यकता होती है। अगर आप अपने विवेक का उपयोग करेंगे तो आपको न्यायनीति का मार्ग मिलेगा। अत्याचार का बदला अत्याचार से लेना और पशुता का मुकाबिला करने के लिए स्वयं पशु बन

जाना सही मार्ग नहीं है। और फिर बदला लिया किससे जा रहा है? पाकिस्तान में अत्याचार करने वाले वहां मौज करें और उनके बदले यहां के लोग सताये जाएँ, यह न्याय का कौनसा पहलू है? खैर।

मेरे कहने का आशय यह है कि जब जुल्म छा जाता है तब कहर पड़ता है। जहां पाप ज्यादा होता है वहीं दुःख ज्यादा होता है। कभी कभी गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है। जुल्म करने वाला पहले तो भगवान को भूला रहता है और जब अपने जुल्मों का नतीजा भोगना पड़ता है तब उसे भगवान् की याद आती है। वह पुकारता है-'हे भगवन्! रक्षा करो!' तब उसके जुल्म ही मानों उससे कहते हैं-रे हत्यारे! तूने किसी पर रहम नहीं किया तो मैं कैसे रहम करूँ? अरे जालिम! तुझे अपने ऊपर रहम चाहिये था तो दूसरों पर रहम क्यों नहीं किया।

जिसके दिल में रहम नहीं, उसके दिल में रहमान नहीं।
जिसने सत्संगति करी नही, उसको शहूर और ज्ञान नहीं॥

जिसके दिल में दया होगी, उसके दिल में भगवान् भी रहेंगे। रहम नहीं तो रहमान भी नहीं रहेंगे। अगर जालिम के दिल में भगवान् आ जाएँगे तो दयालु के दिल में कौन आएगा? भाई, तू दुनिया में पाप कर रहा है। उन पापों का घड़ा ऐसा फूटेगा कि वह रोके नहीं रुकेगा।

मतलब यह है कि जो जैसा कर्म करेगा, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ेगा। जो दान देगा उसे अनेक गुना मिलेगा, मगर जो दान देकर पश्चाताप करेगा, वह सम्पत्ति पाकर भी उसका उपभोग

नहीं कर सकेगा। सांप रूप देवता ने उस सेठ से कह दिया धन का उपभोग करना तुम्हारे भाग्य में नहीं है।

फिर गौतम स्वामी ने प्रश्न किया प्रभो ! कई लोग संतान के अभाव में बड़े दुखी होते हैं। लड़के या लड़की के लिए तरसते हैं। मगर उन्हें सन्तान की प्राप्ति नहीं होती। वह किस कर्म का फल है।

भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम ! जिसने पथिकों को आराम देने वाले और जनता को लाभ पहुँचाने वाले छायादार वृक्षों को कटवाया है, उसे सन्तान की प्राप्ति नहीं होती। जिन्होंने गर्भवती स्त्री या पशु को मारा है या दूसरे का महल गिराया है, वे जन्म-जन्मान्तर में निपूते होते हैं। अगर ऐसा करने वाली कोई स्त्री हो तो वह बांझ रहती है।

गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने फरमाया—जिसने पूर्व जन्म में अंडे बहुत खाये हैं, उस आदमी के सन्तान हो-होकर मर जाती है अथवा बहू आती और लड़का मर जाता है। कई लोगों का कहना है कि अंडे में जीव नहीं है, लेकिन ऐसा कहने वाले मूर्ख हैं। पहले जीव आता है, तब अंडा बनता है। जो लोग अंडे खाया करते हैं, जन्म-जन्म में उन्हें सन्तान-वियोग का दारुण दुःख सहन करना पड़ता है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—प्रभो ! जीव किस पापकर्म के उदय से काना या अंधा होता है ?

भगवान् ने फरमाया—जो लकड़ी या लोहे की आर से बैलों को मारते हैं और उन पर शक्ति से अधिक बोझा लादते हैं,

वे अपने किये पाप के उदय से काने होते हैं। और हे गौतम ! जो लोग धुआं करके मधुमक्खियों को सताते हैं और उसके छत्ते को तोडकर शहद निकालते हैं, वे अपने कर्म का फल भोगने के लिए अन्धे होते हैं।

गौतम स्वामी—प्रभो ! कोई-कोई बालक काट-काट कर माता के पेट से बाहर निकाला जाता है, सो किस कर्म के उदय से।

भगवान्—गौतम ! जो दूसरों के यश को, कीर्त्ति को प्रतिष्ठा को देख—सुनकर ईर्षा करते हैं, उसे सहन नहीं कर सकते और इस कारण दूसरों पर भूठा कलंक लगाते हैं; कीर्ति को मिटाने की कोशिश करते हैं, उन्हें कट कट कर मरना पड़ता है।

गौतम—भगवन्! कोई-कोई जीव गूंगे होते, आं-आं किया करते हैं, यह किस कर्म का फल है ?

भगवान्—गौतम ! पूर्व जन्म में जिसने दूसरों की निन्दा की है, बुराई की हैं, दूसरों को नीचा दिखाया है, वह अपने इस पापकर्म के फलस्वरूप गूंगा होता है।

भाइयो ! तुम्हें परलोक की यात्रा करनी है—करनी ही पड़ेगी। मगर किस दर्जे में बैठकर और कहां जाना है, यह बात पूरी तरह आपके ही हाथ में है। आप जिस किसी भी दर्जे का टिकट लेना चाहें ले सकते हैं। जहां जाना चाहें वहीं जा सकते हैं। इसके लिए कोई रोकटोक नहीं है। मगर तीसरे दर्जे का टिकिट लेकर अगर दूसरे या पहले दर्जे में बैठना चाहेंगे तो नहीं बैठ सकेंगे। रेल्वे की यात्रा मे कदाचित् पोल चल जाती

है, मगर परलोक की यात्रा में पोल नहीं चल सकती। वहां तो जिस दर्जे का टिकिट खरीदेंगे उसी दर्जे में जाना ही पड़ेगा। अतएव अगर आपकी इच्छा प्रथम या द्वितीय दर्जे में जाने की हो तो आपको पहले ही ध्यान देना चाहिए। पहले ही उसका मूल्य चुकाना चाहिए। वह मूल्य क्या है ? रुपयों और पैसों में वह मूल्य नहीं चुकाया जाता। वह दान, त्याग, तप, व्रत, संयम, नियम आदि के रूप में चुकाया जाता है। निश्चित् समझो, तनिक भी संदेह मत रक्खो कि जैसा करोगे वैसा भरोगे।

श्री गौतम स्वामी फिर प्रश्न करते हैं-प्रभो कोढ़ किस कर्म के उदय से होता है ?

भगवान्-हे गौतम ! जो दूसरे के घर में आग लगाता है, उसे कोढ़ी होना पड़ता है।

गौतम—भगवन् ! कइयों के पाले-पोसे लड़के मर जाते हैं सो किस पाप का उदय समझना चाहिए ?

भगवान्-हे गौतम ! जो दूसरों की धरोहर को हड़प जाते हैं उनके पाले पोसे लड़के मर जाते हैं।

औरों की धरी धरोहर को, जो आप हजम कर जाते हैं।
गौतम ! उसके सुत जवान-जवान हो हो करके मर जाते हैं॥

मान लीजिए, एक सेठ पर विश्वास करके किसी आदमी ने उसके यहां दो हजार रुपये जमा करा दिये। बाद में सेठ की नीयत बिगड़ गई। उसने कह दिया-मेरे यहां आपकी कोई रकम जमा नहीं है। यह धरोहर को हड़पना कहलाता है। इसी प्रकार

अगर सेठने मुनीम को दो हजार रुपये व्यापार के निमित्त सौंपे। मुनीम ने वह रकम सेठ के व्यवसाय में न लगा कर बीच ही में, अपने पास रख ली या उड़ा दी यह अमानत में खयानत कहलाता है। यह भी धरोहर को हड़पने का ही एक रूप है। इस पाप के उदय से लड़के जवान हो-हो कर मर जाते हैं और उसे अतिशय उग्र संताप का शिकार होना पड़ता है? कई लोग कहते हैं-महाराज, मेरा नौजवान छोकरा मर गया! मगर यदि वह महाराज, से न पूछ कर अपनी अंतरात्मा से पूछेगा तो उसे यह निष्ठुर उत्तर मिलेगा—मरे क्यों नहीं डाकी, तू दूसरों का माल हजम करके जो आया।

इसीलिए तो महाराज कहते हैं कि गरीबों के गले पर छुरी मत फेरो। हाकिम बन जाओ तो रिश्वत लेने का विचार भी मत करो। मगर इस समय महाराज की सुनता कौन है? इस समय तो एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं और ऐसे काम करने में संकोच नहीं करते। साहूकार हुए तो आसामियों का गला घोंटा, हाकिम हुए तो रिश्वतखोरी का बाजार गर्म कर दिया और व्यापारी हुए तो ब्लेक मार्केटिंग करके तिजोरियां भरने की चिन्ता हुई! आगे की बात पर कौन ध्यान देता है? मगर यहां किये हुए कर्म जब उदय में आते हैं तो महाराज के सामने दुखड़ा रोते हैं! मगर अब महाराज भी क्या करे? कृत कर्मों के फल को न होने देने की शक्ति किसी में नहीं है। अतएव कल्याण की कामना करने वाले भद्र पुरुषों! मैं जो कह रहा हूँ, उस पर कान दो, ध्यान दो, मेरी बात को मान दो और उसे मान लो। मैं भगवान् का कथन तुम्हें सुना रहा हूं। भगवान्

का कहना मानोगे तो सुखी बनोगे, नहीं तो भयानक भय और संकट का सामना करना पड़ेगा।

शिशुपाल का जन्म हुआ तो किसी निमित्तवेत्ता ने बतलाया कि श्रीकृष्ण के हाथ से इसकी मृत्यु होगी। यह असह्य सवाद सुनकर सुतस्नेह से प्रेरित होकर शिशुपाल की माता कृष्ण जी के पास गई। कृष्ण को गोद में रखकर उसने निमित्तवेत्ता की बात उन्हें सुनाई। तब कृष्णजी बोले—निन्यानवे बार गलती करने पर मैं शिशुपाल को क्षमा कर दूंगा।

भाइयो! श्रीकृष्ण की उदारता पर ध्यान दो। उन्होंने ६६ बार की गलतियों को क्षमा कर देने का आश्वासन दिया है! अरे एक दो बार तो तुम भी क्षमा करना सीखो। क्षमा करना दूसरों पर ऐहसान करना मत समझो, वरन् अपने कर्त्तव्य का पालन करना समझो, अपने भविष्य को उज्ज्वल और सुखमय बनाना समझो। परलोक में तुम्हें इसका फल अवश्य मिलेगा। कुरान में लिखा है—खुदा कहता है कि तू माफ करेगा तो मैं तुझे माफ करूँगा।' भाइयो! देखो, आ जाओ और दवा ले लो। ऐसे बनकर जाओ कि परलोक में लेश मात्र भी दुःख न उठाना पड़े। मरुदेवी और भरत महाराज का अनुकरण करो। उनकी जीवनियों से शिक्षा ग्रहण करो। कैसे?

यहां राजा से मिलने के लिए,
बढ़िया पोशाक सजाते हो।
वहां मालिक से मिलने के लिए,
क्यों रूह न पाक बनाते हो?॥

राजा से मिलने के लिए जाना होता है तो बाल बनवाते हो, स्नान करते हो, और सुन्दर कपड़े पहनते हो और फिर मुलाकात करने जाते हो; मगर भगवान् से मिलने के लिए क्या तैयारी कर रहे हो ? मलीन मन और पापमय हृदय लेकर क्या भगवान के पास जाना चाहते हो ? नहीं, ऐसी हालत में तुम भगवान् के सन्निकट नहीं जा सकोगे। अतएव अपने अन्तःकरण को पवित्र और प्रशस्त भावनाओं से सुवासित करो, आत्मा को निर्मल बनाओ। यही भगवान् से भेंट करने की सबसे बड़ी तैयारी है। अच्छे कर्तव्य करोगे तो फिर दुःख नहीं उठाना पड़ेगा। पहले बाजरी बोई है तो बाजरी ही खानी पड़ेगी। अब गेहूँ बोओगे तो गेहूँ खाने को मिलेंगे।

गौतम स्वामी फिर पूछते हैं—भगवन् ! कई आदमियों के दिमाग बिगड़ जाते हैं और वे पागल होकर दूसरों पर पत्थर फैंकने दौड़ते हैं। यह किस कर्म का फल है ?

भगवान् उत्तर देते हैं—गौतम ! जिन्होंने मदिरापान किया है, भङ्ग, चरस, गांजा आदि नशीली चीजों का सेवन किया है. उन्हें इस फल की प्राप्ति होती है। मदिरापान आदि करने के फलस्वरूप इहलोक में अस्थायी पागलपन और परलोक में स्थायी पागलपन की पीड़ा भोगनी पड़ती है।

गौतम—प्रभो ! कई स्त्रियां और पुरुष भर जवानी में विधवा या विधुर होजाते हैं। यह किस कर्म का फल है ?

भगवान् ने उत्तर दिया—

जो अल्प सुखों के लिए धर्म खोती है,
वह जन्म-जन्म में फिर विधवा हो जाती है।
जो पुरुष होय कर शील धर्म खोता है,
वह जन्म-जन्म में फिर रंडवा होता है॥

जो स्त्री अपने धर्म का परित्याग करके बुरी नीयत से प्रवृत्ति करती है, अपने अनमोल शीलधर्म-रूपी रत्न को विषय वासना की कीचड़ में फैंक देती है, जो सतीत्व की असीम सम्पत्ति को अज्ञानवश होकर लुटा देती है, उसे जन्म-जन्म मे वैधव्य की पीड़ा भोगनी पड़ती है। इसी प्रकार जो पुरुष परस्त्रीगामी होता है, अपने ब्रह्मचर्य की अमोल निधि को गॅवा देता है, वह पामर होकर विधुरता के दुःख भोगता है। ऐसी स्त्री और ऐसे पुरुषों को जीवन पर्यन्त कभी शान्ति नहीं मिलती।

इसीलिए शास्त्र और उपदेशक तुम्हें पहले से चेतावनी दे रहे हैं कि जाग जाओ। मोहनिद्रा को त्याग दो। थोड़े दिनों के लिए यह जिंदगी मिली है। इसे पाकर बुरे काम करना छोड़ दो। अपने भविष्य को सुधारने की चेष्टा करो। मन में सोचो और विचार करो।

कई लोग हमें देखकर हँसते हैं और उन्हें देखकर हमें तरस आता है। वे सोचते हैं—इन साधुओं का जीवन कैसा नीरस है! कभी रेल या मोटर में बैठते नहीं, नाटक-सिनेमा देखते नहीं, दुनिया के मजा-मौज लूटते नहीं! और हम सोचते हैं—अरे यह अज्ञानी जीवड़ा विषय वासना के दलदल में धँसते चले जा रहे हैं! क्षणिक सुखों के फेर में पड़कर असली और

स्थायी सुखों से विमुख हो रहे हैं। कोई हिंसा करते हैं, झूठ बोलते हैं, अनीति से दूसरों की सम्पत्ति हड़पते हैं, परस्त्रीगमन और वेश्यागमन करते हैं, लोभ-लालच के चक्कर में पड़े हैं, कोई शराब, मांस, चण्डू, गांजा आदि का सेवन करते हैं, ये नाना प्रकार के कुकर्म कर रहे हैं, दिन-रात गृहस्थी के बोझ से गधे की तरह लदे रहते हैं। इन अभागे जीवों का क्या हाल होगा ? हमें बड़ा रहम आता है कि इनकी खोपड़ियां क्यों बिगड़ गई हैं ? यह सीधी और सच्ची बात क्यों नहीं सोचते ? क्यों पापों का सेवन कर रहे हैं ? जिंदगी थोड़ी है और उसे ये सुधारते क्यों नहीं ?

चार दिन की चांदनी, आखिर अन्धेरी रात है।
सारे ठिकाने जाएँगे, रहने की झूठी बात है।
ना किसी का है भरोसा, ना किसी का साथ है।
खोल के चलती दफा देखो तो खाली हाथ है।
करना हो तो करले सनम, तेरे कजा सिर पर खड़ी।
हँस बोल ले ले जग में भलाई है बड़ी।
तू तो कल निकल जायगा रह जायगी मिट्टी पड़ी।
नित हरी रहती नहीं नादान फूलों की छड़ी ॥

हे भाई ! तू हमेशा इसी दुनियां में नहीं बना रहेगा। तेरे सिर पर मौत नाच रही है। तेरी जिंदगी बहुत नाजुक है। हृदय की धड़कन पर ही तो टिकी हुई है। हृदय का धड़कना बंद हुआ कि प्राण पखेरू उड़ गये। इस कारण तू बेफिक्र मत रह। जिंदगी का भरोसा न रख कर जो भलाई लेना चाहता हो, ले ले

और जल्दी ही ले ले। न जाने किस समय जीव चला जायगा और फिर यह शरीर मुर्दा होकर पड़ा रहेगा। जलाकर भस्म कर देने के सिवाय और किसी काम नहीं आयगा। जिन्दगी मे भलाई नहीं की होगी तो मरने के बाद लोग कहेंगे—वह तो महा बेईमान था? धरती का भार था! इसलिए भाई मेरी बात सुनो और जो अवसर हाथ आ गया है, उससे लाभ उठाने में मत चूको। कोयले का तिलक लगाकर मत मरो। ऐसे कर्म करके मत जाओ कि तुम्हें अन्धा, लूला, लंगड़ा, दरिद्र, दुखी और बीमार होना पड़े या घोर मानसिक सन्ताप सहन करना पड़े। अपनी भविष्य की स्थिति को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करलो। निश्चित समझो कि कर्म का फल अमिट है। जैसा कर जाओगे वैसा ही पाओगे। जब यह बात निश्चित है और अपने भविष्य को मङ्गलमय या अमङ्गलमय बनाना आपके अधिकार में है तो फिर उसे मङ्गलमय बनाने की ही चेष्टा क्यों नहीं करते?

भव्य जीवो! थोड़े दिन की इस जिन्दगी को सुखमय बनाने मे दिन रात जुटे रहते हो तो दीर्घकालीन भविष्य को सुख पूर्ण बनाने के लिए भी तो थोड़ा-सा समय निकालो। कम से कम एक सामायिक तो प्रतिदिन कर लिया करो और अपने व्यवहार को नीति एव धर्म के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया करो! ऐसा करने पर आपको आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

ता. ६-६-४८



सावधान !



स्तुतिः—

अम्भोनिधौ क्षुभित भीषणनक्र चक्र-
पाठीनपीठ भयदोल्बणवाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थित यानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन्! आपकी कहां तक स्तुति की जाय? हे भगवन्! कहां तक आपके गुण गाये जाएँ ?

कल्पना कीजिए, कोई मनुष्य समुद्र के परले पार विदेश जा रहा है या वहां से वापिस आ रहा है। समुद्र में अथाह जल

है। भयानक और विशालकाय मगर-मच्छों और घड़ियालों के कारण वह भीषण बना हुआ है। ऐसे-ऐसे मगर-मच्छ उसमें मौजूद हैं जो अपनी पूंछ की फटकार मारकर स्टीमर को भी उलट सकते हैं। इन सब के अतिरिक्त उस समुद्र में वडवानल भी प्रज्व-लित हो रहा है। तूफान इतना जोरदार है कि पानी समुद्र से कोसों दूर तक उछलता है। जहाज इस तूफान में फँस गया है। कभी वह ऊँचा होता है, कभी नीचा होता है। लहरों में वह नाच रहा है। डिगमिगा रहा है। किसी भी क्षण उलट कर नष्ट हो सकता है। जहाज के बचने का कोई उपाय शेष नहीं रह गया है। नाविक निराश हो गये हैं। अपने वश के सब प्रयत्न करके वे सफल नहीं हो सके। उन्हें विश्वास हो गया है कि उनकी और दूसरे यात्रियों की जीवनलीला समाप्त होने में अब कुछ ही क्षणों की देरी है।

इस कठिन काल में कोई पुरुष शुद्ध भाव से भगवान् ऋषभदेवजी का स्मरण करता है। भगवान् के स्मरण की ऐसी अद्भुत महिमा है कि स्मरण करते ही समस्त विघ्नबाधाएँ, आंधी में आक की रुई की तरह यकायक उड़ जाती हैं। मनुष्य को पूर्ण रूप से निर्भयता प्राप्त होती है। उसका समस्त संकट दूर हो जाता है। वह सकुशल अपने लक्ष्य को प्राप्त होता है।

ऐसे महिमावान् है भगवान् आदिनाथ ! उन्हें हमारा बार-बार नमस्कार है !

भाइयो ! संसार-समुद्र से यदि कोई तिराने वाला है तो वह दयाधर्म ही है। संसार का यों कोई पार नहीं है, वह आकाश की भांति असीम है, अनन्त है मगर जो धर्म रूपी जहाज का

सहारा लेता है, वह उसे अनायास ही पार कर लेता है। धर्म-जहाज के द्वारा ही आत्मा संसार सागर के परलेपार पहोंचने में समर्थ होता है। उस धर्म के विषय में शास्त्र में कहा गया है:—

एस धम्मे धुवे णिच्चे, सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झंति चाणेण, सिज्झिस्संति तहाऽवरे॥

जिन भगवान् के द्वारा प्रतिपादित धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है। इसी धर्म का आश्रय पाकर भव्य जीव सिद्धि प्राप्त करते हैं और इसी धर्म के प्रताप से भविष्य में जीव सिद्धि प्राप्त करेंगे।

जिन लोगों ने धर्म के मर्म को गहराई में उतर कर नहीं पाया है, जो धर्म के आन्तरिक और असली स्वरूप से अनभिज्ञ हैं और सिर्फ धर्म के बाह्य रूप को ही धर्म की आत्मा समझ बैठे हैं, वे कहते हैं कि धर्म युग के अनुसार पलटता रहना चाहिए। जो धर्म समय के अनुसार नहीं बदलता और लम्बे काल तक एक ही रूप में बना रहता है, वह मनुष्य जाति के लिए उपयोगी नहीं हो सकता। शीतकाल में गरम और मोटे वस्त्र धारण किये जाते हैं। उस मौसिम के लिए वही वस्त्र उपयुक्त होते हैं। मगर धीरे-धीरे ठंड कम होती जाती है और फिर वैशाख-जेठ में ग्रीष्म ऋतु आ जाती है। सूरज अपने प्रखर ताप से धरती और आकाश को तवे की तरह तपा देते हैं ऐसे समय में शीतकाल के लिए उपयुक्त वस्त्र उपयोगी नहीं हो सकते। इस समय हल्के और श्वेत वस्त्र ही अनुकूल हो सकते हैं। इसी प्रकार बहुत पुराना धर्म आज के युग में उपयुक्त नहीं हो सकता। धर्म में समय की

परिस्थितियों के अनुसार परिवर्त्तन होते रहने चाहिए। तभी वह ठीक और और अप-टू-डेट बन सकता है।

इस प्रकार की विचारधारा विचारशीलता के अभाव का परिणाम है। धर्म के शुद्ध और आन्तरिक स्वरूप का अगर हम विचार करें तो प्रतीत होगा कि वह ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। उसमें परिवर्त्तन हो ही नहीं सकता। धर्म अन्तिम सत्य है—परम सत्य है, चरम सत्य है। असत्य को धर्म का रूप दिये बिना धर्म के शुद्ध स्वरूप में कोई परिवर्त्तन नहीं किया जा सकता। जैसे प्रकृति के नियम अटल हैं, उसी प्रकार धर्म के तत्त्व अटल हैं। हजारों वर्ष पहले चार और पांच मिलकर नौ होते थे, आज भी नौ ही होते हैं और भविष्य में भी नौ ही होंगे। इस प्रकार गणितशास्त्र के सिद्धान्त सदैव एक रूप में रहते हैं। उसी प्रकार धर्मशास्त्र के सिद्धान्त भी सदा शाश्वत हैं। भूतकाल में आंख के द्वारा ही देखा जाता था, कान के द्वारा ही सुना जाता था, जीभ के द्वारा ही रस का आस्वादन किया जाता था। आज भी ऐसा ही होता है और भविष्य में भी ऐसा ही होगा। क्या प्रकृति की यह प्रणालिका कभी पलट सकती है? जिधर देखो उधर ही प्रकृति में एक शाश्वत नियमबद्धता ही दृष्टिगोचर होती है। आम्रवृक्ष मे आम्रफल ही लगते हैं, जामुन के पेड़ मे जामुन के फल ही लगते हैं। गेहूं बोने पर गेहूं ही उगते हैं, चने नहीं उगते। यह सब बातें भूतकाल में जैसी थी, आज भी वैसी ही हैं और भविष्य में भी वैसी ही रहने वाली हैं। समय बदलता जायगा, मगर कभी आंख से सुना नहीं जा सकता और जीभ से देखा नहीं जा सकता।

तात्पर्य यह है कि वस्तु का मूल स्वरूप कदापि बदल नहीं सकता। चेतन कभी जड़ और जड़ कभी चेतन बन जाय यह असंभव है ऐसी स्थिति में धर्म, जो वस्तु का स्वभाव है, किस प्रकार पलट सकता है? कहा भी है:—

वत्थुसहावो धम्मो।

अर्थात् जिस वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है।

अब आप विचार कीजिए कि जब किसी भी वस्तु का स्व-भाव बदलना नहीं दिखाई देता तो धर्म का स्वरूप किसी भी काल में कैसे बदल सकता है? थोड़ा सा स्पष्टीकरण और लीजिए। शास्त्र में धर्म के तीन लक्षण बतलाये गये हैं:—अहिंसा, संयम, और तप। कहा भी है:—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।

अब आप विचार कीजिए कि भूतकाल में हुए तीर्थंकरों ने धर्म के यह जो तीन लक्षण बतलाये हैं, सो क्या अब बदल देने योग्य हैं? या भविष्य में कभी बदलने योग्य होंगे? विचारक विद्वान् तो यह कहते आ रहे हैं कि—

हिंसा नाम भवेद् धर्मो न भूतो न भविष्यति॥

अर्थात्-हिंसा न कभी धर्म हुआ है और न कभी होगा ही।

यह बात दूसरी है कि किसी समय किसी व्यक्ति के लिए या राष्ट्र के लिए हिंसा करना अनिवार्य हो जाय, तब भी उसे धर्म तो नहीं ही कहा जायगा। हिंसा अधर्म है और अधर्म ही रहेगी।

यही बात संयम और तप के विषय में समझ लीजिए। अपनी इन्द्रियों को काबू में न रखना, मन पर नियन्त्रण रखना, अपनी वासनाओं को दबाना और जीवन को संयममय बनाना सदैव धर्म है। यह कभी अधर्म नहीं होगा और असंयम कभी धर्म नहीं होगा। तपस्या के सम्बन्ध में भी यही बात है।

कहने का मतलब यह है कि सारे संसार में कहीं भी आप सावधानी से दृष्टि डालिए तो आपको यह समझने में देरी नहीं लगेगी कि वस्तु का मूल स्वरूप कदापि नहीं बदलता है। इसी प्रकार धर्म के मूल सिद्धान्त कभी नहीं बदल सकते। यही कारण है कि भगवान् ने धर्म को ध्रुव, नित्य और शाश्वत् बतलाया है।

अलबत्ता, जहां तक क्रियात्मक धर्म का सम्बन्ध है, वहां तक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार किंचित् परिवर्त्तन करने की आवश्यकता होती है और ऐसा परिवर्त्तन करने की भगवान् ने आज्ञा भी दी है। मगर इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य होती है कि जिस समय जो भी परिवर्त्तन किया जाय, वह धर्म के मूल तत्त्व के अनुकूल ही होना चाहिए, उससे प्रतिकूल नहीं। वह जीवन की आध्यात्मिक प्रगति में सहायक होना चाहिए, बाधक नहीं।

दूसरी तरह से विचार किया जाय तो भी धर्म शाश्वत् सिद्ध होता है। इस भरतक्षेत्र में भले ही जमाना पलटता रहता है, मगर महाविदेह क्षेत्र में धर्म का विच्छेद कभी नहीं होता। वहां बीस तीर्थङ्कर सदा विहरमान रहते हैं। इस अपेक्षा से भी धर्म नित्य सिद्ध होता है।

भाइयो ! परभव में जाते हुए प्राणी के लिए जब कोई भी पदार्थ सहायक नहीं होता, सभी पदार्थ जब साथ छोड़ देते हैं तब एक मात्र धर्म ही जीव के लिए आधार भूत है।

प्राचीन काल में एक इक्षुकार नामक राजा हो गये हैं। भृगु पुरोहित को, उनकी पत्नी को और उनके दोनों लड़कों को वैराग्य हुआ और वे सब दीक्षा लेने को तैयार हो गये। पुरोहित की सम्पत्ति को भोगने वाला कोई पुत्र गृहस्थी में नहीं रहा। यह देखकर राजा ने उसकी अरबों की सम्पत्ति को अपने खजाने में जमा करने की आज्ञा दे दी। वह पुरोहित इतना मालदार था कि उसके घर के आंगन भी रत्न जटित थे। सम्पत्ति का पार नहीं था। मगर पुरोहित के लिए वह अनमोल सम्पत्ति अब धूल के समान थी। उसने सब को त्यागने का निश्चय कर लिया था। जब ज्ञान और वैराग्य हो जाता है तो हीरे और जवाहरात पत्थर के टुकड़ों से अधिक कीमती नहीं मालूम होते। साधु रईसों के घर में भी गोचरी के लिए जाते हैं। वहा अगर सोने के जेवर भी पड़े हों तो वे उनके लिए धूल के समान हैं।

एक साधुजी विहार करते-करते आ रहे थे तो रास्ते में सोने का एक जेवर पड़ा हुआ उन्हें दिखाई दिया। उन्होंने उसे देखा और सोचा—पड़ा है तो पड़ा रहे, हमारे किस काम का ? उनके पीछे एक भील भी आ रहा था। साधुजी ने विचार किया-देखें, इस भील के भाग्य में यह है कि नहीं ? वे पास के एक पेड़ के नीचे आकर बैठ गये। उन्होंने देखा कि भील दूसरे रास्ते से निकल गया। उसकी तकदीर में वह गहना नहीं था। पृथ्वी 'वसुन्धरा' कहलाती है। 'वसुन्धरा' का अर्थ है—धन सम्पत्ति को

धारण करने वाली। वास्तव में पृथ्वी रत्नों की खान है। इसके ऊपर भी और नीचे भी, धन की कोई कमी नहीं है, किन्तु उसे पाने के लिए भाग्य होना चाहिये।

हां; तो राजा इक्षुकार ने भृगु पुरोहित के धन को खजाने में लाने का आदेश दे दिया। यह बात रानी को मालूम हुई। तब रानी ने राजा से कहा:—

मरिहिसि आयं! जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय।
एक्कोव धम्मो नरदेव ताणं, न विज्जइ अन्नमिहेह किंचि॥

—उत्तरा॰, अ॰ १४, गा॰ ४१

विचारशीला रानी राजा से कहती है—राजन्! आप पुरोहित के द्वारा त्यागे हुए धन को अपने भण्डार में जमा करना चाहते हैं; सो क्या आपका जीवन अमर है? महाराज, आज नहीं तो कल मरना ही पड़ेगा। मृत्यु का आना अनिवार्य है। लाखों प्रयत्न करने पर भी उससे कोई बच नहीं सकता। आपकी भी मृत्यु अवश्य होगी और उस समय यह महल मकान, छत्र-चॅवर, भोग-विलास और अन्य सभी सामग्री को छोड़ देना पडेगा। कोई भी दूसरी चीज साथ नहीं जा सकती। स्वामिन् इस धन में क्या रक्खा है? फिर आप क्यों इस त्यागे हुए धन को ग्रहण कर रहे हैं! ध्यान रखिये, क्या मनुष्य और क्या देवता, सबके लिए धर्म ही त्राण है। धर्म के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु त्राणशरण नहीं है। अतएव पुरोहित के धन का लोभ त्याग दीजिए। उसको ग्रहण करना मङ्गलकारी नहीं होगा।

रानी की बात सुन कर राजा ने कहा—रानी, तुम मुझे उपदेश देती हो, किन्तु पहले तुम साध्वी बन कर त्याग का नमूना दिखलाओ तो पता चले ! अभी उपदेश देना तुम्हें शोभा नहीं देता। पहले तो कुछ खुद करो !

रानी ने कहा—मैं नीति की बात कहने आई हूँ और जब आपकी आज्ञा साध्वी बनने के लिए मिल गई है तो अब वापिस महलों में जाने वाली नहीं हूँ। मगर मेरे साध्वी बन जाने पर भी आपका कल्याण तो नहीं हो जायगा। आपको भी अपने हित के लिए प्रयत्न करना होगा। हित धर्म से ही हो सकता है और धर्म ही परलोक में साथ जाता है। दुनिया कहती है कि यह तो हम भी जानते हैं कि धर्म के सिवाय और कोई वस्तु साथ जाने वाली नहीं है, मगर यह जानना न जानने के बराबर है। असली जानना वही है जिसके जानने पर अमल भी किया जाय ! जब कोई मनुष्य जान लेता है कि यह विषधर सर्प है तो क्या उससे खेल सकता है ? उसके समीप भी खड़ा रह सकता है ? कदापि नहीं। सर्प का भान होते ही वह दूर भाग खड़ा होता है। यही सच्चा जानना है। इसी प्रकार जिसने संसार के भोगोपभोगों का असली स्वरूप समझ लिया है, वह किस प्रकार उन्हें ग्रहण कर सकता है ?

ज्ञान का फल आचरण है। वस्तु का स्वरूप समझ लेना ज्ञान है और समझ कर यदि वह वस्तु ग्रहण करने योग्य है तो उसे ग्रहण करना चाहिए त्यागने योग्य है तो त्यागना चाहिए और यदि उपेक्षा करने योग्य है तो उपेक्षा करनी चाहिये। ऐसा करने से ही ज्ञान सफल होता है। जो पुरुष सिर्फ जान लेता है

और क्रिया कुछ भी नहीं करता, उसका ज्ञान निष्फल है, निकम्मा है।

राजा के संस्कार भी अच्छे थे। अतः रानी के इस प्रकार कहने पर उसे भी अपने कर्त्तव्य का बोध हो गया। उसने रानी से कहा—बात तुम्हारी सोलह आना सत्य है। तुमने मेरी निद्रा भंग कर दी है। मेरी बेहोशी दूर कर दी है। तुम स्वयं जिस मंगलमय धर्म का अनुष्ठान करना चाहती हो, उसके लिए मुझे भी प्रेरित करके तुमने सच्ची 'सहधर्मिणी' होने का परिचय दिया है। तुम सचमुच मेरी 'धर्मसहायिका' (धम्मसहाया) साबित हुई हो। तुम जैसी पत्नी पाना मेरे सौभाग्य का कारण बना है। अब मैं भी तैयार हूँ। हम दोनों ही संयमधर्म की छत्रछाया में चलेंगे।

इस प्रकार राजा इक्षुकार, उनकी रानी, पुरोहित-दम्पती और उनके दोनों पुत्र सब मिल कर छहों जनों ने दीक्षा अंगीकार कर ली। इसका विस्तृत वर्णन उत्तराध्ययनसूत्र के चौदहवें अध्ययन में किया गया है।

भाइयों! ऐसे त्यागी वैरागी मनुष्य ही अपने जीवन को सार्थक बनाते हैं। वही मानव-जीवन को प्राप्त करने का सच्चा लाभ उठाते हैं। अधिकांश लोग विषय विलास में फँस रहते हैं और नाना प्रकार की मिथ्या कल्पनाएँ करके अपने अन्तःकरण को सान्त्वना दिया करते हैं। एक जगह की बात है। किसी साधुजी ने वैराग्य का उपदेश दिया। सुनने वालों में एक बनिया भी था। उसने साधुजी से कहा—महाराज! आपके उपदेश का असर बहुत पड़ा है। इच्छा होती है कि गृहस्थ का जंजाल

छोड़ कर साधु बन जाऊँ ! मगर दूसरी तरफ देखता हूं तो बड़ी कठिनाई नजर आती है परिवार के लोगों का मुझ पर उत्तरदायित्व है। एक दिन भी कमा कर न लाऊँ तो परिवार के लोग भूखों मरने लगें।

मुनि ने कहा—भाई, तुम्हारा विचार भ्रमपूर्ण है। तुम्हारा कोई भी कुटुम्बी तुम्हारे भाग्य का नहीं खाता। सब अपना-अपना भाग्य लेकर आये हैं। मनुष्य वृथा ही अहंकार रखता है कि मेरे पुरुषार्थ से, मेरे प्रताप से, मेरी कमाई से या मेरी सहायता से दूसरों का भरण-पोषण हो रहा है। चलती गाड़ी के नीचे-नीचे एक कुत्ता चल रहा था। वह समझता था कि गाड़ी को मैं ही चला रहा हूं। यही दशा अधिकांश गृहस्थों की है। वे समझते हैं कि गृहस्थी की गाड़ी हमारे बल पर ही चल रही है! वास्तव में कोई किसी के भाग्य को पलट नहीं सकता।

मुनि की बात सुनकर बनिया बोला—महाराज ! यह बात मेरी समझ में नहीं आती ! मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि अगर मैं कमाई न करूँ तो मेरे परिवार के लोग बड़े सङ्कट में पड़ जाएँ। मैं कमाता हूं तभी उनका पेट भरता है।

मुनि ने कहा—मेरी बात तुम्हारी समझ में आनी तो चाहिए थी; अगर नहीं आ रही है तो आजमाइश करके देख लो।

कुछ दिनों के बाद एक दिन वह बनिया पिछली रात को उठा और नमक-मिर्ची बेचने का अपना 'टांगड़ा' लेकर रवाना हुआ। रास्ते में जङ्गल में पहुँच कर उसने अपने कुर्ते की एक आस्तीन फाड़ कर फैंक दी और थोड़ा-थोड़ा नमक मिर्च भी बिखेर

दिया। इतना करके वह दूसरे गांव को चला गया। जब वह शाम के समय अपने घर पर नहीं पहुँचा तो उसकी स्त्री और बच्चे फिक्र में पड़ गये। थोड़ा समय और बीत गया। रात हो गई। फिर भी वह घर नहीं लौटा। गांव वालों को पता चला तो लालटेंने लेकर वे उसकी खोज में निकले। मगर वापिस लौटकर कहने लगे कि सवेरे जाएँगे। सवेरा होने पर वे लोग ढूंढने निकले। ढूंढते-ढूंढते वे एक झाड़ी के पास पहुंचे। वहां उन्होंने फटे हुए कपड़े और बिखरा हुआ नमक मिर्च देखा तो समझ गए कि किसी जानवर ने उसे मार डाला है।

सब खोजने वाले निराश होकर लौट आये। उन्होंने उसकी स्त्री से कहा—बहिन! अब तो ईश्वर का भजन करो। जो होना था सो हो गया। अब धैर्य रखने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। मृत्यु पर किस का जोर चलता है ?

गांव वालों ने मिल कर गरीब स्त्री बच्चों के लिए खाने पीने का प्रबन्ध कर दिया।

भारतवर्ष की सामाजिक मर्यादाएँ पहले बड़ी सुन्दर थीं। लोगों मे एक दूसरे के प्रति गाढ़ी सहानुभूति थी, समवेदना की भावना थी और आपस में सहयोग करके लोग सुख-शान्ति के साथ रहते थे। किसी पर संकट आ पड़े तो दूसरे लोग उसे अपना ही संकट समझते थे और उसमें यथोचित भाग लेते थे। उस समय भारतवर्ष में पारस्परिक सहयोग का भाव विद्यमान था और उसके कारण सभी को बड़ा भारी बल प्राप्त रहता था। जब आपको विश्वास होता है कि आपके दुःख-दर्द में बहुत-से लोग सहायक हैं, तो आपको एक प्रकार की सान्त्वना रहती है, निश्चिं-

न्तता का भास होता है। ऐसी निश्चिन्तता उस समय सर्वत्र व्याप्त थी। मगर यह देख कर खेद होता है कि यह उदार भावना अब दिनों दिन कम होती चली जाती है। लोगों में व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना बढ़ रही है। आज लोग अपने पड़ौसी के दुःख-दर्द की परवाह नहीं करते। दूसरों की सुख-सुविधा का खयाल नहीं करते। इस स्वार्थमयी भावना का प्रभाव यह हुआ कि आपस की समवेदना और सहानुभूति समाप्त हो गई है। एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच में, एक कुटुम्ब और दूसरे कुटुम्ब के बीच में दीवार खड़ी है। इससे नाना प्रकार के वर्ग तैयार हो गये हैं। गरीब लोग श्रीमन्तों को अपना शत्रु समझते हैं और श्रीमन्तों को गरीब अपने विरोधी दिखाई देते हैं। सभी की शान्ति आज खतरे में पड़ी हुई है। पारस्परिक सहानुभूति और सहयोग के अभाव में कोई भी वर्ग वास्तव में सुखी हो ही नहीं सकता। समाज में शान्ति और देश में समृद्धि लाने के लिए आज प्राचीन कालीन सद्भावनाओं की अनिवार्य आवश्यकता है।

उस बनिया की स्त्री और बालबच्चों के भरण-पोषण का प्रबन्ध गांव वालों की ओरसे किया जाना आज के युग में एक महान् आदर्श है। इस आदर्श पर चलकर अगर श्रीमन्त लोग अपने अपने पड़ौसी गरीबों की ओर ध्यान दें, उनके निर्वाह का मार्ग निकाल लें, उनके सहायक बन जाएँ तो भारतवर्ष पर साम्यवाद का जो भयकर खतरा मँडरा रहा है, शीघ्र ही दूर हो सकता है। ऐसा करने से देश का जो हित होगा सो तो होगा ही, खुद श्रीमन्तों का ही सब से ज्यादा हित होगा। देश में अगर साम्यवाद आता है तो श्रीमंतों को ही सब से ज्यादा क्षति और मुसीबत उठानी पड़ेगी। वे आज उदारता दिखलाकर,

गरीबों को खुले दिल से सहायता करके ही अपनी उस क्षति को रोक सकते हैं। उसे रोकने का दूसरा कोई भी उपाय दृष्टिगोचर नहीं होता।

पहले इस देश के श्रीमान् इतने स्वार्थपरायण नहीं थे। वे गरीबों के प्रति हमदर्दी रखते थे और उनकी मुसीबत को दूर करने के लिए यथोचित उपाय करते थे। इस कारण गरीबों में असन्तोष और विरोध का भाव नहीं जाग पाता था। किन्तु आज वह बात नहीं रही है। इस कारण आज धनवानों और निर्धनों के बीच का संघर्ष दिनोदिन बढता चला जा रहा है।

उस गांव के लोग अपने कर्त्तव्य को भलीभांति समझते थे। अतएव उन्होंने उस वणिक की पत्नी और बालकों के निर्वाह का समुचित प्रबन्ध कर दिया।

बारहवें दिन उसकी स्त्री ने चूड़ा भी उतार दिया और विधवा के वस्त्र धारण कर लिये।

वह वणिक किसी दूसरे गांव में जाकर रहने लगा रहते रहते करीब डेढ़ महीना हो गया। एक बार अचानक वही मुनि महाराज उस गांव में विचरते-विचरते जा पहुंचे। उस वणिक् ने मुनि से कहा—महाराज, मैं वही गृहस्थ हूं, जो पहले आपके दर्शन कर चुका हूँ। यह कह कर उसने अपना पूरा परिचय दिया और अब तक की सारी घटना कह सुनाई।

मुनिराज ने कहा—तुम कहते थे कि एक दिन भी मैं कमा कर न लाऊँगा तो बाल-बच्चे भूखे मर जाएंगे! अब जाकर देखो कि क्या तुम्हारा खयाल सही था?

वह वणिक एक दिन संध्या होने पर अपने गांव के बाहर पहुँचा। वहां एक आदमी को देखकर उसने कहा—खेमा, राम राम !

यह सुनते ही खेमा के होश उड़ गये। उसने कहा—डाकी भूत बन कर आ गया है ! और खेमा सिर पर पांव रख कर अपने घर की ओर भागा।

इसके बाद वह वणिक् अपने घर पहुंचा। उसने देखा कि घर का दरवाजा बन्द है। जान पड़ता है बाल-बच्चे सो गये हैं और स्त्री काम कर रही है। वणिक् ने किवाड़ों पर हाथ थपथपा कर कहा—किवाड़ खोलो।

स्त्री यह सुन कर कांपने लगी। उसने पूछा—कौन है ?

वणिक् ने अपना परिचय दिया।

स्त्री बोली—अब यहां क्यों आये हो ?

वणिक्—तुम्हारे ऊपर ममता रह गई है।

स्त्री—ममता रह गई तो कृपा करके सपने में भी मेरे यहां मत आना। सांप बनकर भी दिखाई मत देना। नहीं तो छोरा-छोरी डर जायेंगे।

वणिक—मेरे बिना तुम्हारा काम नहीं चलता होगा।

स्त्री—नहीं हमारा काम मजे से चल रहा है। पहले रात को खाते थे, अब दिन में ही खा लेते हैं। अब हमें तुम्हारी आवश्यकता नहीं है।

वणिक्—तो फिर मैं जाता हूं। अब कभी नहीं आऊँगा।

स्त्री—सपने में भी मत आना।

आखिर वणिक् चला गया। मुनिराज के पास पहुंच कर उसने कहा—महाराज! आपका कथन सर्वथा सत्य है। मनुष्य अभिमान क मारे ही ऐसा समझता है कि मैं दूसरों का पालन-पोषण करता हूँ। मगर उसका यह अभिमान झूठा है। ऐसा सोचने वाला मनुष्य भ्रम के अन्धकार मे भटक रहा है। वास्तव मे सब जीव अपनी-अपनी तकदीर लेकर आते हैं और उसी के अनुसार सुख और दुःख भोगते हैं। इसलिए आचार्य अमित-गतिजी ने कहा है:—

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

अर्थात्—आत्मा ने पहले जो कर्म किये हैं, वह उन्हीं का शुभ या अशुभ फल प्राप्त करता है। अगर दूसरे का दिया कोई भोगे तो उसके स्वय के उपार्जन किये कर्म निरर्थक निष्फल हो जाएँ।

वहुत-से लोग अपने छोटे-छोटे वच्चों को छोड़ कर मर जाते हैं, फिर भी वे वालक जीवित रहते ही हैं। उनकी विधवा स्त्रियां भी अपना जीवन निर्वाह करती ही हैं। ऐसी स्थिति में किसी का अभिमान करना वृथा है। यह सोचना भी निराधार

है कि कुटुम्ब के पालन-पोषण का भार मुझ पर न होता तो मैं संयम की साधना करता ! वास्तव में जिसने संसार के सारहीन स्वरूप को सम्यक् प्रकार से समझ लिया है, जिसने भोगोपभोगों की भयानकता को अनुभव कर लिया है और जिसकी बुद्धि धर्म को ही धन मानती है, वह पुरुष ऐसी किसी दुर्बलता का शिकार नहीं होता। वह अपने सुदृढ़ संकल्प को अमल में ले ही आता है। जो लोग सोच-विचार में पड़े रहते हैं, समझना चाहिए कि उन्हें संसार की असारता पर श्रद्धा नहीं है।

हे भव्य जीवो ! अपनी श्रद्धा में दृढ़ता लाओ। विश्वास करो कि संसार असार है। संसार की माया सपने की माया के समान ही है। इसलिए ज्ञानी जन कहते आये हैं—

यह संसार सपन की माया,
क्यों इसमें ललचाया रे।

एक भिखारी था। उसे कहीं से आटा, दाल और मिर्च मसाला मिल गया। भोजन की यह सामग्री लेकर वह जङ्गल में गया और एक पेड़ के नीचे बैठ गया। सोचने लगा-अब क्या जल्दी है ! शाम को ही बना कर खा लेंगे ! यह सोचकर उसने छाणे (कण्डे) सिर के नीचे तकिया की तरह लगाये और वह सो गया। नींद आने पर सपने में वह क्या देखता है कि किसी के यहां खुशी का कोई प्रसंग आया है और उसने भोज दिया है। भोज के लिए उसने घेवर बनाये हैं। वह भिखारी भी जीमने गया है और उसने पेट भर घेवर खाये हैं। घेवर खाकर स्वप्न में वह फूला नहीं समाया। वह अपने पेट पर हाथ फेर रहा है।

कबीठ (कपित्थ-कैथ) के पेड़ के नीचे पड़ा-पड़ा भिखारी यह स्वप्न देख रहा था। उस पेड़ पर एक बन्दर चढ़ा था। बन्दर ने अपने खाने के लिए एक फल तोड़ा मगर वह उसके हाथ से छूट गया और नीचे आकर भिखारी की खोपड़ी पर गिरा। कबीठ पत्थर सरीखा कठोर और वजनदार होता है। उसकी चोट से भिखारी की नींद टूट गई ! वह यकायक घबरा कर उठता है और देखता है कि इधर उसका पेट पाताल में जा रहा है, भूख के मारे पेट मे चूहे डंड पेल रहे हैं, उधर न घेवर है न जीमन है !

भाइयों ! जैसे भिखारी स्वप्न में घेवर खाकर प्रसन्न हो रहा था, उसी प्रकार संसारी लोग भी मोह रूपी निद्रा के अधीन होकर अपनी कल्पना के स्वप्न में संसार की वस्तुओं को अपनी मान कर सुखी हो रहे हैं ! जैसे निद्रा टूटने पर भिखारी को पता चल गया कि वह भ्रम में था, उसी प्रकार जब आपकी आयु टूटने लगेगी तो आपको भी पता चल जायगा कि वास्तव में आप भी एक लम्बे-से स्वप्न की भ्रान्ति में पड़े हुए हैं ! उस समय पछ-तावा करने से और हाय हाय करने से कुछ भी काम नहीं चलेगा ! कोई नतीजा नहीं निकलेगा।

+जम्बूकुमार की कथा—

अतएव जम्बूकुमार अपनी पत्नी से कहते हैं—प्रिये ! विवेक-शील पुरुष और स्त्री को पहले ही ऐसा प्रयास करना चाहिए, जिससे पीछे कौवे के समान दुर्गति न हो और पश्चात्ताप भी न करना पड़े। यह सुनकर उसकी पहली पत्नी चुप हो गई और एक ओर बैठ गई।

+पहले के वृत्तान्त के लिए देखिए ता० ३१-८-४८ का व्याख्यान

उसके बाद दूसरी स्त्री पद्मश्री उठी। उसने हाथ जोड़ कर कहा-पतिराज ! आप क्यों व्यर्थ सयम-संयम की रट लगाये हुए हैं। सयम पालना खांडे की धार पर चलना है। फिर आपके संयम लेने से हम सब निराधार हो जाएँगी। हमें निराधार मत छोड़िये। आपकी यह अवस्था संयम लेने योग्य नहीं है। श्रावण का महीना आता है तो पपीहा पिउ पिउ कह कर चिल्लाता है, उसी प्रकार हम भी 'पिउ पिउ' (प्रिय-प्रिय) कह कर आप से प्रार्थना कर रही हैं। मगर आप ऐंठते ही चले जाते हैं। संसार में स्त्रियां निर्बल होती हैं और पुरुष सबल होते हैं। इस दृष्टि से आप बड़े हैं। आप संयम ले लेंगे तो आपका क्या बिगड़ता है? बिगाड़ तो हमारा ही होता है न ? दुनिया में पुरुष मिट्टी के बरतन के समान समझा जाता है जिसे पचास बार चूल्हे पर चढ़ाने पर भी उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता। मगर नारी जाति काठ की हँडिया के समान मानी जाती है जो एक बार ही चूल्हे पर चढ़ सकती है।

हे नाथ ! हमारी इस विवशता पर विचार कीजिए। आप बुद्धिमान् हैं। हमारी अर्जी पर मर्जी कीजिए। हठ करने का समय यह नहीं है। हमारा तन मन, और धन सभी कुछ आपका ही है। हम आपके अधीन हैं। आप हमारा हाथ पकड़ कर लाये हैं। आपने हमारे जीवन की जिम्मेवारी अपने ऊपर ओढ़ी है। उसका निर्वाह करना आपका कर्त्तव्य है। अगर आप हमारी बात न मानेंगे तो आपको भी उस बन्दर की तरह पछताना पड़ेगा।

जम्बूकुमार ने कहा-जैसा तुम्हारी बुद्धि में आवे वैसा कहो। मैं सुनना ही चाहता हूं।

पद्मश्री ने कहा—आप सुनना चाहते हैं तो अवश्य सुनिये। एक बड़ा भारी जंगल था। उसमें बहुत-सी झाड़ियां और पेड़ थे। कोई-कोई जंगल नंगा होता है, जिसमें झाड़ झंखाड़ नहीं होते। पर वह जंगल ऐसा नहीं था। वह झाड़ों और झाड़ियों से गहन था। उसमें तरह-तरह के जगली फल-फूल भी लगे थे। संयोग से उसमें कुदरती पानी का एक दरयाव भी आ गया था। उसमें कमल के फूल खिले हुए थे। ठंडी-ठंडी हवा भी चल रही थी। ऐसे जगल में सिंह, हाथी, हिरन और वंदर आदि जानवरों का रहना स्वाभाविक ही है। सब जानवर आनन्दपूर्वक क्रीड़ा किया करते थे।

उसी जंगल में एक वंदर और वदरी का जोड़ा भी रहता था। वह भी बड़े आनन्द में रहता और स्वेच्छानुसार क्रीड़ा किया करता था।

एक दिन अचानक ही आकाश से एक आवाज सुनाई दी कि-'इस समय यदि कोई जानवर इस दरियाव में कूदे तो वह मनुष्य बन जाय और यदि मनुष्य कूदे तो देवता हो जाय।' यह आकाश-ध्वनि सुनकर वंदर ने अपनी वंदरी से कहा-अगर हम दोनों इसमें कूद पड़ें तो मनुष्य हो जाएंगे। वदरी ने भी कूदने का समर्थन किया। दोनों साथ-साथ पानी में कूद गये। कूदते ही वदर बाईस वर्ष का नवयुवक और वदरिया अठारह वर्ष की नवयुवती वन गई। दोनों बहुत सुन्दर हो गये।

वंदर और वंदरिया नर और नारी तो बन गये मगर अब दूसरी समस्याएँ उनके सामने खड़ी हो गईं। सब से पहली समस्या तो वस्त्रों की ही थी। उनके शरीर पर वस्त्र नहीं थे और वस्त्र

पहने बिना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। अतएव बन्दर ने कहा—हम लोग एक बार कूद कर जानवर से मनुष्य बन गये हैं, और अब मनुष्य होकर कूदेंगे तो देवता बन जाएँगे। आकाश वाणी अभी तक सच्ची सिद्ध हुई है तो क्या आगे सच्ची सिद्ध नहीं होगी? देवता बन जाने पर वस्त्रों और गहनों आदि की समस्याएँ सहज ही हल हो जाएँगी।

बन्दरी बोली—देखो, हम जानवर से मनुष्य बन गये हैं। हमारे लिए यह भी बड़ी बात है। अब अधिक लोभ करना अच्छा नहीं है। कदाचित् अबकी बार कूदने पर देवता बनने के बदले मनुष्य भी न रहे तो कितना घाटा होगा? आकाश वाणी तो सच्ची है, पर उसका मतलब यह मालूम होता है कि पहले से जो मनुष्य हो वही कूद कर देवता बन सकता है।

बन्दर ने कहा—तू तो मूर्ख मालूम पड़ती है। अच्छा, ले, पहले मैं कूदता हूँ।

बन्दरी—मैं तो आपको भी मना करती हूँ।

बन्दर—नहीं मैं नहीं मानूँगा। मैं देवता बन जाऊँगा तो तू भी कूद पड़ना।

बन्दर बड़ा हठीला था। बन्दरी ने उसे बहुत समझाया कि अधिक लोभ में मत पड़ो। वानर से नर हो गये हो यही बहुत बड़ी बात है। मनुष्य जन्म कोई साधारण चीज नहीं है। बल्कि कई दृष्टियों से तो वह देव-पर्याय की अपेक्षा भी अधिक महत्वपूर्ण है। देव-पर्याय सांसारिक भोगविलास की अपेक्षा भले ही अधिक महत्वपूर्ण हो, पर आत्म-कल्याण की दृष्टि से मनुष्य जन्म की

बराबरी नहीं कर सकती। आध्यात्मिक विकास तो देवता भी उतना ही कर सकते हैं जितना जानवर कर सकते हैं। मनुष्य चौदहवां गुणस्थान प्राप्त करके सिद्धि भी प्राप्त कर सकता है, जब कि देवता और पशु पांचवें गुणस्थान से अधिक आगे नहीं बढ़ सकते। कहा है:—

पूरब पुण्य प्रभाव मनुष्य तन पाए है।
बड़े भाग्य की बात मनुष्य तन पाए हैं॥ ध्रु.॥

बंदरी ने बंदर को समझाया—अचानक ही हमारे पुण्य का प्रबल उदय हो गया है कि हम मनुष्य-शरीर पा सके हैं। संयोग से यह शरीर मिल गया है तो इसी में सन्तोष मान लेना उचित है। इसी जन्म को सफल बना लेने में हमारा हित है। मानव जीवन की सफलता किस बात में है? कहा है:—

नहीं किसी को बुरा कहेंगे, ऊँच नीच सभी सहेंगे।
मित्र भावना भाए॥ १ ॥

किसी की बुराई न करना भी मनुष्य-जन्म की सफलता है। बुराई करने से मनुष्य मर कर फिर जानवर हो जाता है। यह भगवान् का वचन है। ठाणांगसूत्र मे, तीसरे ठाणे मे कहा है कि बुराई करना मनुष्य-जन्म को हारना है। इसके अतिरिक्त दान, शील, तप और भावना रूप चतुर्विध धर्म का पालन करने से मनुष्य का जीवन सफल और सार्थक बनता है। हम यथाशक्ति पात्र को दान देंगे, शील का पालन करेंगे, तपस्या करेंगे और प्रशस्त भावना बनाये रक्खेंगे तो मनुष्य-जन्म पाना सार्थक हो

जायगा। इतना ही नहीं, इस धर्म का पालन करने से देवगति अपने आप ही मिल जाती है और अन्त में मुक्ति की भी प्राप्ति हो जाती है।

बन्दर लालच में बुरी तरह फँस गया था। उसे देवता बनने की धुन सवार हो गई। वह कहने लगा- नहीं, मनुष्य-जन्म में भी क्या रक्खा है! देवता का दर्जा ऊँचा है। मैं तो उसी दर्जे को प्राप्त करना चाहता हूं। जो अवसर मिल गया है उससे लाभ नहीं उठाना मूर्खता है। ऐसा सुअवसर क्या वार-वार मिलता है? उसने बन्दरी से कहा–देखो, मैं देवता वनने के लिए दरियाव में कूदता ही हूँ। अगर तुम्हारी इच्छा हो तो वाद में तुम भी कूद जाना।

बन्दरी बोली-अगर आप देवता न वने और मनुष्य भी न रहे तो मैं अकेली रह जाऊँगी! इस स्थिति में आपको कितना दुःख होगा? आगा पीछा अच्छी तरह सोच लीजिए।

नवयुवती के इस प्रकार समझाने पर भी वह नहीं माना। वह दरयाव में कूद पड़ा और जव वाहर निकला तो फिर पहले जैसा बन्दर वन गया। अव वन्दर के पश्चात्ताप की सीमा न रही वह पास के पेड़ पर चढ़ कर रोने लगा। उसने इशारा किया कि तू भी फिर से कूद जा। मगर नवयुवती ने कहा-मैंने तो पहले ही मना कर दिया था कि लालच में मत पड़ो। मगर तुमने मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया। अव मैं हर्गिज नहीं कूदूंगी। तुम्हारा और मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। तुम वानर हो और मैं नारी हूं।

नवयुवती की यह बात सुनकर बंदर हाथ मलता ही रह गया। वह सोचने लगा-देवता बनने चला था, मगर बदरी को भी गॅवा बैठा! इसी को कहते हैं चौबेजी छब्बे बनने चले तो दुबे ही रह गये।

वह नवयुवती वस्त्रविहीन थी, अतएव वह वहीं किसी वृक्ष की कोटर मे जा बैठी। मगर उसका भाग्य अच्छा था। भाग्य ने जोर मारा तो दूसरे दिन एक राजा घूमता हुआ वहां आ पहुँचा। उसने रमणीय स्थान देख कर वहीं तंबू तनवाया। राजा इधर-उधर घूमने और वन की नैसर्गिक सुन्दरता का अवलोकन करने के लिए निकला। वह सयोग वश उसी वृक्ष के पास से निकला, जिसकी कोटर में वह नवयुवती बैठी हुई थी। नवयुवती पर राजा की दृष्टि पड़ गई। उसने सोचा-अहा, वनदेवी प्रकट हुई है! मानुषी में ऐसा रूप-सौन्दर्य संभव ही नहीं है।

राजा के साथ जो आदमी थे, भय से कांपने लगे। उन्होंने कहा—अन्नदाता! भागो यहा से! यह डाकिन हम सब को खा जायगी।

राजा शूरवीर और निर्भीक था। उसने अपने साथियों को सान्त्वना दी और कहा—मैं उसके पास जाता हूँ; तुम सब यहीं खड़े रहो।

इतना कह कर राजा उसके पास पहुँचा। उसने दोनों हाथ जोड़ कर कहा—देवी! मुझ पर प्रसन्न होओ।

नवयुवती ने कहा—पहले मुझे एक वस्त्र दे दो।

राजा ने दुशाला फैंक दिया और उसकी तरफ पीठ कर ली। नवयुवती ने आधा दुशाला पहन लिया और आधा ओढ़ लिया। इसके बाद राजा ने पूछा—अब बतलाइए, आप कौन हैं।

नवयुवती मैं एक मानवी हूं और अभी तक अविवाहित हूं।

राजा—मैं राजा हूँ। अगर तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ विवाह कर सकती हो। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हें रानी बना दूंगा

नवयुवती—मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार है।

राजा ने आदेश देकर उसी समय अपना रथ मँगवाया और उस नवयुवती को बिठला कर अपने महल में ले गया। यह सारा दृश्य देख कर बन्दर बेहद कूदफांद मचाता है और चां-चां करता है, मगर उसका कोई जोर नहीं चलता। वह अपनी फूटी तकदीर के लिए रोता रहा और उसकी पत्नी राजरानी बन गई।

महल में ले जाकर राजा ने उसे लाखों के बहुमूल्य आभूषणों और सुन्दर से सुन्दर वस्त्र पहनाये। वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित और नैसर्गिक सौन्दर्य से मंडित वह नवयुवती अब इन्द्रानी के समान प्रतीत होने लगी। फिर राजा ने उसके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और उसे अपनी पटरानी बना दिया। राजा की और-और रानियां भी रूपवती थीं, मगर इसके सामने सब पानी भरती थीं! राजा के हृदय को इसने पूरी तरह आकर्षित कर लिया।

राजा ने एक बार विचार किया—नवीन रानी ने नवीन दुनिया देखी है! अतएव इसका खूब मनोरञ्जन करना चाहिए।

यह सोच कर उसने नगर में डोंडी पिटवा दी कि जो कोई नया खेल करने वाला आवे, सब से पहले नयी रानी के महल में खेल दिखलावे।

उधर उस बन्दर के दुःख का पार न था। उसका हृदय मार्मिक पीड़ा से बुरी तरह व्यथित हो रहा था। नवयुवती के चले जाने पर उसने खाना और पानी पीना छोड़ दिया। वह रात-दिन अपनी पत्नी की ही याद किया करता और भार-भार आंसू बहाता! इस प्रकार दिन बीतते चले जा रहे थे। बन्दर को अपनी जिंदगी मे अब कुछ भी आकर्षण नहीं रह गया था। इसी समय एक नवीन घटना घटी। किसी मदारी को बन्दर की आवश्यकता थी। संयोग से वह उसी जंगल में बन्दर पकड़ने गया। उसने इस बन्दर को बैठा देखा और फंदा डाल कर पकड़ लिया। मदारी बन्दर को अपने घर ले आया। गले में पट्टा डाला और उसे नाचना कूदना सिखलाने लगा। जब बंदर ठीक तरह काम न करता और मदारी के इशारे पर न चलता तो मदारी लकड़ी से उसकी पूजा उतारता। इस प्रकार बन्दर बड़ी बुरी स्थिति में फँस गया। वह पहले ही अपने जीवन से ऊब गया था। जिंदगी उसके लिए भारभूत हो गई थी, तिस पर अब एक नवीन मुसीबत और आ पड़ी। वह पछताता हुआ सोचने लगा—मैं मनुष्य होकर अपनी स्त्री का कहना मान गया होता तो यह हाल न होता।

भाइयो! गृहस्थी में पति और पत्नी की जोड़ी मानी जाती है। प्राचीन काल का इतिवृत्त देखने से मालूम होता है कि उस समय स्त्रियों को हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता था। मगर धीरे-धीरे पुरुषों ने स्त्री जाति को हीन दृष्टि से देखना आरंभ कर

दिया। नतीजा यह हुआ कि लोग समझने लगे हैं कि औरतों में दिमाग नाम की कोई चीज ही नहीं होती। बुद्धि पुरुषों के ही हिस्से में आई है। समझदारी पर पुरुष वर्ग का ही पूरा अधिकार है! इस प्रकार की गलत धारणाओं के कारण लोग अपनी स्त्री की हितकारक बात को भी सुनना नहीं चाहते। मगर यह उचित नहीं है। अनेक स्त्रिया पुरुषों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमती और विचारशीला होती हैं। अतएव पुरुषों को उनकी बात पर ध्यान देना चाहिए। उनके उचित परामर्श का समुचित सत्कार करना चाहिए। किसी वक्त समझदार औरत की अक्ल बड़ा काम देती है। औरतों में बुद्धि की कोई कमी नहीं होती। कोई कोई औरत तो बड़ी से बड़ी रियासत का काम सँभालती है।

आदर्श पत्नी, अपने पति के मंत्री का काम देती है। वह पति की वास्तविक परिस्थिति को जितने निकट से जानती है, उतना कोई और नहीं जान सकता। अतएव उसकी सलाह बहुत उपयोगी हो सकती है। देखो, उस मनुष्य बने हुए बन्दर ने अगर अपनी स्त्री की सलाह मानी होती तो उसे आज यह दिन नहीं देखना पड़ता। अब वह बन्दर बहुत पश्चात्ताप करता है, मगर अब पछताने से क्या होता है? कहा है—

अब पछताये होत का, चिड़ियां चुग गई खेत।

किसान का कर्त्तव्य है कि पहले से ही सावधान होकर वह अपने खेत की रक्षा करे। जो किसान पहले लापरवाही करता है और चिड़ियों को खेत चुग लेने देता है और फिर पश्चात्ताप करता है, वह मूर्ख है। उसके पश्चात्ताप से कोई लाभ नहीं हो सकता।

मदारी ने उस बंदर को मार-मार कर नाचना सिखलाया। उसने एक वन्दरिया और पाल रक्खी है और उसे फटी-सी घघरिया पहना रक्खी है। वह दोनों को नचाता है और अपनी आजीविका चलाता है। इस प्रकार करते करते करीब बारह महीने व्यतीत हो गये।

मदारी अनेक शहरों और गांवों में खेल करता हुआ एक वार उसी नगर में आ पहुँचा। लोगों ने कहा—पहला खेल महारानीजी के महलों में करना होगा, उसके बाद कहीं दूसरी जगह। मदारी ने सोचा—चलो, यह और भी अच्छा है। महारानीजी से अच्छी रकम मिलेगी। सारी वस्ती एक तरफ और अकेली महारानी दूसरी तरफ! वह महारानी के महल के सामने गया और डुगडुगी वजाने लगा। भीड़ जमा हो गई और महारानी चिक के अन्दर से खेल देखने लगी। महारानी ने जरा ध्यान से देखा तो उन्हें मालूम हो गया कि यह तो वही वानर महाशय हैं! इसी वीच बन्दर की निगाह भी महारानी पर पड़ गई। महारानी को देखते ही उसकी उदासी वढ़ गई। वह नाचना भूल गया और रोने लगा। बन्दर का यह हाल देखकर मदारी के क्रोध का पार न रहा। उसने सोचा—ऐन मौके पर इस दुष्ट ने धोखा दिया! मेरी सारी कारगुजारी इसने मिट्टी मे मिला दी। उसने कहा—वेईमान! यहीं क्या दुश्मनी निकालने का मौका मिला है तुझे! क्यों मेरी रोजी पर लात मार रहा है? यह कहकर उसने बन्दर के डंडे मारना शुरु किया।

रानी को यह देखकर दया आ गई। उसने सोचा—आखिर यह मेरा पुराना साथी है। मैं और कुछ नहीं तो कम से कम इसका यह दुःख तो मिटा ही सकती हूँ।

रानी ने अपनी दासियों को भेजकर मदारी से कहलाया— बन्दर को मत मार। जो चाहिए सो ले ले और बन्दर हमें दे दे। मदारी ने सहर्ष बंदर दे दिया और बदले में रुपये ले लिये। रानी ने बन्दर को अपने पलंग के पास बंधवा लिया। खाने के लिए बढ़िया-बढ़िया फल आने लगे और सोने के लिए मखमल के गद्दे बिछा दिये गये। इस प्रकार रानी उसे बड़े प्रेम से पालती है, फिर भी बंदर के हृदय में शान्ति नहीं होती। पश्चात्ताप की आग उसे जलाती रहती है। जब राजा नहीं होता और अकेली रानी ही बन्दर के पास रहती है तो उसे समझाती है—अब रोने से क्या होता है ? पहले ही मेरी बात मान ली होती तो आज यह दशा न होती।

यह कहानी सुना चुकने के पश्चात् पद्मश्री कहती है— प्राणनाथ ! आपको बन्दर की हालत विचार कर शिक्षा लेनी चाहिए। जो अधिक लालच में फँस जाता है उसकी दशा बन्दर के समान होती है। अगर आपने मेरा कहना न माना तो संभव है आपको भी बन्दर की तरह ही पछताना पड़े।

भाइयो ! मेरा भी आप लोगों से यही कहना है कि आपको भी अपनी स्थिति पर विचार करना चाहिए। अगर आप विचार किये बिना ही इस जीवन को ज्यों-त्यों बिता देंगे तो अन्त में पछताना पड़ेगा। पद्मश्री तो स्वार्थ से प्रेरित होकर जम्बूकुमार को संयम लेने से रोक रही है, मगर मैं निस्वार्थ भाव से आपको सलाह देता हूँ कि अगर आप परिपूर्ण संयम का पालन कर सकें तो अवश्य करें। आपने पूर्व जन्म में पुण्य किया होगा, तपस्या की होगी, तब आपको यह मानवभव प्राप्त हो

सका है। अब आप भोगोपभोगों के लोभ में फँस कर इसे वृथा नष्ट न करें, किन्तु आत्मा का हित करने वाले कार्य करके सार्थक बनावें। यह निश्चित समझ लें कि यह सुअवसर बार-बार मिलने वाला नहीं है।

आज अधिकांश लोगों की हालत बन्दर के समान ही हो रही है। जो हजारों का मालिक है वह लाखों का स्वामी बनना चाहता है और जो लाखों का स्वामी है उसे करोड़पति बनने की धुन सवार है। इस प्रकार लोग तृष्णा के अनन्त प्रवाह में बहे जा रहे हैं उनका कोई लक्ष्य स्थिर नहीं है। स्थिरता के अभाव मे शान्ति नहीं मिल सकती। सच्ची शान्ति त्याग और सन्तोष मे है। धर्म की आराधना करने से ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है।

अरे मनुष्य! एक न एक दिन तुझे मरना है। तू अमर बनने की चेष्टा क्यों नहीं करता। जो दूसरों की भलाई करता है और अपने समस्त साधनों को—तन, मन, धन एवं जीवन को—दूसरों की भलाई मे लगा देता है, वह मर कर भी अमर हो जाता है। तुम्हारे पास धन है तो उसके नशे मे पागल मत बनो, बल्कि उसका परोपकार मे व्यय करो। धन के नशे में चूर हो जाने वाले लोग भिखारी होते हैं।

हम एक बार सीतामऊ (मालवा) में पहुंचे। सीतामऊ नरेश ने हमारा उपदेश सुना। मैंने कहा - एक राजा था। वह हाथी पर सवार होकर हवाखोरी के लिए निकला। थोड़ी देर बाद उसने कहा—घोड़ा लाओ। नौकरों ने घोड़ा हाजिर किया और राजा उस पर सवार हो गया। थोड़ी दूर चला कि फिर बोला—सुखपाल लाओ। नौकरों ने वह भी हाजिर किया।

राजा उसमें बैठकर कुछ और आगे चला। फिर कहने लगा-अब एक छायादार वृक्ष के नीचे आराम करेंगे। नौकरों ने फौरन गादी और तकिये लगा दिये। राजा आराम से बैठ गया और नौकर पैर दबाने लगे। वहीं पास मे दो स्त्रियां छाणे बीन रही थीं। राजा का यह हाल देख कर उनमें से एक ने दूसरी से कहा—बहिन, देखा तुमने ? यह क्या बात है ?

हाथी चढ़ घोड़े चढ़े, और चढ़े सुखपाल।
कब का थाका है सखी, अबै दबावे पांव॥

अर्थात्—यह राजा पहले हाथी पर बैठा था, फिर घोड़े पर सवार हुआ और फिर सुखपाल में विराजमान हो गया। यह कब और कैसे थक गया जो अब पैर दबवा रहा है ? इसने क्या मिहनत की है ? तब दूसरी स्त्री ने कहा:—

भूखा रह्या भूमि पड्या, कीना उग्र गमन।
तब का थाका है सखी, अबै दबावे चरन॥

अर्थात्—हे सखी, तुम वर्त्तमान को ही देख रही हो। मगर पिछले हाल का विचार करोगी तो बात तुम्हारी समझ में आ जायगी। पूर्व जन्म में यह राजा अलवाने पैरों चला है, इसने उग्र विहार किया है, भूमि पर शयन किया है—तपस्या की है। उसी थकावट को दूर करने के लिए राजा पैर दबवा रहा है।

हां, तो भाइयों ! मतलब यह है कि पूर्व जन्म में जो कमाई करके लाए हो, वह इस जन्म में भोग रहे हो। मगर यह भी तो विचार करो कि इस जन्म में आगे के लिए क्या कर रहे हो ?

आगे किसके द्वार पर जाकर खड़े होओगे ? वहां नानी या दादी का घर नहीं है। अपना किया ही भोगना पड़ेगा। अतएव अगर तुम विवेकवान् हो तो पहले ही चेतो, समझ बूझ कर कुछ प्रबन्ध करलो। कुछ साथ में लेजाने योग्य पूँजी बनालो।

पहले आया जहां से तो आया नगन,
फिर जाओगे अन्त नगन के नगन।
या तो देवेंगे फूँक लगा के अगन,
या कर देंगे मिट्टी को खोद दफन॥
दो चीजों का साथ चलेगा 'वजन'
शुभ अशुभ कर्म जो जो बांधे हैं मन।
देखो एक दिन होवेगा यहां से गमन,
करो उस पै अमल जो है सत्य वचन॥
क्यों बहका ही बहका फिरे अय मन,
जिन नाम का ले अनमोल रतन।
मुनिराजों का मिलना है महा कठिन,
करो ऐसा जतन जो मिले दर्शन॥

जब तुम माता के पेट से बाहर आये थे तो क्या कोट, कुर्ता, धोती आदि वस्त्र पहन कर आये थे ? और जब जाओगे तो किस हालत में जाओगे ? कपड़े पहन कर जाओगे ? आभूषण धारण किये-किये ही प्रस्थान करोगे ? तिजोरी की चावियां कमर में लटका कर ले जाओगे ? महल और हवेली को माथे पर

उठा कर जाओगे ? जिस सम्पत्ति के लिए रात दिन एक कर रहे हो, अनीति और नीति की परवाह नहीं करते हो धर्म और अधर्म का विचार नहीं करते; उस सम्पत्ति में से क्या-क्या साथ लेकर जाओगे ? मित्रो ! आंखे खोलो। तुम्हारे पुरखा चले गये और वे कुछ भी साथ नहीं ले गये। अब क्या तुम साथ ले जा सकोगे ? नहीं, हर्गिज नहीं। सब कुछ यहीं पड़ा रह जायगा। आंख मिचते ही माल पराया हो जायगा। तुम भी इस बात को जानते हो और भली भांति जानते हो। फिर भी भ्रमणा में पड़े हो ? आश्चर्य है कि फिर भी परलोक को सुधारने की तरफ ध्यान नहीं देते हो ! अगर तुम हिन्दू हो तो लकड़ों में दबा कर भस्म कर दिये जाओगे। और यदि मुसलमान हो तो जमीन मे गड़हा खोदकर दबा दिये जाओगे। बस, किया हुआ पुण्य और पाप ही साथ जायगा। भलाई और बुराई छोड़कर जाओगे। भलाई कर जाओगे तो लोग मरने के बाद भी प्रशसा करेंगे। बुराई करके जाओगे तो लोग कहेंगे—भला मरा, पाप कटा ! उस पापी ने कभी देश, जाति और समाज की भलाई नहीं की। इसने अपनी जिंदगी में किसी को फायदा नहीं पहुंचाया। भाइयों ! पुण्य कमा कर जाओगे, सेवा और परोपकार मे अपने तन, मन और धन को लगा कर जाओगे तो आगे भी आराम पाओगे। लोग भी तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। इसलिए जरा गभीरता से, अपने चित्त को शान्त और स्वस्थ करके विचार करो और अपने जन्म को सफल बनाने का उद्योग आज से ही आरम्भ कर दो। संतों के उपदेश सुनते-सुनते बहुत दिन बीत गये हैं। अब उससे कुछ तो लाभ उठाओ। जरा सोचो तो सही।

सोच करे तो सुघड़ नर, कर सोचे सो कूड़।
सोच करयां मुख नूर है, कर सोच्यां मुख धूड़॥

संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं। पहले प्रकार के लोग वे हैं जो पहले विचार करते हैं और फिर काम करते हैं। दूसरी तरह के लोग पहले काम कर बैठते हैं और बाद में विचार करते हैं। यह दोनों ही तरह के मनुष्य विचार भी करते हैं और काम भी करते हैं; फिर भी दोनों में बड़ा अन्तर है। जो पहले सोचकर काम करता है वह अक्लमंद है। उसे बाद में पश्चाताप नहीं करना पड़ता। उसका कार्य सफल होता है। इसके विपरीत जो मनुष्य पहले बिना विचारे काम करता है उसे काम कर चुकने के पश्चात् पछताना पड़ता है। जो सोच कर करेगा उसका मुख उज्जवल होगा और जो पहले करेगा पीछे सोचेगा उसके मुख पर धूल पड़ेगी। अर्थात् उसे निन्दा का पात्र बनना पड़ेगा और पश्चात्ताप की आग में झुलसना पड़ेगा।

भाइयो ! मैं फिर दोहराता हूं और बलपूर्वक कहता हूँ कि मनुष्य जीवन की इन अनमोल घड़ियों को वृथा व्यतीत मत करो। जीवन को सार्थक बनाने का प्रयत्न करो। जल्दी ही सावधान हो जाओ। अगर आपने मेरे परामर्श पर ध्यान दिया और आत्म-कल्याण की तरफ लक्ष्य दिया तो इस भव में भी और परभव में भी आनन्द ही आनन्द होगा।

तारीख ६-६-४८



स्वकीय दया



स्तुतिः—

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणित-वारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? हे भगवन् ! कहा तक आपके गुण गाये जाएँ ?

कोई पुरुष किसी संग्राम में गया हुआ है। संग्राम बडा ही भयानक हो रहा है। हाथी वाले हाथी वालों से लड़ रहे हैं,

घुड़सवार घुड़सवारों पर प्रहार कर रहे हैं। रथी रथियों के प्राणों के ग्राहक हैं और पैदल सैनिक पैदलों के प्राणों का अपहरण कर रहे हैं। भालों की नौकों से हाथियों के शरीर को छेदा जा रहा है। उनसे निकले हुए रक्त का प्रवाह ऐसा वह रहा है मानो कोई नाला वह रहा हो। रक्त के उस नाले को पार करना कठिन है। ऐसे भीषण युद्ध में भी उन्हें अनायास ही सफलता-विजय-प्राप्त होती है जो भगवान् ऋषभदेवजी के चरण कमलों का आश्रय लेते हैं। भगवान् के चरण-कमलों का प्रताप ऐसा अद्भुत है। ऐसे भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो ! आज का मानव समाज जड़ के पीछे पड़ा हुआ है। हमारे वैज्ञानिक जड़ पदार्थों की नवीन-नवीन शक्तियों का पता लगा कर ससार को चकित करने वाले अनेकानेक, एक दूसरे से अद्भुत आविष्कार करने में जुटे हुए हैं। अभी तक जड़ पदार्थों की अनेक चमत्कारपूर्ण शक्तियों का पता लगा है। अणु-बम उन्हीं में से एक है। पिछले विश्व युद्ध में जापान के हिरोशिमा नगर पर अणुबम फैंका गया था। वह आकार में बड़ा नहीं था फिर भी वह जहां गिरा वहां के आस पास की मीलों तक की जगह पर उसका प्रभाव हुआ। इससे यह तो स्पष्ट मालूम हो गया कि जड़ वस्तुओं मे भी दूर-दूर तक अपना असर डालने की शक्ति मौजूद हैं। किसी वस्तु का असर अगर संहारक हो सकता है तो कोई वस्तु ऐसी भी हो सकती है जिसका प्रभाव संहारक न होकर पोषक हो—कल्याणकारी हो।

मगर खेद है कि आज का विज्ञान विशुद्ध विज्ञान नहीं रह गया है। विशुद्ध विज्ञान होता तो उससे जगत का महान्

कल्याण होता। आधुनिक विज्ञान पर क्षुद्र, संकीर्ण और स्वार्थपूर्ण राजनीति की प्रभुता है। राजनीति की प्रभुता ने विज्ञान को अभिशाप बना दिया है। आज के वैज्ञानिक प्राय ऐसे लोगों के प्रभाव में काम कर रहे हैं, जिनके हाथ में राजनीति का सूत्र है, शासनसत्ता है और अधिकार लोलुपता जिनकी नस-नस में भरी हुई है। इन्हीं के चलाये वैज्ञानिक चलते हैं। अतएव वे जड़ पदार्थों की प्रायः संहारक शक्तियों का ही आविष्कार करते हैं। ऐसा होने पर भी इन आविष्कारों से इतना पता तो चल ही गया है कि जड़ पदार्थों की शक्तियों की कोई सीमा नजर नहीं आती और वे एक जगह स्थित होकर भी दूर दूर तक अपना प्रभाव डालते हैं।

प्राचीन काल के विज्ञानी पुरुष अकसर संसारत्यागी; मुमुक्षु, निस्वार्थ और निस्पृह होते थे। उनमें न सत्तालोलुपता थी, न संहार करने की उन्हें आवश्यकता थी। वे विशुद्ध विज्ञान के लिए ही ज्ञान की उपासना किया करते थे। अतएव उनकी दृष्टि में जगत्कल्याण की भावना ही प्रधान थी। इस कारण प्राचीन काल में जहा भौतिक पदार्थों की शक्तियों का पता लगाया जाता था, वहां आत्मा की शक्तियों की भी खोज की जाती थी। चेतन की चमत्कार उत्पन्न करने वाली रहस्यमयी शक्तियों का अन्वेषण करना उस समय के साधकों का प्रधान लक्ष्य बन गया था। तभी उन्होंने पता लगाया था कि आत्मा मे भी बड़ी-बड़ी अद्भुत और अलौकिक शक्तियां विद्यमान है।

अगर अणुबम जैसे विषैले पदार्थों में मीलों तक अपना असर डालने की क्षमता है तो क्या आत्मा मे ऐसी क्षमता नहीं

हो सकती है ? इतना ही नहीं बल्कि आत्मा में अणुबम की अपेक्षा भी अनन्त गुणी शक्ति है, क्योंकि आत्मा अणुबम से अनन्तगुणा सूक्ष्म है। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म में शक्ति अधिक होती है। भारत के प्राचीनकालीन ज्ञानियों ने, साधकों ने, वैज्ञानिकों ने, इस तथ्य को भलीभांति पहचान लिया था। यही कारण है कि जैन शास्त्र स्पष्ट रूप से यह घोषणा करते हैं कि आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेने वाले अरिहन्त भगवान् जिस स्थान पर पहुंचते हैं, उसके इर्दगिर्द दूर तक उनकी आत्मा का असर पड़ता है।

जैसे जड़ पदार्थों का जड़ पदार्थों पर और आत्मा पर प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा का भी चेतन और अचेतन-दोनों प्रकार के पदार्थों पर प्रभाव पड़ता है। अरिहन्त भगवान् के चरण जहां पड़ते हैं, वह भूमि भी शुद्ध हो जाती है। जहां भगवान् पधारते हैं, वहां से पच्चीस-पच्चीस योजन दूर तक दुष्काल नहीं पड़ता; वहां अतिवृष्टि और अनावृष्टि भी नहीं होती। चार-चार कोस के घेरे में कांटे यदि सीधे पड़े हों तो उलटे हो जाते हैं। भगवान् जिस देश में पदार्पण करते हैं वहां सुभिक्ष हो जाता है, महामारी आदि बीमारियां हों तो उनकी उपशान्ति हो जाती है।

भगवान् के सामीप्य से चेतन की प्रकृति में भी परिवर्त्तन हो जाता है। जन्म से एक दूसरे के विरोधी सिंह और हिरन जैसे जीव भी अपना वैर त्याग कर मित्र सरीखे बन जाते हैं। योग शास्त्र में भी इस प्रभाव का उल्लेख मिलता है:—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

अर्थात्—जहां अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है, उस आत्मा के आसपास के जीव वैर-विरोध का त्याग कर देते हैं।

यह तीर्थङ्कर भगवान् की विशेषता है। सभी तीर्थङ्करों में यह अतिशय पाया जाता है। भगवान् के सर्वोत्कृष्ट और सर्वोपरि पुण्य के प्रभाव से जड़ और चेतन प्रकृति में ऐसा परिवर्त्तन हो जाता है।

जो महापुरुष अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए संयम का पालन करते हैं और धर्म के विविध अंगों का सेवन करते हैं, उन्हें स्वतः ही आनुषगिक रूप में पुण्य का बंध होता रहता है। वे पुण्य बांधने की दृष्टि से धर्म का आचरण नहीं करते हैं, तभी उनके उत्कृष्ट पुण्य का बंध होता है। जो पुरुष दयालु हैं, सत्य-वक्ता हैं, न्याय बात को पकड़ने वाले हैं और जिनकी आत्मा में जीव मात्र के प्रति समभाव विद्यमान होता है, वही ऊँचे दर्जे का पुण्य बांध सकते हैं। इन सब सद्गुणों में भी दया सब से प्रधान है। जिसमें दया होगी, उसमें दूसरे सद्गुण आप ही आप चले आते हैं! तीर्थङ्कर भगवान् में दया एवं करुणा की भावना अपनी चरम सीमा को पहुँच जाती है।

दया भी दो प्रकार की होती है-द्रव्यदया और भावदया। दूसरी तरह से भी दया के दो भेद हैं—स्वदया और परदया। यह सभी प्रकार की दया आत्मा का परम कल्याण करने वाली है।

किसी प्राणी को न सताना, दीन-दुखी को देख कर उसका दुख-दर्द दूर करने का प्रयत्न करना आदि द्रव्यदया कहलाती है और हृदय में दूसरे के दुःख को दूर करने की भावना उत्पन्न होना

और अपनी आत्मा में राग द्वेष आदि की विकार भावना न उत्पन्न होने देना भावदया कहलाती है। मान लीजिए किसी रस्ते के एक भाग में हरी लिलोती है और दूसरा भाग बिलकुल साफ है। उसे देख कर ऐसा विचार आना चाहिये कि मैं हरी-लिलोती वाले मार्ग पर न चलूं, ताकि जीवों की रक्षा हो सके और पर-जीवों की दया से स्वदया होती है। अपनी आत्मा को पापों से बचाना स्वदया है। जहां पानी ढोलना अनिवार्य है वहां जितनी बचत हो सकती हो उतनी बचत करने से परदया के साथ स्वदया का भी पालन होता है। झूठ बोलने की जगह झूठ न बोला तो समझा जायगा कि यह अपनी दया पाल रहा है। खा-खा कर तो दुनियां बिगाड़ कर रही है मगर कुछ हिस्सा परोपकार में लगा दिया तो समझना कि मैं अपनी दया कर रहा हूँ।

एक बड़े ऊँचे दर्जे का अंग्रेज अच्छे कपड़े पहन कर अपने नौकरों के साथ घूमने के लिए निकला। रास्ते में वह क्या देखता है कि एक गड्हा है उसमें थोड़ा पानी है, बहुत कीचड़ है और बड़े-बड़े पत्थर भी हैं। उस कीचड़ में एक भंड शूकर फँस गया है। वह निकलने के लिए जी तोड़ कर कोशिश कर रहा है मगर निकल नहीं पाता। ज्यों-ज्यों पैर चलाता है, अधिक अधिक फँसता जाता है शूकर चिल्ला रहा है। उस अंग्रेज के कानों में आवाज पड़ी। उसने ड्राइवर को सवारी रोकने का आदेश दिया। अब वह नीचे उतर पड़ा, उस जगह गया और कीचड़ में घुस गया। शूकर को निकालने में उसकी सारी पोशाक कीचड़ में भर गई, यहां तक कि टोप पर भी छींटे उछल गये। शूकर को निकाल कर वह बाहर आया ही था कि इतने में एक हिन्दुस्तानी रईस निकले।

वह हीरे, पन्ने, माणक, मोती के आभूषण पहने हुए थे। उन्होंने कहा—आपने इस शूकर पर बड़ी दया की !

यह बात सुन कर उसने कहा—मैंने इस पर दया नहीं की है, अपने आप पर दया की है !

रईस—सो कैसे ?

अंग०—जब इसकी करुण ध्वनि मेरे कानों में पड़ी तो मुझे बहुत दुःख हुआ ! मेरे हृदय का दुःख तभी मिट सकता था जब मैं इस पशु का दुःख दूर कर देता। इस प्रकार मैंने अपना दुःख मिटाने के लिए इसका दुःख मिटाया है।

भाइयो ! कहिए, उस अंगरेज की विचारधारा कितनी ऊँची है ? उसकी भी क्या अक्ल और क्या समझ थी ! आप लोग दया और धर्म के ठेकेदार बनते हैं किन्तु इस अंगरेज के साथ अपनी तुलना करके देखो ! उसने अपने कपड़ों के बिगड़ने की परवाह न करके सिर्फ कर्तव्य पालन और परोपकार एवं दया का ही विचार किया। उसकी तारीफ तो यह है कि वह परोपकार करके अभिमान नहीं करता, बल्कि नम्रता ही प्रकट करता है। परोपकार को वह आत्मोपकार ही मानता है। इस प्रकार की ऊँची भावना बहुत कम पुण्यवान् पुरुषों में ही पाई जाती है। उपकार करने वाले तो फिर भी मिल जाएँगे, मगर उपकार करके अभिमान करने वाले विरले ही होते हैं। अधिकांश लोग तो तोला भर उपकार करके मन भर एहसान जतलाते हैं ! ऐसे लोगों के परोपकार की कीमत तुच्छ रह जाती है। वास्तव में वही व्यक्ति श्रेष्ठ और धर्मिष्ठ है जो दूसरे पर दया

करके भी नम्रतापूर्वक रहता है, अभिमान नहीं करता और पर-दया को स्व दया ही समझता है।

अगरेजों में भी बहुत से लोग भद्र होते हैं। कई लोग मांस और मदिरा के त्यागी भी होते हैं। एक बार मैं उदयपुर में व्याख्यान दे रहा था। एक भाई अपने प्रभाव से एक अगरेज को, जो ब्रिटिश पार्लामेन्ट का सदस्य था, व्याख्यान में लाये। तब मैंने उससे कहा—अंगरेज बहादुर! मनुष्य अपनी विशिष्ट समझदारी और कर्तृत्वशक्ति के कारण अगर बड़ा भाई समझा जाय तो मोर, कबूतर आदि पशु-पक्षि उसके छोटे भाई हैं। बड़ा भाई अपने छोटे भाई की हत्या करे, यह बात कहां तक उचित है?

दूसरे भाई ने मेरी बात अंगरेजी भाषा में उसे समझा दी। तब वह अंगरेज बोला—मैं न तो शराब पीता हूँ और न मांस ही खाता हूँ। मैं शाकाहारी हूं। शिकार करने से भी मुझे घृणा है।

जैसे अपने इधर कई लोग बिगड़े हुए होते हैं, वैसे ही उनमें कई लोग सुधरे हुए होते हैं। आपको दूसरों के सद्गुण देखने चाहिए और सद्गुणों के प्रति प्रीति एवं आदर का भाव रखना चाहिए। किसी भी देश के सभी निवासी एक-से नहीं हो सकते।

हां, तो मेरे कहने का आशय यह है कि आप दयाधर्म का पालन कीजिए। परदया के साथ स्वदया और स्वदया के साथ परदया का पालन करने से ही दया का पूरी तरह पालन होता है। मान लीजिए, किसी ने आपको गाली दी। गाली सुन-कर आपको क्रोध न आया और आपने बदले में गाली नहीं दी

तो समझा जायगा कि आपने अपनी दया का पालन किया है। कोई भोला मनुष्य आपके ऊपर विश्वास करता है। आप चाहें तो सहज ही उसे ठग सकते हैं। मगर आप उसे ठगना उचित नहीं समझते और सोचते हैं कि-'अरे आत्मा ! क्या सोना-चांदी आदि सम्पत्ति तुझे अपनी छाती पर रखकर ले जानी है ? इस दुनियां की चीजें तो इसी दुनियां में रह जाएँगी ! फूटी कौड़ी भी साथ जाने वाली नहीं है। फिर वृथा ही इस सम्पत्ति के लिए क्यों पाप कर्म करता है ? क्यों अपनी आत्मा को पाप से कलुषित बनाता है ? पापों का बोझा लादने से तेरा भविष्य अकल्याणकारी बन जायगा, दुःखमय बन जायगा। जब पाप कर्मों का उदय होगा तब पाप से उपार्जित की हुई सम्पत्ति सुख प्रदान नहीं कर सकेगी, वह उलटा दुःख का ही कारण बनेगी।' ऐसा सोचने वाला अपनी दया करता है।

इसी प्रकार अगर आपने अभिमान नहीं किया तो समझना चाहिए कि आपने अपने ऊपर दया की है। इसके विपरीत अगर आपने अभिमान किया तो समझ लो कि अपने रास्ते में कांटे बो लिये। दूसरों को तकलीफ दी तो समझना कि अपने ऊपर ही आपने प्रहार किया है।

श्रीठाणांगसूत्र में तीन प्रकार के दण्ड कहे हैं—(१) मन-दण्ड (२) वचन दण्ड (३) कायदण्ड। अगर अपने मन में आप दूसरे का अहित करने की बात सोचते हैं तो चाहे दूसरे का अहित न भी हो सके मगर अपना अहित तो आपने कर ही लिया ! अपनी हथेली पर धधकता हुआ अंगारा लेकर दूसरे पर फैंकने की इच्छा रखने वाला पुरुष मूर्ख है। क्या पता है कि

दूसरे पर वह गिरेगा भी या नहीं ? मगर जो गिराना चाहता है उसकी हथेली तो जले बिना रहेगी नहीं। इसी प्रकार दूसरों का बुरा सोचने वाला भी मूर्ख है। वह दूसरों का बुरा करने से पहले ही अपना बुरा कर लेता है ! दूसरे के अपशकुन के लिए अपनी नाक कटवाना बुद्धिमता का काम नहीं है। अतएव अगर आपको अपनी दया करनी है, अपने भविष्य को कल्याणमय बनाना है तो दूसरों का कल्याण सोचो और यथाशक्ति दूसरों के अकल्याण से बचो। इसी में आपकी भलाई है। मनुष्य अपने मन के द्वारा वृथा ही बहुत-से पापों का सञ्चय कर लेता है। समझदार मनुष्य सदैव ऐसे पापों से बचने का प्रयत्न करते हैं।

अगर कोई मनुष्य अपनी जीभ से किसी को गाली दे रहा है तो समझ लो कि वह दूसरे का कुछ नहीं बिगाड़ता, अपने लिए अभिशाप दे रहा है, अपनी ही हानि कर रहा है। दूसरे के प्रति उच्चारण किये गये अपशब्द, या कठोर शब्द उसे कोई हानि नहीं पहुँचाएँगे बल्कि अगर वह समभाव से उन्हें सहन कर लेगा तो उसकी निर्जरा के कारण बनेंगे, किन्तु बोलने वाले का तो एकान्त अहित ही होगा।

इसी प्रकार अपने शरीर से दूसरे को नुकसान पहुँचाना भी अपनी आत्मा को ही नुकसान पहुँचाना है।

अतएव भाइयो ! जरा सोचो, समझो और अपने कर्त्तव्य का ही पालन करो। अच्छा आदमी किसे कहते हैं ? अच्छा दुपट्टा ओढ़ लेने से या कीमती जेवर पहन लेने से कोई अच्छा नहीं हो जाता। दूसरों को ठगने के कारण भी कोई भला आदमी नहीं कहलाता। कहा है:—

समझा डरता पाप से, अन-समझा हर्षन्त।
इक रूखा एक चीकना, दो विध कर्म बंधंत॥

इस छोटे से दोहे में कर्मसिद्धान्त की एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही गई है। बात यह है कि जिसने संसार सम्बन्धी समस्त झंझटों को छोड़ दिया है और जो विरक्त होकर एकान्त साधनामय जीवन बिता रहा है, उसकी बात तो दूसरी है, मगर जो गृहस्थ दुनियादारी की जवाबदारी से नहीं छूट पाया है, वह कितना ही सावधान और समझ के साथ काम करे तो भी पाप से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता। संसार सम्बन्धी कामों में यतना का ध्यान रखने पर भी पाप हो ही जाता है। फिर भी जो पुरुष विवेकवान् होता है। और पाप कर्म से डरता रहता है, उसे रूखे कर्मों का बंध होता है। रूखे कर्मों के बँधने का अर्थ यह है कि उन कर्मों की स्थिति भी थोड़ी होती है और अनुभाग-फल भी हल्का होता है। इसके विपरीत अज्ञानी जीव पाप करते हुए बहुत प्रसन्न होते हैं। वे तीव्र कषाय से प्रेरित होकर पाप करते हैं। इस कारण उन्हें चिकने कर्मों का बंध होता है। उन चिकने कर्मों का फल बड़ा ही दारुण और भीषण होता है। इस प्रकार भावना के भेद से एक सरीखे कार्य के फल में भी महान् अन्तर पड़ जाता है। अतएव सच्चा समझदार और पंडित वही है जो पापों से डर कर अपनी भावना को पवित्र और पुण्यमय रखता है। अन्तःकरण में कषाय को जागृत नहीं होने देता। कदाचित् कोई सांसारिक कार्य करना पड़ता है तो भी यतना रख कर अधिक पाप से बचने का प्रयत्न करता है। कहा है:—

चार वेद मुख से भण्यां, समझ बिना सब झूठ।
जीवदया पाले नहीं, तो सब माथा–कूट॥

अगर किसी ने चारों वेद पढ़ लिए हैं, विविध शास्त्रों को कण्ठस्थ कर लिया है और ऊँचे दरजे की विद्वता प्राप्त कर ली है, मगर उस ज्ञान को आचरण में परिणत नहीं किया, जीवों पर दया नहीं की, तो उसकी विद्वत्ता वृथा है। उसने पुस्तकें रट-रट कर माथापच्ची की है, उनसे कोई असली लाभ नहीं उठाया। ज्ञान का फल दया है और जिसने जीवदया का पालन करके अपनी दया पाली है, वही वास्तव में पण्डित है।

अगर बहू, सासू के सामने बोलती है अर्थात् सासू से झगड़ती है तो समझना चाहिए कि वह अपने ही हक में बुरा कर रही है क्योंकि ऐसा करके वह अपना अकल्याण करती है। वचनों के घाव बहुत दिनों तक नहीं मिटते। कहा भी है—

बोल बड़ा अनमोल है, बोल सके तो बोल।
हृदय-तराजू तोल के, पीछे बाहर खोल॥

तलवार, छुरा या भाले का घाव तो समय पाकर भर जाता है, किन्तु वचनों के द्वारा किया हुआ घाव मिटना बड़ा कठिन होता है। जबान से दूसरों को गाली देना अपनी ही आत्मा को पतित करना है। कहा है—

मत दीजो चतुर नर गाली,
पीओ समता-रस की प्याली रे।

हे बुद्धिमान ! समझदार उसी को कहते हैं जिसके पास गाली न हो। दो तरह के आदमी जगत् में होते हैं—एक गाली वाले और दूसरे वे जिनके पास गालियां नहीं होतीं। एक ने दूसरे को चार गालियां दीं। दूसरा चुपचाप, मुस्किराता हुआ उसकी गालियां सुनता रहा। यह देख कर पहले आदमी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मैं आवेश और क्रोध में आकर गालियां दे रहा हूँ, मगर यह चुप्पी साध बैठा है ! इस पर मेरी गालियों का कोई असर ही नहीं हुआ। इस तरह मेरा गाली देना व्यर्थ हो गया। मेरी जबान खराब हुई और इसके दिल पर तनिक भी चोट न पहुँची। तब उसने पूछा—तू क्यों गाली नहीं देता ? उसने हँसते हुए कहा—मेरे पास गालियां होती तो देता ! हैं ही नहीं तो कहां से दूं ? एक कवि ने ठीक कहा है—

ददतु ददतु गालीं गालिमन्तो भवन्तः,
वयमपि तदभावद् गालिदाने ऽसमर्थाः।
जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमानम्,
न हि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति ॥

आप गाली वाले हैं तो दीजिए, खूब गालियां दीजिए। हमारे पास गालियां नहीं हैं, अतएव हम देने में असमर्थ हैं। यह बात सारा संसार जानता है कि वही वस्तु दी जाती है जो मौजूद हो। जिसके पास जो चीज है ही नहीं, वह उसे कहां से देगा ? खरगोश का सींग कोई किसी को नहीं दे सकता।

भाइयो ! दुर्वचन बोलने का परिणाम क्या होता है, जरा सुनिये—

मन मोती टूटी जावे, नहीं जुड़ता लीजो संभाली रे ॥

मोती चाहे लाख रुपये का हो, लेकिन टूट जाने के बाद फिर वह नहीं जुड़ सकता। इसी प्रकार मन टूट जाने पर नहीं जुड़ता। गाली देने से या कटु वचन कहने से आदमी का दिल ऐसा फट जाता है कि फिर आंख से आंख मिलाना भी मुश्किल हो जाता है। बाद में कटु वचन बोलने वाला भी पछताता है! मगर जब तीर हाथ से छूट गया हो तो बाद में पश्चाताप करने से भी क्या होता है? अतएव विवेकशील व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह जो वचन बोले, बिना समझे-बूझे, बिना भलीभांति विचार किये, कदापि न बोले। साथ ही सुनने वाला अगर समझदार और उत्तम पुरुष है तो उसे चाहिये कि दूसरे के छोड़े हुए वचन-बाणों को अपने हृदय में न चुभने दे।

कहा जा सकता है कि वचन-बाणों को हृदय में न चुभने देने के लिए क्या उपाय करना चाहिए? वे चुभे बिना किस प्रकार रह सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ज्ञानी पुरुषों ने वचन बाणों की चुभन और वेदना से बचने का बहुतसरल उपाय बतलाया है। युद्धक्षेत्र में लड़ने वाले शूरवीर योद्धा अपने शरीर पर कवच धारण कर लेते हैं। मजबूत कवच को धारण कर लेने पर शत्रु के द्वारा किये गये प्रहार व्यर्थ हो जाते हैं। इसी प्रकार जो वीर पुरुष अपने हृदय पर समभाव का कवच धारण कर लेता है, वही दूसरों के द्वारा छोड़े हुए वचन-बाणों से बेदाग बच जाता है। समभाव का कवच कहीं बाजार में पैसे देकर नहीं खरीदना पड़ता। वह अभ्यास से आप ही आप प्राप्त हो जाता है और वह अमोघ तथा अचूक कवच है। अगर आपने समता भाव का कवच दृढ़ता

के साथ धारण कर लिया तो विरोधियों के हजार प्रहार भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे।

दूसरे को बुरा कहना अपनी आत्मा की हंसी करना है।

दी गाली द्रौपदी रानी, फिर दुष्ट दुशाशन झाली रे।
दे चौथमल यूं शिक्षा, थे चालो उत्तम चाली रे॥

अभिमन्यु के दशोटन के उपलक्ष्य में मणिचूड़ नामक विद्याधर ने एक विशाल हीरे, पन्ने, माणिक और मोती आदि रत्नों एवं मणियों से सुशोभित मण्डप बनाया था। इस अवसर पर बड़े-बड़े राजाओं को आमन्त्रित किया गया था। श्रीकृष्ण बलभद्रजी, दुर्योधन, कीचक शल्य, दुश्शासन, कर्ण आदि-आदि सभी प्रभावशाली नरेश वहां मौजूद थे! सभी मण्डप को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। समारोह सहर्ष सम्पन्न हो गया और सब राजाओं को विदाई दे दी गई। सिर्फ दुर्योधन आदि भाई रह गये।

एक समय पांचों पाण्डव और दुर्योधन आदि मडप देखने गये। मण्डप ऐसी कारीगरी और कुशलता से बनाया गया था कि जहां पानी था वहां जमीन मालूम होती थी और जहां जमीन थी वहां पानी मालूम होता था। और जहां दीवार थी वहां दरवाजा मालूम होता था और जहां दरवाजा मालूम पड़ता था वहां दीवार थी। दुर्योधन को जहां पानी मालूम हुआ वहां उसने कपड़े ऊँचे कर लिए परन्तु वास्तव में वहां पानी नहीं था। जहां वास्तव में पानी था वहा कपड़े ऊँचे नहीं किये। इससे उसके कपड़े भींग गये। दुर्योधन की यह भ्रान्ति देख कर सब लोग

हँसने लगे। इसके बाद आगे जाने पर दरवाजा समझ कर वह निकलने लगा तो वहां दीवार निकली और उससे टकरा गया। उसके सिर में चोट लगी। यह देख कर ऊपर झरोखे में बैठी हुई द्रौपदी हँस पड़ी। उसने मजाक किया—अन्धे के लड़के भी अन्धे होते हैं। यह मर्मवेधी व्यंग सुन कर दुर्योधन ने ऊपर की तरफ देखा और कहा—'अच्छा द्रौपदी! तुझे जो इसका मजा न चखाया तो मेरा नाम दुर्योधन नहीं।' दुर्योधन के क्रोध का पार न रहा।

शस्त्र घाव मिट जाता है, पर वाक्य घाव नहीं मिटता है।
जब समय-समय पर याद आय, कांटे की तरह खटकता है॥

देखो भाइयो! शस्त्र का घाव तो थोड़े ही दिनों में मिट जाता है, मगर जबान का घाव मिटना बहुत मुश्किल है।

एक पण्डितजी किसी गांव में कथा करके आ रहे थे। रास्ते में जंगल पड़ता था और जंगल में झाड़ियां थीं। बीच में एक नाला भी था। पण्डितजी आ रहे थे कि उस समय किसी झाड़ी में से नाहर निकल आया। नाहर को देखते ही पण्डितजी के देवता कूच कर गये। बगल में दबी हुई भागवत की पोथी कब गिरी, इसका उन्हें पता भी न चला। वह बुरी तरह घबराये और कांपने लगे। तब नाहर ने मनुष्य की आवाज मे कहा—तू कौन है?

पण्डितजी बोले—मैं पण्डित हूँ और भागवत की कथा सुनाकर आ रहा हूँ।

नाहर—तो घबराओ मत और मुझे कथा सुनाओ।

पण्डितजी ने डरते डरते, कांपते-कांपते कथा सुनाई। कथा समाप्त हुई तो नाहर ने कहा—यहीं ठहरना मैं अभी आता हूँ। नाहर चला गया और वापस लौटकर भी आ गया। उसने पण्डितजी को दो मोहरें दीं। कहा—यह कथा सुनने की दक्षिणा है। अब रोज आना और कथा सुना जाना। मैं तुम्हें यथायोग्य दक्षिणा दूंगा।

पण्डितजी को दक्षिणा पाकर प्रसन्नता तो हुई, मगर कलेजे में बैठा हुआ भय निकलने का नाम ही नहीं लेता था। उनकी पत्नी ने उन्हें कांपते देखकर कारण पूछा। पण्डितजी ने आदि से अन्त तक सारी कहानी कह सुनाई। पण्डितजी बोले—अजब हालत है! डर भी लगता है और खुशी भी होती है।

दूसरे दिन पण्डितजी फिर कथा सुनाने पहुँचे। नाहर ने फिर दो मोहरें दीं। इस तरह कई दिन हो गये। एक दिन नाहर ने कहा—मुझे कभी 'ढांढारा खानार' (पशुओं का भक्षक) मत कहना। ऐसा कहना मैं अपने लिए गाली समझता हूं। यह बात ध्यान में रखना।

पण्डितजी ने कहा—ठीक है, मैं ध्यान रक्खूँगा।

प्रतिदिन कथा का वाचन चलता रहा। पण्डितजी में धीरे-धीरे निर्भयता आ गई। एक दिन की बात है कि पण्डितजी समय पर वहां जा पहुँचे, मगर किसी कारण से नाहर को आने मे देरी हो गई। करीब पौन घंटा व्यतीत हो गया। पण्डितजी ने कहा—'ढांढारा खानार' अभी तक नहीं आया! बस, इतना कहना था कि उसी समय नाहर आ धमका। उसे आया देख पण्डितजी बोले—सुनो दातार! कथा।

नाहर ने कहा - बस सुन ली कथा! इसके पश्चात् वह बोला—देखो, यह वसूला लो और जोर से मेरी पीठ में भौंक दो।

पण्डितजी बुरी तरह हड़बड़ा गये थे। उन्होंने सोचा—इस समय इसका कहना मान लेने में ही भला है! शायद ऐसा करने से ही जान बच जाय। पण्डितजी ने वसूला लिया और नाहर के कथानुसार पीठ में भौंक दिया। तब नाहर बोला—देखो पण्डित! इस जख्म को तो मैं जीभ से चाट कर मिटा लूंगा, लेकिन तेरे वचन का घाव नहीं मिटने का। अब कभी मेरे पास मत आना।' पण्डित रोने लगा और घर जा पहुँचा।

पण्डितजी को अत्यन्त उदास देख कर उनकी पत्नी ने कारण पूछा तो वे बोला—आज मेरी आजीविका को लात लग गई। मेरी जबान ने ही मेरी आजीविका को ठोकर लगाई है। दो मोहरें रोज मिलती थीं! अफसोस है कि मैं अपनी जीभ पर काबू नहीं रख सका।

भाइयो! कहने का आशय यह है कि कभी जबान मत बिगाड़ो। जो कुछ भी बोलना हो, सोच-समझ कर ही बोलना समझदार आदमी का कर्त्तव्य है। जिह्वा अनमोल धन है। एकेन्द्रिय अवस्था मे रहते-रहते अनन्त काल बीत जाने पर भी जिह्वा की प्राप्ति नहीं होती। प्रबल पुण्य का उदय होने पर भी द्वीन्द्रिय अवस्था प्राप्त होती है और तभी जीभ मिलती है। जीभ मिल जाने पर भी मानवोचित व्यक्त भाषा बोलने की शक्ति प्राप्त हो जाना और भी कठिन है। इसके लिए भी बड़े पुण्य के उदय की आवश्यकता है। इस तरह जो जिह्वा तीव्रतर पुण्य के उदय से मिली

है उसे पापबन्ध का कारण मत बनाओ। उससे जहर उत्पन्न मत करो। जिस जिह्वा से अमृत बहाया जा सकता है, उससे विष मत उगलो। इससे तुम्हें भी और सुनने वाले को भी बहुत हानि उठानी पड़ेगी।

द्रौपदी ने कटुक वचनों का प्रयोग किया, मगर उसका परिणाम क्या हुआ ? परिणाम यह हुआ कि उसे भरी सभा में नग्न होने का प्रसंग उपस्थित हुआ। अतएव मन से, वचन से और शरीर से किसी को पीड़ा मत पहुँचाओ। निश्चित रूप से समझ लो कि दूसरों को पीड़ा पहुँचाना अपने लिए दुःखों का बीज बोना है और दूसरों का दुःख मिटाना अपना दुःख मिटाना है। श्रीमद् आचारांग सूत्र में फरमाया है कि छहकाय का आरम्भ-समारम्भ करने वाला प्राणी अपने आपको दुखी बना रहा है ! अतएव जब कभी किसी प्राणी को कष्ट देने का विचार उत्पन्न हो तो समझना चाहिए कि मेरे पाप-कर्म का उदय हुआ है। ऐसा समझकर उस पाप-भावना को शुभ संकल्प के द्वारा हटा देना चाहिए।

भाइयो ! दूसरों पर दया करना अपने ही ऊपर दया करना है। अगर अपना कल्याण चाहते हो तो दूसरों का कल्याण करो। अपने ऊपर दया करो। अपनी आत्मा को नरकगति और निगोद आदि दुःख पूर्ण अवस्था में न जाने देना तथा सुखमय स्थिति की ओर ले जाना ही अपनी दया करना है। मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, वीतरागप्ररूपित दया धर्म आदि उत्तम सामग्री पाकर भी अगर आप अपनी आत्मा का इतना सुधार न कर सकेंगे तो फिर कब सुधार करेंगे ? हे भव्य पुरुषो ! इससे

उत्तम अवसर मिलना बहुत कठिन है। इसलिए इस अवसर को मत गँवाओ। जो दूसरों की दया करके अपनी दया करता है वही सच्चा दयालु है, वही ससार-सागर से तिरेगा। उसी का कल्याण होगा। अतएव मैं वार बार आग्रह के साथ कहता हूं कि पापों से बचकर अपनी दया जरूर करो।

जम्बूकुमार की कथा—

जम्बूकुमार अपनी दया पालने के लिए उद्यत हुए हैं। उन्होंने अपनी आत्मा को सुखमय स्थिति में पहुँचाने का शुभ संकल्प कर लिया है। उनकी दूसरी पत्नी ने बन्दर के लालच का उदाहरण पेश करके कहा कि—अपनी मौजूदा स्थिति में जो सन्तोष नहीं मानता और भविष्य में अधिक सुख पाने के लोभ में पड़कर विद्यमान सुखों को ठुकरा देता है, उसे उस बन्दर के समान पछताना पड़ता है। हे नाथ! आपको संसार में सभी सुख प्राप्त हैं। किसी वस्तु की कमी नहीं है। फिर आप क्यों व्यर्थ कूदफाद कर रहे हैं? अपनी स्थिति में सन्तोष मानने से ही सुख की प्राप्ति होती है।

जम्बूकुमार ने पद्मश्री से कहा—प्रिये मैं तुम्हारी बात सुन चुका हूँ। अब मेरी भी सुनो। बन्दर और बन्दरी का जो दृष्टान्त तुमने उपस्थित किया है, वह मनोरन्जक तो है, मगर मुझ पर घटित नहीं होता। देखो, संसार में दो वस्तुएँ घोर हानिकर होती हैं-एक धन और दूसरी विषयवासना। बन्दर को रोना पड़ा तो विषय वासना के कारण रोना पड़ा। मैं विषय वासना की जड़ काटने के लिए कनक और कामिनियों का त्याग कर रहा

हूं। ऐसी स्थिति में मुझे बन्दर की तरह क्यों रोना पड़ेगा ? एक दृष्टान्त मेरा भी सुन लो:—

किसी गांव में एक किसान रहता था। वह लकड़ियां लाने के लिए जगल में गया। उस जंगल में दूर तक पानी का पता नहीं था और गर्मी सख्त पड़ रही थी। अतएव किसान ने अपने साथ पानी की एक मटकी ले ली। जंगल में पहुँच कर किसान ने एक वृक्ष के नीचे मटकी रख दी और आप लकड़ियां काटने में जुट गया। इधर कुछ जानवर कूदते-फांदते आये। उन्होंने मटकी को लात मारी तो वह फूट गई। पानी ज़मीन पर गिर गया। किसान ने लकड़ियां काटकर भारा बांधा। तब तक उसे बड़े जोर की प्यास लग आई थी। वह मटकी के पास आया ! मगर मटकी फूटी देखकर उसके विषाद का ठिकाना न रहा। वह बहुत घबराया। उसने सोचा—अब प्यास का मारा मैं मर ही जाऊंगा !

आखिर किसान ने हिम्मत करके लकड़ियों का भारा वहीं छोड़कर गांव की तरफ भागना शुरु किया। भागते-भागते, जब गाव डेढ़ मील दूर रह गया था, उसका जी घबराया। बेहोश हो गया और धड़ाम से गिर पड़ा। कुछ देर तक पड़े रहने के बाद संयोगवश ठंडी हवा चलने से उसे होश आया। वह उठ खड़ा हुआ और फिर चल पड़ा। रास्ते में गदे पानी का एक नाला; जो गांव की तरफ से बहा चला आ रहा था, उसे दिखाई दिया। वह उस नाले में से निकलते समय उसी में फँस गया। वह घास को भिगोकर जीभ पर रखता है। पर ऐसा करने से क्या उसकी प्यास बुझ सकती है ? कभी नहीं इसी प्रकार यह आत्मा जन्म

जरा मरण आदि की अनन्त व्याधियों से पीडित हैं। संसार के सैकड़ों तरह के दुःख इसे सताते हैं। भोगोपभोग भोगने की अक्षय तृष्णा से यह पीडित है। क्या संसार के सुखों से इसे तृप्ति हो सकती है ? कदापि नहीं। यह जीव अनन्त-अनन्त वार स्वर्ग के सुख भोग चुका है। फिर भी इसे लेशमात्र भी तृप्ति नहीं हुई तो भविष्य में कैसे तृप्ति हो सकेगी ?

जम्बूकुमार कहते हैं—याद रखो पद्मश्री ! यह मनुष्य जीवन बहुत ही कीमती है। वार-वार मिलने वाला नहीं है। पहले के जन्म में जो सुकृत किया था, उसके फलस्वरूप यह जन्म मिला है। इस जन्म को पाकर कुछ और आगे बढ़ना चाहिए। कर्मों के भार को हल्का करके आत्मा के स्वरूप को प्रकाशमान बनना चाहिए। जिसने इस वात पर ध्यान नहीं दिया और आमोद-प्रमोद में, विषयविलास में सारा जीवन व्यतीत कर दिया, उसे भविष्य में अत्यन्त पश्चाताप करना पड़ेगा। विवेकवान् का कर्तव्य है कि वह पश्चाताप का अवसर ही न आने दे और पहले ही सजग तथा सावधान होकर आत्महित में लग जाय।

प्रिये ! तुम किस विचार में डूबी हो ? संसार के यह सुख कितनी देर के हैं ? संध्या खिलती है तो बड़ी सुहावनी मालूम होती है। पर वह कितनी सी देर ठहरती है ? आखिर अन्धकार ही अन्धकार चारों ओर फैल जाता है। इसी प्रकार संसार में भोग-विलास सुहावने प्रतीत होते हैं मगर इसके पीछे अन्धकार ही अन्धकार है—चौरासी का चक्कर है, जिसमें घूमते रहो, घूमते रहो, पर कभी अन्त नहीं आ सकता।

संसार के सुखों में क्या सार है ? प्रथम तो वह पुद्गल के आश्रित हैं, पराधीन हैं। फिर क्षणिक हैं, सदा काल ठहर नहीं सकते। और फिर आत्मा को अधोगति में ले जाने वाले हैं। जब ये नष्ट होने वाले होते हैं तो लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं रहते। अरे, जीवन ही नहीं स्थिर रहता तो संसार के सुख स्थिर कैसे रहेंगे ? जैसे हाथी के कान चञ्चल ही बने रहते हैं, उसी प्रकार संसार के भोगोपभोग भी अस्थिर ही बने रहते हैं। अभी हैं और अभी नहीं हैं। इनका क्या ठिकाना है ? संसार में बड़ी विषम घटनाएँ घटती रहती है। किसी ने ठीक ही तो कहा है:—

सुबह जो तख़्त शाही पर बड़े सजधज बैठे थे।
दुपहरे वक्त में उनका हुआ है वास जंगल का।
मुसाफिर ! क्यों पड़ा सोता भरोसा है न इक पल का।
दमादम बज रहा डङ्का, तमाशा है चलाचल का ॥

भाइयो ! संसार की स्थिति ऐसी है। इधर नई शादी हुई और उधर ऐसा उलटा पासा चला कि पत्नी का घाघरा भी नीलाम हो गया ! इस प्रकार संसार में उलट पुलट की साहबी है। वास्तव में देखा जाय तो संसार दुःखमय है। यहां पहाड़ के बराबर दुःख है और राई के बराबर सुख है और सुख भी वास्तविक नहीं, कल्पित है, सुखाभास है, आत्मा के असली सुख गुण का विकार मात्र है। कहा भी है—

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतम्,
तस्यार्धस्य परस्य जार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः।

शेषं व्याधियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारितरङ्गबुद्बुदसमे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥

मान लीजिए मनुष्य की आयु सौ वर्ष की है। इस आयु का आधा भाग पचास वर्ष रात्रि में व्यतीत हो जाता है। शेष रहे आधे भाग का भी आधा भाग अर्थात् पच्चीस वर्ष बालकपन और बुढ़ापे में बीतता है। रह गया पच्चीस वर्ष का काल, सो वह रोग शोक आदि अनेक दुःखों के साथ नौकरी, व्यवहार-धंधा आदि करते-करते समाप्त हो जाता है। इस प्रकार जल की तरंग या फेन के सदृश इस जीवन में प्राणियों को सुख कहां है? जीवन में कहीं भी तो सुख दिखाई नहीं देता!

एक राजा था। उसके महल के सामने तमाशा करने के लिए एक तमाशा करने वाला आया। राजा ने अपने सेवकों को आज्ञा दी—महल के चौथे खण्ड में हमारे बैठने की व्यवस्था करो। सेवकों ने शानदार बैठक वहां जमा दी। खेल शुरु हो गया, मगर राजा साहब बैठक को सुशोभित करने नहीं आये। तब उनके सेवक के एक दोस्त ने कहा—भाई! थोड़ी-सी देर मुझे भी यहां मौज कर लेने दो। राजाजी की बैठक पर बैठने का मज़ा चखने दो।

सेवक बोला—भाई, थोड़ी देर के सुख में क्या पड़ा है? बैठ भी लोगे तो क्या राजा बन जाओगे?

दोस्त ने कहा—अगर मुझसे सच्ची दोस्ती रखते हो तो बैठ लेने दो।

सेवक ने उसे सावधान करते हुए कहा—तुम्हें बैठना ही है तो मैं मनाई नहीं करता। मगर यदि कोई अनिष्ट परिणाम निकला तो मैं उत्तरदायी नहीं हूं। आगे पीछे की सोच लो।

दोस्त उतावला हो गया था। उसने सोचा-थोड़ी देर बैठकर उठ जाऊँगा। इतने में ही क्या मुसीबत आई जाती है! यह सोचकर वह राजा की गद्दी पर बैठ गया। वह गद्दी पर बैठा ही था कि उसी समय राजा आ गया। नजर पड़ते ही राजाने तेज स्वर में कहा—यह कौन बदमाश है? और फिर राजा ने अपने सेवक की तरफ दृष्टि घुमाकर पूछा-इसे क्यों मेरे आसन पर बैठने दिया?

सेवक हड़बड़ा गया। उसने कहा—अन्नदाता! यह जबर्दस्ती बैठ गया है।

राजा को बड़ा क्रोध आया। उसने आज्ञा दी—इस अभागे की यह ढिठाई! अच्छा, इसे चौथे मंजिल से नीचे पटक दो! राज गद्दी पर बैठने का मजा चखा दो।

राजा की आज्ञा से उसे नीचे पटक दिया गया। उसका सिर फूट गया, हड्डियां चकनाचूर हो गईं! आखिर उसे अस्पताल भेज दिया गया।

अस्पताल में उसका मित्र मिलने पहुंचा। उसने कहा—मित्र! तुमने पांच मिनिट के कल्पित सुख के लोभ में पड़कर कितना कष्ट उठाया है! अगर शरीर ठीक न हुआ तो उस सुख के पीछे जिंदगी से ही हाथ धोना पड़ेगा! अब वह दोस्त भी पश्चात्ताप कर रहा था। मगर पश्चात्ताप किसी दुःख दर्द की दवा

नहीं है। उससे कोई लाभ नहीं होता। मनुष्य को चाहिए कि कोई भी काम करने से पहले वह उसके परिणाम का भली भांति विचार कर ले। जो परिणाम का विचार नहीं करते उन्हें दुःख उठाना ही पड़ता है।

भाइयो ! आप उस आदमी को तो शिक्षा देने के लिए तैयार हो जाएँगे, मगर कभी अपनी हालत पर भी विचार करते हो ? आप इस क्षणिक सुख के लोभी के ही समान वर्ताव तो नहीं कर रहे हो ? आपका जीवन कितना लम्बा है ? नरक की आयु की तुलना में मनुष्य की आयु की क्या गिनती है ? कहां सागरोपमों की आयु और कहां थोड़े-से वर्षों की आयु ! और फिर उन वर्षों का भी क्या ठिकाना है ? जहां अकाल-मृत्यु भी हो जाती है, वहां आयु का निश्चय ही किस प्रकार किया जा सकता है ? प्रत्यक्ष ही देखा जाता है कि कोई-कोई बालक गर्भ में ही मर जाता है कोई दो-चार-छह महीने मे देह को त्याग देता है, कोई कुमार अवस्था में, कोई युवावस्था में और कोई प्रौढ़ अवस्था में प्राण त्याग कर कूच कर जाता है ऐसी स्थिति में मनुष्य की आयु का कोई ठिकाना नहीं है। इस थोड़ी सी आयु वाले जीवन को सुखी बनाने के लिए जो लोग नरक-गति की परवाह नहीं करते, अन्याय-अत्याचार और पाप करके अपने आपको जो नरकगति का पात्र बनाते हैं, वे क्या उसी मनुष्य की कोटि में नहीं हैं ? अतएव अभी जो दृष्टान्त दिया गया है उसे दूसरों पर ही मत घटाओ। इससे तुम्हारी भलाई नहीं होगी। अपना कल्याण चाहते हो अपने जीवन का निरीक्षण करो, अपने समस्त व्यवहारों को सूक्ष्म दृष्टि से देखो, अपने आचरण की आलोचना करो। जीवन व्यवहार में आपको जो त्रुटियां दिखलाई पड़े, जहां

कहीं प्रमाद या स्खलना प्रतीत हो, उसे दूर करो। भूतकाल की भूलों के लिए पश्चात्ताप करो और भविष्य के लिये सुदृढ़ संकल्प करो। लम्बी दृष्टि से विचार करो। बार-बार कहा जा चुका है कि आत्मा अजर-अमर है। उसे इसी जीवन के अन्त में समाप्त नहीं हो जाना है। वह अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहने वाला है। अतएव अनन्त काल के हित की दृष्टि से ही विचार करो।

भव्य जीवों! अपना बड़ा सौभाग्य समझो कि तुम्हें अपनी आत्मा का वास्तविक स्वरूप समझने का स्वर्ण-अवसर मिला है! इस अवसर को पाकर चाहो तो अपने अनन्त भविष्य को मंगलमय बना सकते हो! और अगर उपेक्षा करोगे, लापरवाही करोगे, तुच्छ और क्षणिक सुख के मोह में पड़ जाओगे तो अपने भविष्य को अमंगलरूप बना डालोगे भगवान् महावीर स्वामी ने, गौतम स्वामी से कहा था—

अभितुर पारं गमित्तए, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ!

—श्रीउत्तराध्ययन,

भगवान् फरमाते हैं—हे गौतम! इस अपार संसार रूपी सागर को तैरते-तैरते पार के समीप आ गये हो। संसार-सागर का बहुत-सा भाग तुम पार कर चुके हो। किनारा सामने दिखलाई दे रहा है। फिर इतने समीप पहुँच कर क्यों रुक रहे हो? जल्दी करो और किनारे पर पहुँच जाओ।

भगवान् ने गौतम स्वामी से जो कहा है, वह गौतम स्वामी के लिए ही आप समझ लेंगे और मान लेंगे कि उससे हमारा

कोई सरोकार नहीं है तो भयंकर भूल होगी। वास्तव में वह कथन तो आपके लिए ही है। भगवान् जानते थे कि मुझे निर्वाण प्राप्त होते ही गौतम को केवलज्ञान हो जायगा और केवलज्ञान प्राप्त होने पर निर्वाण प्राप्त हुए बिना नहीं रहेगा। ऐसी स्थिति में भगवान् ने शीघ्रता करने के लिए जो प्रेरणा की है, वह आपके और हमारे लिए ही है। ऐसा समझने में ही हमारा कल्याण है।

तात्पर्य यह है कि इस छोटे-से जीवन में क्षणिक और निस्सार किंचित् सुख पाने के लोभ में पड़कर स्थायी सुख के मार्ग से विमुख होना उचित नहीं है। श्री जम्बूकुमार अपनी पत्नी से कहते हैं—पद्मश्री! मैंने भगवान् सुधर्मा स्वामी का उपदेश सुना है। वह इस तरह नहीं सुना कि एक कान से सुना और दूसरे कान से बाहर निकाल दिया। वह उपदेश मेरी रग-रग में व्याप्त हो गया है। गुरुदेव ने कहा है कि भोग-विलास की इच्छा करना नरक में जाने की इच्छा करना है।

भाइयो! आप भी जो उपदेश सुन रहे हो, उसे अन्तःकरण में स्थान दो। उसे दूसरे कान से बाहर मत निकाल दो। कहा है—

> सूरा चढ संग्राम में, फिर पीछा मत जोय।
> उतर पड़े मैदान में, होना हो सो होय॥

शूरवीर कठिनाइयों के डर से पीछे पैर नहीं रखता है। यह तिरने का जो शुभ अवसर हाथ आ गया है, इसे वृथा मत जाने दो। जम्बूकुमार कहते हैं—श्रमण भगवान् महावीर के पाटधर सुधर्मास्वामी बाग में विराजमान हैं। उन्होंने मुझे अमृत

का पान कराया है । मैं अब मोह के दलदल में फँसना नहीं चाहता ।

जम्बूकुमार के सुदृढ़ संकल्प को सुनकर पद्मश्री अपने स्थान पर बैठ गई ।

भाइयो ! देखो, जम्बूकुमार ९९ करोड़ सोनैया और आठ इन्द्राणी सरीखी स्त्रियां त्यागकर साधु बन रहे हैं । उन्होंने अभी-अभी यौवन में प्रवेश किया है । जरा आप अपनी स्थिति की तुलना इनके साथ करके देखो । खेद है कि प्राचीन काल की वह भावना आज विलीन होती जाती है । वृद्धावस्था आने पर भी लोग सांसारिक ममता का त्याग नहीं कर सकते और यदि कोई भाग्यशाली त्याग करता है तो उलटा उसका अवर्णवाद करते हैं ! कोई-कोई कहते हैं—जिन्हें खाने को नही मिलता, वे लोग साधु हो जाते हैं । ऐसा कहने वाले ऐरे-गैरे पचकल्याणी लोगों की बात कोई महत्त्व नहीं है । उन्हें नहीं मालूम है कि आज इस गये-बीते जमाने में भी आत्मकल्याण के अभिलाषी भव्य पुरुष हजारों की सम्पत्ति त्यागकर साधु बन रहे हैं । इसी प्रकार साध्वियों में भी प्रतिष्ठित और धनाढ्य घरानों की नारियां मौजूद हैं । बांटी (पीसी) हुई दवा और मुंडे हुए साधु की असलियत का पता नहीं चलता ।

वे किसलिए साधु बने हैं । उन्हें संसार झूठा मालूम हुआ । आत्मा के शाश्वत कल्याण की कामना उन के अन्तःकरण मे जागृत हुई, २५०० वर्ष पहले भगवान् ने इस आर्यावर्त्त में संयम का जो शंखनाद किया था, वह उनके कानों में पड़ा । भोगों

और विलासों की तरफ से उनका मन फिर गया इसीलिए वे संयम के कठोर मार्ग पर चलने के लिए उद्यत हुए हैं। सयम पालने में जितने कष्ट उठाने पड़ते हैं, उनसे आधे कष्ट उठाकर तो कोई भी अपना पेट भर सकता है। फिर सिर्फ पेट भरने के लिए कोई साधु क्यों बनेगा ? अगर साधुओं को पेटू समझने वाले साधुता की साधना को सरल समझते हैं उसमें कष्ट नहीं मानते तो वे स्वयं यह मार्ग क्यों नहीं अपना लेते ? जब अपने ऊपर आकर पड़ती है तो संयमपालन से कोसों दूर भागते हैं और जब दूसरों की आलोचना करनी होती है तो साधुता को बच्चों का खेल समझने लगते हैं।

एक राजा किसी मुनिराज के पास गया। उसने पूछा महाराज ! आपके पास क्या है ? मुनिराज ने कहा-मेरे पास दो वस्तुएँ हैं—पाप और पुण्य। राजा ने पूछा—आप संयम पालकर कहां जाएँगे ? मुनिराज विशिष्ट महात्मा थे। वे अपने भविष्य को जानते थे। अतएव उन्होंने उत्तर दिया—मैं मोक्ष प्राप्त करूँगा। तब राजा ने प्रश्न किया-फिर पाप और पुण्य को कहां छोड़ जाएँगे ? या साथ ले जाएँगे ? मुनिराज ने उत्तर दिया-पाप और पुण्य मोक्ष में साथ नहीं जा सकते। देखो, जो साधुओं की बुराई करेगा उसे पाप दे जाएँगे और जो साधुओं की प्रशंसा-स्तुति करेगा उसे पुण्य दे जाएँगे।



कर्मकटक



स्तुतिः—

चल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद् दिवाकरमयूखशिखापविद्धं,
त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि – हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान् , पुरुपोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! आपके कहां तक गुण गाये जाएँ ?

घोड़े हिनहिना रहे हैं। हाथी चिंघाड़ रहे हैं। भयानक शोर मचा हुआ है। अनेक शक्तिशाली राजाओं ने मिल कर

---

* निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह का पहला व्याख्यान।

किसी पर आक्रमण कर दिया है। ऐसी स्थिति में, जिस पर आक्रमण किया गया है. वह सच्चे अन्तःकरण से, निर्भय भाव से अगर भगवान् ऋषभदेवजी का कीर्तन स्तवन करता है, तो राजाओं की हमला करने वाली वह फौजें उसी प्रकार अनायास ही भाग खड़ी होती हैं, जिस प्रकार उदीयमान सूर्य की किरणों से अन्धकार दूर भाग जाता है। भगवान् ऋषभदेवजी के नाम की ऐसी महिमा है। उन भगवान् को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो ! आप संसार के स्वरूप पर दृष्टि डालें तो उसकी विशालता देखकर चकित रह जाएँगे। आपको समझना कठिन नहीं होगा कि यह संसार कितना विशाल है ! भला जिस संसार की कभी आदि नहीं है और अन्त भी नहीं है, जो अनादिकाल से चला आ रहा है और अनन्तकाल तक विद्यमान रहने वाला है, जिसमें अनन्तानन्त जीव अनन्तान्त पर्याय धारण करके परिभ्रमण कर रहे है, जहां असंख्य जड़ पदार्थ मौजूद हैं और उनमें कोई स्थूल हैं, कोई सूक्ष्म हैं, कोई दृश्य हैं, कोई अदृश्य हैं, कोई मूर्तिक हैं कोई अमूर्तिक हैं; उस संसार की समग्रता को आप या कोई भी दूसरा छद्मस्थ किस प्रकार समझ सकता है ? इस प्रकार जब बिखरे हुए संसार पर दृष्टि डाली जाती है तो उसका कहीं अन्त नजर नहीं आता।

फिर भी अगर हम स्थूल वर्गीकरण की पद्धति पर चलें तो हमें ज्ञान हो जायगा कि विश्व के अनन्तानन्त पदार्थों के मूल में सिर्फ दो ही वस्तुएँ हैं और वह हैं—जीव तथा अजीव। यह असीम और अनन्त विश्व इन्हीं दो वस्तुओं का विस्तार है। किसी भी वस्तु को ले लीजिए, वह अपने आप में या तो जड़

होगी या चेतन होगी। इस प्रकार समस्त जीवराशि जीवतत्त्व में समाविष्ट है और जितने भी निर्जीव पदार्थ हैं, उन सब का समावेश अजीवतत्त्व में हो जाता है। इस तरह जैनदर्शन दो वस्तुओं की मौलिक सत्ता को स्वीकार करता है।

प्राचीन काल में, भारतवर्ष में या अन्यत्र जितने भी दार्शनिक हुए हैं, उन्होंने मूलभूत तत्त्वों पर विचार किया है। बल्कि यह कहना अधिक संगत होगा कि समस्त दार्शनिकों के विचार का मुख्य केन्द्र यही विश्व रहा है। प्रत्येक के सामने यह जटिल प्रश्न उपस्थित होता है कि आखिरकार यह विश्व, जिसे दुनिया या संसार कहते हैं, क्या चीज है? इस प्रश्न का उत्तर अलग-अलग दार्शनिकों ने अलग-अलग दिया है। किसी के विचार से समग्र विश्व एक ही तत्त्व का विस्तार है, किसी के विचार से दो तत्त्वों का परिणमन है और किसी-किसी के विचार से इसमें दो से भी अधिक तत्त्व हैं।

जिन्होंने एक ही तत्त्व माना है, उनमें भी गहरा मतभेद है। वेदान्तदर्शन भी संसार के मूल में एक ही तत्त्व स्वीकार करता है और चार्वाकदर्शन भी एक ही तत्त्व से विश्व का नाना रूपों में परिणमन होना मानता है। मगर इन दोनों की मान्यता भी परस्पर विरोधी है। एक कहता है—इस विश्व में एकमात्र चेतन की ही सत्ता है और समस्त वस्तुएँ उसी का रूपान्तर हैं। उस चेतन को चाहे विद्या कहो चाहे ज्ञान कहो, चाहे आत्मा कहो, चाहे ब्रह्म कह लो। उसका नाम भले ही कुछ भी रक्खो, मगर वही एक मात्र असली वस्तु है और यह सब अलग अलग मालूम होने वाली चीजें उसी की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ हैं। दूसरे चार्वाक-

दर्शन का कहना है कि विश्व में है तो सिर्फ एक ही असली चीज और उसी का यह सब लम्बा-चौड़ा फैलाव है, मगर वह चेतन नहीं, जड़ है। जड़ के सिवाय इस संसार में और कोई वस्तु नहीं है। जड़ के संयोग विशेष से ही चेतना प्रकट हो जाती है और अन्त में वह जड़ में ही मिल जाती है।

सकल संसार के मूल में एक ही वस्तु मानने वालों की मान्यता पर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। प्रबल और समर्थ युक्तियों से उनकी मान्यताओं का खंडन किया गया है। मगर उस गम्भीर विचार को आप सब समझ नहीं सकेंगे। यह विचार कुछ रूखा भी है। अतएव इस पर अधिक विचार न करते हुए सिर्फ इतना कह देना ही उचित प्रतीत होता है कि अधिकांश दार्शनिक विद्वान् इन मान्यताओं से सहमत नहीं हैं।

इनका कहना है कि जड़ और चेतन में बहुत भेद है। अतएव दोनों को एक ही श्रेणी में नहीं रक्खा जा सकता। अगर एक मात्र चेतन पदार्थ की सत्ता मानी जाय तो चेतन से जड़ की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है ? अगर चेतन से जड़ की उत्पत्ति मानी जाय तो जड़ में चेतन के गुण आने चाहिए। मगर यह बात दिखाई नहीं देती। चेतन मे ज्ञान गुण है, सुख—दुःख का सवेदन करने की शक्ति है और भी कई ऐसे गुण हैं जो जड़ पदार्थों में नहीं पाये जाते। इसी प्रकार जड़ मे भी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो चेतन में नहीं देखी जातीं। रूप, रस गंध स्पर्श आदि गुण जड़ वस्तुओं में ही होते हैं, चेतन में नहीं होते। अगर चेतन से ही जड़ पदार्थों की उत्पत्ति हुई होती तो जड़ पदार्थों में यह अतिरिक्त गुण कहां से आ जाते ?

सारांश यह है कि चेतन से अगर जड़ की उत्पत्ति मानी जाय तो जड़ में चेतन के सभी गुण आने चाहिए और जो गुण चेतन में नहीं हैं वे जड़ में भी नहीं होने चाहिए। मगर इन दोनों बातों में से एक भी बात नहीं देखी जाती। इस कारण चेतन से जड़ की उत्पत्ति मानना तर्कसंगत नहीं है।

जो लोग जड़ से चेतन की उत्पत्ति मानते हैं, उनकी मान्यता भी इन्हीं तर्कों से गलत साबित हो जाती है। अतएव मानना पड़ता है कि न तो चेतन से जड़ की उत्पत्ति होना सम्भव है और न जड़ से चेतन की ही उत्पत्ति हो सकती है। इस प्रकार दोनों की भिन्न-भिन्न स्वतंत्र सत्ता है। जगत् इन्हीं दो पदार्थों का विस्तार है।

चेतन को चाहे आत्मा कहें जीव कहें, पुरुष कहें या ब्रह्म कह लें, यह कोई महत्व की बात नहीं है। किसी भी वस्तु को कुछ भी नाम दिया जा सकता है, सिर्फ उसका अर्थ समझने में भ्रम नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार जड़ को चाहे माया कहें, चाहे प्रकृति कहें, चाहे अजीव कहें यह कोई विवाद की बात नहीं।

जीव अपने गुणों में बलवान् है और अजीव अपने गुणों में बलवान् है। अपना-अपना गुण और स्वभाव सब में मौजूद है। शक्कर में मिठास है, पुष्टि का गुण है और अफीम में कडुवा-पन है तथा नशा उत्पन्न करने का गुण है। मगर अफीम का नशा अफीम में नहीं आता, शक्कर अपने आपको पुष्ट नहीं करती, शराब को पीकर मनुष्य पागल हो जाता है न शराब स्वयं पागल बनती है और न जिस बोतल में शराब भरी है वह बोतल नशे में

कूदती है। मगर जब मनुष्य और शराब का संयोग होता है तब एक तीसरी चीज-पागलपन की लहर पैदा हो जाती है। इसी प्रकार जड़ और चेतन के निमित्त से इस संसार में भांति-भांति के परिवर्त्तन होते हैं।

जड़ पदार्थ कई प्रकार के हैं। पुद्गल भी जड़ है, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल भी जड़ हैं। पुद्गल की भी अनेक जातियां हैं। उनमें से एक कार्मण जाति के पुद्गल जिन्हें कर्म भी कहते हैं, अपने असर से आत्मा को अत्यन्त प्रभावित करते हैं। इन कर्मों के प्रभाव से आत्मा अनेक प्रकार की विकृतियों का पात्र बना हुआ है और अपने असली शुद्ध स्वरूप को नहीं पा रहा है। विशिष्ट साधना के द्वारा जब आत्मा कर्मों के संयोग से अलग हो जाता है तब वह अपने असली रूप में आ जाता है। तभी आत्मा परमात्मा बन जाता है।

निर्ग्रन्थ-प्रवचन के पहले अध्याय मे छह द्रव्यों का वर्णन किया गया है। जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं। उसमे यह भी दिखला दिया गया है कि जैसे हीरा मिट्टी मे दबा होने के कारण प्रकाशित नहीं हो रहा है इसी प्रकार आत्मा स्वभावतः प्रकाशमय होने पर भी कर्मों के कारण प्रकाशमान नहीं हो पाता है। जैसे धूल उड़ कर जब शरीर पर चिपक जाती है तब वह मल कहलाता है। लेकिन शरीर और धूल एक चीज नहीं है। शरीर से अलग होजाने पर शरीर शरीर है और धूल धूल है। दोनों का सयोग हो जाता है, फिर भी दोनों की मूल सत्ता अलग-अलग ही है।

जैसे चोर के पास चोर आ जाते हैं, साहूकार के पास साहूकार आते हैं और गंजेड़ी के पास गंजेड़ी आ पहुँचते हैं, उसी प्रकार कर्मयुक्त आत्मा को कर्म भी लगते रहते हैं।

कर्म सामान्य रूप से एक है, मगर उसके आठ भेद हैं। निर्ग्रन्थ प्रवचन के दूसरे अध्याय में इन आठ कर्मों का विवेचन दिया गया है। भगवान् महावीर स्वामी, गौतम स्वामी से या संसार से कहते हैं कि कर्म के आठ भेद हैं और उन्हें मैं अनुक्रम से बतलाता हूँ। संसार के समस्त जीव कर्म बंधन में बँधे हुए हैं। इसी कारण इन्हें चार गतियों और चौरासी लाख जीव योनियों में परिभ्रमण करना पड़ता है। आत्मा में जो आठ गुण हैं, उन्हें एक-एक कर्म ने दबा रक्खा है, अथवा यों कहना चाहिये कि अलग-अलग गुणों को दबाने वाले कर्मों का नाम अलग अलग रख दिया गया है।

आत्मा में ज्ञानगुण स्वाभाविक है और उसे ज्ञानावरण कर्म दबाये हुए हैं। इस ज्ञानावरण कर्म के उदय से आत्मा को यह भी पता नहीं चलता कि मैं पहले क्या था और इस जीवन के बाद मेरी क्या स्थिति होगी ?

आत्मा में दूसरा गुण सभी कुछ देखने का है, लेकिन दर्शनावरणीय कर्म का पर्दा पड़ जाने से उसे सभी कुछ दिखलाई नहीं पड़ता।

आत्मा का तीसरा गुण आनन्द है। मगर वेदनीय कर्म इस गुण के सामने खड़ा हो जाता है। इसके कारण आत्मा को अनन्त सुख की प्राप्ति नहीं हो पाती।

चौथा मोह कर्म है। इसने आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्र गुण को बुरी तरह दबा रक्खा है। यह आत्मा को इतना निर्बल बना देता है कि आत्मा को अपने स्वरूप का भान ही नहीं रहता। जैसे शराब पी लेने पर आदमी बेभान हो जाता है, इसी प्रकार मोह रूपी मदिरा पी लेने वाला जीव भी बेभान हो रहा है।

पांचवां आयुकर्म, छठा नामकर्म, सातवां गोत्रकर्म, और आठवां अन्तरायकर्म है। यह सब कर्म भी आत्मा के विभिन्न गुणों को ढंकते हैं और असली स्वरूप मे आने से रोकते हैं।

आत्मा का ज्ञानगुण पांच प्रकार का है। अथवा यों कह सकते हैं कि ज्ञानगुण की पांच पर्यायें हैं—(१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मनः पर्यायज्ञान और (५) केवलज्ञान। इन पांचों ज्ञानों को आच्छादित करने के कारण ज्ञानवरणीय कर्म भी पांच प्रकार का है। मति के ऊपर पर्दा पड़ने से जीव में पूरी तरह समझने-बूझने की शक्ति नहीं रह गई है। श्रुति पर पर्दा पड़ जाने से श्रुत को समझने की शक्ति कम हो गई है। अवधिज्ञान से जीव एक जगह बैठा-बैठा ही सारे संसार के रूपी पदार्थों को बिना इन्द्रियों की सहायता के जान सकता था, मगर अवधि ज्ञानावरण का पर्दा पड़ जाने से यह शक्ति भी नहीं रह गई है। मनः पर्ययज्ञान से दूसरे के मन की बात जानी जा सकती थी, मगर इसके ऊपर मनःपर्ययज्ञानावरण का पर्दा आ पड़ने से अपनी पत्नी के मन की बात भी नहीं जान सकता। केवलज्ञान के द्वारा आत्मा तीन काल और तीन लोक की समस्त वस्तुओं को जान सकता है, किन्तु केवल ज्ञानावरण का पर्दा

आड़ा आजाने से जीव में यह शक्ति नहीं प्रकट होने पाती। इस प्रकार ज्ञानावरण कर्म के यह पांच भेद बतलाये गये हैं।

दूसरा कर्म दर्शनावरण है। इसके नौ भेद हैं—(१) निद्रादर्शनावरण (२) निद्रानिद्रादर्शनावरण (३) प्रचलादर्शनावरण (४) प्रचलाप्रचलादर्शनावरण (५) स्त्यानगृद्धिदर्शनावरण (६) चक्षुदर्शनावरण (७) अचक्षुदर्शनावरण (८) अवधिदर्शननावरण और (९) केवलदर्शनावरण।

जो नींद सुख से आ जाय और सुख से टूट जाय-अर्थात् हल्की नींद को निद्रा कहते हैं। कठिनाई से भंग होने वाली नींद निद्रानिद्रा कहलाती है। खड़े-खड़े या बैठे बैठे आ जाने वाली निद्रा प्रचला कहलाती है। चलते-फिरते आ जाने वाली नीद को प्रचलाप्रचला कहने है। ऐसी घोर निद्रा, जिसके भीतर दिन में सोचा हुआ काम कर लिया जाय और फिर भी पता न चले, वह स्त्यानगृद्धिनिद्रा कहलाती है। इस निद्रा के समय मनुष्य में विशिष्ट बल आ जाता है। यह पापी जीवों को ही आती है। कहा भी है —

सुखपडिवोहा निद्दा, निद्दानिद्दा य दुक्खपडिवोहा।
पयला ठिओवविट्ठस्स, पयलापयला य चंकमओ॥
दिणचिंतयत्थकरणी थीणद्धि अद्धचक्कि—अद्धबला।

इन गाथाओं का आशय यही है जो ऊपर कहा जा चुका है। विशेषता यह है कि यहां स्त्यानगृद्धिनिद्रा में वासुदेव का आधा बल आ जाना कहा है। अर्थात् जिस समय यह निद्रा

आती है, उस समय मनुष्य में वासुदेव का आधा बल आ जाता है। यह कथन वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले की अपेक्षा से है।

यह पांचों प्रकार की निद्रा दर्शनावरण कर्म के पूर्वोक्त पांच भेदों से आती है और दर्शनगुण में व्याघात पैदा करती है। आंखों से होने वाले सामान्य ज्ञान को चक्षुदर्शन कहते हैं और आंखों के सिवाय शेष चार इन्द्रियों से होने वाला दर्शन अचक्षुदर्शन कहलाता है। अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य धर्मों के ज्ञान को अवधिदर्शन कहते हैं और तीन काल तथा तीन लोक के समस्त पदार्थों के एक साथ होने वाले सामान्य धर्मों के ज्ञान को केवलदर्शन कहते हैं। इन चारों प्रकार के दर्शन को भी यह दर्शनावरण कर्म रोकता है।

भाइयो! आपको यह संदेह हो सकता है कि यहां स्त्यानगृद्धि निद्रा में दिन में सोचा हुआ कार्य रात्रि में सोते सोते कर डालने की जो बात कही गई है, वह कहां तक सत्य हो सकती है? इस सबंध में पहली बात तो यही है. कि अगर ऐसी निद्रा न आती होती तो शास्त्रकार उसका वर्णन ही क्यों करते? उसका उल्लेख करने में उन्हें क्या लाभ था?

हमारे बड़े महाराज कहा करते थे—एक मकान बन रहा था। उसकी छत पर पाट चढ़ाना था। कई मजदूरों ने मिल कर जोर लगाया मगर पाट नहीं चढ़ सका। उन मजदूरों मे से एक को ऐसी ही नींद आती थी। उसने रात्रि में अकेले हो वह पाट छत पर चढ़ा दिया।

एक साहूकार की पत्नी को भी ऐसी नींद आती थी। वह एक बार रात के समय उठी। उसके गले में मोतियों का हार था।

वह उठ कर सीधी नदी पर गई। उसने हार गले में से उतारा और एक पत्थर के नीचे दबा दिया और स्नान करके घर लौट आई। हार लाना भूल गई। सवेरे वह सोकर उठी तो पूछा गया हार कहां है? मगर वह तो नींद में ही नहाने गई थी, अतएव उसे खयाल ही नहीं था कि हार कब कहां रख दिया है? छह महीने बाद वह फिर गई और हार ले आई। इस प्रकार की घटनाएँ बतलाती है कि स्त्यानगृद्धिनिद्रा भी होती है।

तीसरा वेदनीय कर्म दो प्रकार का है—सातावेदनीय और असातावेदनीय। सुख की अनुभूति जिस कर्म के उदय से होती है वह सातावेदनीय कहलाता है और जिससे दुःख की अनुभूति हो वह असातावेदनीय कर्म कहलाता है। मान लीजिए, तलवार की धार पर शहद लगा हुआ है और कोई आदमी शहद की मिठास के लालच में पड़ कर धार को चाटता है। चाटने पर मिठास का जो आनन्द मालूम होता है वह सातावेदनीय का उदय है और जीभ कट जाने से जो कष्ट होता है वह असाता का उदय है। किसी व्यापारी ने हजारों रुपया कमाये और उसी समय उसे पत्र मिला कि आपको पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है तो यह साता में साता होना है। और इधर व्यापार मे हजारों का घाटा पड़ा और इधर खबर मिली कि पत्नी का देहान्त हो गया है तो यह असाता में असाता होना है।

चौथा मोहनीय कर्म है। इसके संबंध में पहले भी कहा जा चुका है। इस कर्म के मुख्य रूप से दो भेद हैं-दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय कर्म सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में बाधक होता है। जब तक दर्शनमोहनीय का पूरी तरह उदय बना रहता

है तब तक जीव मिथ्यादृष्टि रहता है। इसके तीन भेद हैं—(१) मिथ्यात्व-मोहनीय (२) मिश्र-मोहनीय और (३) सम्यक्त्व-मोहनीय। इनमें मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र-मोहनीय सर्व घातक प्रकृतियां हैं और सम्यक्त्व-मोहनीय देश घातक है। दोनों सर्व-घातक प्रकृतियों का उदय होने पर जीव को सम्यक्त्व प्राप्त ही नहीं होता। सम्यक्त्व प्रकृति के उदय में सम्यक्त्व उत्पन्न तो हो जाता है किन्तु उसमें चल, मल और अगाढ़ नामक तीन दोष लगते रहते हैं। मिथ्यात्व का उदय होने पर जीव पहले गुणस्थान में रहता है और मिथ्यात्व का नाश होने पर सीधा चौथे सम्यग्-दृष्टि गुणस्थान में पहुँचता है।

चौथे गुणस्थान में पहुँच जाने पर भी और हेय-उपादेय का विवेक प्राप्त हो जाने पर भी चारित्र मोहनीय कर्म की प्रबलता के कारण जीव व्रत, यम, नियम, त्याग, प्रत्याख्यान आदि चारित्र का पालन करने में असमर्थ रहता है। चारित्र मोहनीय कर्म के सोलह भेद हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ तथा संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ। इनमें से अनन्तानुबन्धी चौकड़ी सम्यक्त्व मे भी बाधक होती है। दर्शन मोहनीय के साथ इस चौकड़ी का भी जब क्षय,, उपशम या क्षमोपशम होता है तब ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। अतएव चौथे गुणस्थान में यह चौकड़ी नहीं रहती। सिर्फ तीन चौकड़िया वहां मौजूद रहती है। उनमें से अप्रत्याख्यानावरण चौकड़ी देशचारित्र को भी उत्पन्न नहीं होने देती। आत्मिक भाव की प्रबलता होने पर भी जब अप्रत्याख्यानावरण चौकड़ी का भी क्षय, क्षयोपशम या उपशम हो जाता

है तब देश चारित्र को अर्थात् श्रावक के चारित्र की प्राप्ति होती है। इसे पांचवां गुणस्थान कहते हैं। पांचवें गुणस्थान के पश्चात् अगर प्रत्याख्यानावरण कषाय को भी नष्ट कर दिया जाय तो सर्वविरति चारित्र प्राप्त हो जाता है। उस समय मनुष्य साधु अवस्था अंगीकार करके विचरता है।

यहां यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि पांचवां गुण-स्थान तिर्यञ्च को भी प्राप्त हो सकता है। अतएव अगर आपने पांचवें गुणस्थान तक की उन्नति करली तो भी अच्छा तो है, परन्तु उसे मनुष्य जीवन की विशेषता नहीं कह सकते। मनुष्य जीवन की विशेषता तो ऐसे पद को प्राप्त करने में है, जिस पद को तिर्यंच प्राप्त न कर सकते हों! इसीलिए सर्वविरति चारित्र या मुनि अवस्था की विशेष महिमा है। इस अवस्था को मनुष्य के अतिरिक्त और किसी भी गति का जीव नहीं पा सकता। आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से देव और नारक समान हैं। यह दोनों अधिक से अधिक चौथा गुणस्थान पा सकते हैं। तिर्यञ्च एक श्रेणी ऊपर हैं क्योंकि उन्हें पाचवां गुण स्थान भी प्राप्त हो सकता है। इससे आगे की श्रेणियां या गुणस्थान मनुष्य गति में ही प्राप्त हो सकती हैं। इस तरह जिसने चौथा गुणस्थान (अविरत सम्यग्दृष्टि) पा लिया, उसने भी उन्नति तो की है मगर उतनी ही उन्नति की है जितनी देव और नरक के जीव कर सकते हैं! जिसने पांचवां गुणस्थान पा लिया-देश चारित्र को धारण कर लिया उस जीव ने और भी अधिक विकास किया है, मगर उसका विकास उतना ही है जितना तिर्यञ्च पशु कर सकते हैं। परन्तु जिसने सर्व विरति चारित्र अंगीकार करके मुनि अवस्था धारण कर ली है, उसने वह उत्क्रान्ति कर दिखलाई है जो सिर्फ

मनुष्य ही कर सकता है। उसने अपने मनुष्य जीवन की विशिष्टता प्राप्त कर ली है!

हे भव्य जीवों! शास्त्र की यह विवेचना बड़ी महत्वपूर्ण है। इस विवेचना में जो मर्म छिपा हुआ है, उसे समझने का प्रयत्न करो और नारकों तथा तिर्यंचों से आगे बढ़ो। दुनियां के समस्त प्रपचों का त्याग करके पूर्ण त्यागमय जीवन व्यतीत करने पर ही आप मनुष्य जीवन की असाधारण विशेषता प्राप्त कर सकते हैं।

चारित्रमोहनीय के भी दो भेद हैं—कषायचारित्रमोहनीय और नोकषायचारित्रमोहनीय। अभी जो सोलह भेद बतलाये गये हैं वे कषायचारित्रमोहनीय कर्म के हैं। नोकषायचारित्रमोह के नौ भेद हैं—(१) हास्य (२) रति (३) अरति (४) शोक (५) भय (६) जुगुप्सा (७) स्त्रीवेद (८) पुरुष वेद और (९) नपुंसक वेद। जिस कर्म के उदय से हंसी आती है वह हास्यनोकषाय चारित्र मोहनीय कर्म कहलाता है। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए। वेद दो-दो प्रकार का होता है-द्रव्य वेद और भाव वेद। स्त्री पुरुष या नपुंसक के चिह्न विशेष को द्रव्य वेद कहते हैं और रमण की आकांक्षा को भाव वेद कहते हैं। जिस कर्म के उदय से पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा हो वह स्त्री वेद कर्म है। जिस कर्म के उदय से स्त्री के साथ रमण करने की अभिलाषा जागती है वह पुरुष वेद कहलाता है और जिस कर्म का उदय होने पर दोनों के साथ रमण करने की कामना उत्पन्न हो वह नपुंसक वेद कर्म कहलाता है। यह मोहनीय कर्म के अट्ठाईस भेद हैं। दसवें गुण स्थान के अन्तिम समय में इस

कर्म का क्षय या उपशम होता है। जो महाभाग इसका क्षय करते हैं वे सीधे बाहरवें गुण स्थान में प्राप्त होकर सदा के लिए अप्रतिपाती बन जाते हैं, अर्थात् वे फिर कभी नीचे के गुण स्थान में नहीं आते। बाहरवें गुण स्थान में अन्तर्मुहूर्त्त तक रह कर, अन्तिम समय में केवल दर्शन और केवलज्ञान प्राप्त करके सर्वदर्शी और सर्वज्ञ का पद प्राप्त कर लेते हैं और अन्त में चौदहवें गुण स्थान को भी पार करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त परमात्मा बन जाते हैं। इसके विपरीत जो मुनि दसवें गुण स्थान में मोहनीय कर्म का क्षय नहीं—उपशम करते हैं, उन्हें ग्यारहवें गुण स्थान की प्राप्ति होती है और फिर उससे नीचे की ओर प्रतिपात होता है।

पांचवां कर्म आयु है। संसारी जीव को किसी शरीर में रोक रखना आयुकर्म का काम है। आयु कर्म को कारागार की उपमा दी जा सकती है। मनुष्य को जब कारागार में बन्द कर दिया जाता है तो वह बाहर नहीं निकल पाता, इसी प्रकार आयुकर्म के उदय से जो जीव जिस शरीर में कैद है, वह उससे बाहर नहीं निकल सकता। आयु पूरी भोग लेने पर ही उसका छुटकारा हो सकता है।

आयुकर्म चार प्रकार का है—मनुष्यायु, तिर्यंचायु, देवायु और नरकायु। आयुकर्म के यह चार भेद मोटे तौर पर किये गये हैं। मनुष्य की आयु में अनगिनते भेद होते हैं, तिर्यंचों की आयु में भी यही बात है और देवों तथा नारकों की आयु भी अलग-अलग होती है। नरक सात हैं और प्रत्येक नरक में अलग-अलग प्रस्तर (पाथड़े) हैं। उन सब की आयु में न्यूनाधिकता होती है। देव अनेक प्रकार के हैं और उन सब की आयु में भी तरतमता

है। यहां उन सब की आयु का वर्णन नहीं किया जा सकता। जो विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें शास्त्रों और थोकड़ों का अध्ययन करना चाहिये।

देवों और नारकों की अकाल मृत्यु नहीं होती किंतु मनुष्यों और तिर्यंचों की अकालमृत्यु भी होती है। अकालमृत्यु होने का अर्थ यह नहीं है कि जो आयु पहले बांधी हुई है, उसे पूरी भोगे विना मृत्यु हो जाती है। कई लोग ऐसा गलत अर्थ समझते हैं, मगर ऐसी बात नहीं है। अगले भव की आयु पहले के भव में ही बँध चुकती है। उत्तर भव की आयु बँधने से पहले किसी भी संसारी जीव की मृत्यु नहीं होती। यह एक पक्का नियम है। पिछले भव में जिस जीव ने जितनी आयु बांधी है, उतनी अगले भव में अवश्य भोगनी पड़ती है।

अब आप प्रश्न कर सकते हैं कि अगर प्रत्येक जीव को बांधी हुई आयु पूरी भोगनी ही पड़ती है तो फिर अकालमरण किस प्रकार हो सकता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि आयु तो प्रत्येक जीव को पूरी ही भोगनी पड़ती है, किन्तु उसके भोगने के तरीके दो हैं– प्रथम तो सहज रूप से धीरे-धीरे आयुकर्म के दलिकों को भोगना और दूसरे विष, शस्त्र, आग, पानी आदि का प्रबल निमित्त मिलने पर बहुत शीघ्रतापूर्वक आयु के दलिकों को भोगना। जब यह निमित्त मिल जाते हैं तो वर्षों और युगों में भोगने योग्य आयु के दलिक सैकिन्डों में भोग लिये जाते हैं। बस, इसी का नाम अकालमृत्यु है। कल्पना कीजिए, किसी मनुष्य ने सौ वर्ष की आयु का बँध किया था। उसमें से उसने पच्चीस वर्ष की आयु भोगी। अचानक किसी ने उस पर शस्त्र का मर्म वेधी प्रहार कर

दिया। अब उसकी पचहत्तर वर्ष की जो आयु शेष रही थी, सो वह बिना भोगे ही समाप्त नहीं हो गई, किन्तु शस्त्र का आघात लगने के पश्चात् जितनी देर तक वह जीवित रहेगा उतनी ही देर में वह उस पचहत्तर वर्ष में भोगने योग्य आयु को भोग लेगा। इस प्रकार आयु को पूरी भोग लेने पर भी उसकी अकालमृत्यु ही कहलाएगी।

और कर्मों की अपेक्षा आयु कर्म की एक विशेषता यह है कि वह जीवन में सिर्फ एक बार ही बँधता है; जब कि शेष सात कर्म प्रतिक्षण बँधते रहते हैं। जीवन के तीन भागों में से दो भाग व्यतीत हो जाने पर प्रायः आगामी भव की आयु का बँध होता है। कदाचित उस समय बँध न हो तो बाकी बची हुई आयु के तीन भागों में से दो भाग समाप्त होने पर और एक भाग शेष रहने पर बँध होता है। किसी कारण से उस वक्त भी आयु न बँधी तो फिर शेष रही हुई आयु के दो भाग बीतने पर आयु बँधती है। कदाचित फिर भी बँध न हुआ तो मृत्यु के अन्तर्मुहूर्त्त पहले अवश्य ही आयु बँध जाती है। इस प्रकार सात कर्म प्रति क्षण बँधते रहते हैं मगर आयुकर्म जीवन में सिर्फ एक बार ही बँधता है।

छठा कर्म नाम कर्म है। नाम कर्म चित्रकार के समान बतलाया गया है। जैसे चित्रकार नाना प्रकार के चित्र बनाता है, उसी प्रकार नामकर्म तरह-तरह के शरीरों का निर्माण करता है। इसका कार्य बहुत व्यापक है। इसके मुख्य रूप से दो भेद हैं— शुभनामकर्म और अशुभनामकर्म। इन दोनों के भी कई-कई भेद हैं।

भाइयो ! इसके बाद सातवें गोत्र कर्म का जिक्र आता है। गोत्र कर्म भी दो तरह का है—उच्चगोत्र और नीच गोत्र। संसार में प्रतिष्ठित समझे जाने वाले कुल में जन्म मिलना उच्चगोत्र का फल है और अप्रतिष्ठित या निन्दित कुल में जन्म होना नीचगोत्र का फल है। उच्चगोत्र या नीचगोत्र कर्म का बंध आठ कारणों से होता है। जैसे कोई मनुष्य ऊँची जाति में उत्पन्न हुआ है और उस जाति का अभिमान करता है तो वह अगले जन्म में नीची जाति में उत्पन्न होता है। इसी प्रकार कुल का अभिमान करने वाला नीचे कुल में जनमता है। अपने बल का घमंड करने वाला आगामी जन्म में कमजोर होता है। रूप का गर्व करने वाला कुरूप होता है। जो लाभ का घमंड करेगा' 'ओहो मेरी बराबर कमाई और किसकी है ?' इस तरह विचार कर अकड़ेगा, आगे के भव में उसका दिवाला निकलेगा ! जो तप का अहंकार करेगा, उससे तप नहीं हो सकेगा। जो साधु यह कहता है कि तू भ्रष्ट हो जायगा, समझ लो कि वह स्वयं भ्रष्ट हो गया ! इसी तरह जो अपनी विद्या बुद्धि के मद में छका रहता है और सोचता है कि मेरे समान बुद्धिमान् और विद्यावान् और कौन हो सकता है ? वह अगले जीवन में निर्बुद्धि और मूर्ख होगा। उसे केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। जो ठकुराई के नशे में चूर रहता है, सोचता है कि मेरे हाथ में इतनी बड़ी हुकूमत है, मेरे अधीन इतने नौकर चाकर आदि हैं, उसे अगले जमाने में नौकर होना पड़ेगा। भाइयों ! यह सब बातें याद रखने की हैं। जाति, कुल, बल आदि का घमंड करने से कोई लाभ तो होता नहीं है, उलटे अगले जीवन की बर्बादी होती है। अतएव इन सब चीजों का कभी अभिमान मत करना।

आठवां कर्म अन्तराय है। इसके पांच भेद हैं-(१) दानान्तराय (२) लाभान्तराय (३) भोगान्तराय (४ उपभोगान्तराय (५) वीर्यान्तराय। कोई साधु गोचरी के लिये जाता है तो झट पात्र भर कर ले आता है और कोई-कोई कई घरों में जाकर भी खाली पात्र लौटता है। इसका कारण क्या है? जिसने दानान्तराय कर्म का बंध किया है, उसे खाली लौटना पड़ता है। इसी तरह कोई वकील हजारों रुपया मासिक की कमाई करता है और दूसरे वकील को कोई मुख्तारनामा भी नहीं देता! यह भी अन्तराय का ही प्रताप है। अगर कोई किसी के भोग में अन्तराय डालता है, किसी के पति का या पत्नी का वियोग कराता है तो अगले जीवन में उसे पति या पत्नी की प्राप्ति नहीं होती।

एक आदमी जीमने बैठा और दूसरे ने आकर उसे उठा दिया! जीमने वाला दूसरा और जीमाने वाला दूसरा और आप दाल भात मे मूसलचन्द की तरह बीच ही में कुर्ते की बाहें चढ़ाकर चिल्लाता है-तुझे किसने बुलाया था? किसने तुझे न्यौता दिया था? ऐसा करने वाला अन्तराय कर्म का बंध करता है। उसे अगली जिदगी में कोई भोजन कराने वाला भी नहीं मिलेगा। जो बड़ा आदमी होगा वह बड़ा गंभीर भी होगा और जो टुच्चा होगा वही टुच्चेपन की बातें करेगा।

दूसरों के उपभोग में अन्तराय देने से उपभोगान्तराय कर्म बँधता है। किसी को वस्त्र न पहनने देना, जेवर न पहनने देना आदि इस कर्म के बन्ध का कारण समझना चाहिए।

यहां शंका की जा सकती है कि यदि भोग और उपभोग में विघ्न डालने से अन्तरायकर्म का वन्ध होता है। तो त्याग का

उपदेश देने वाले साधुओं को तो हमेशा अन्तराय कर्म ही बँधना चाहिए। साधु ब्रह्मचर्य का उपदेश देते हैं, अनशन आदि तपस्या करने की प्रेरणा भी करते हैं तो क्या ऐसा करने के कारण उन्हें अन्तराय कर्म बँधता है ? इस शंका का समाधान यह है कि किसी के भोग-उपभोग में बाधा पहुँचाने की बुरी नीयत से अगर ऐसा उपदेश दिया जाय तो अन्तराय कर्म का बन्ध अवश्य होगा किन्तु यदि करुणाभाव से, उसका कल्याण करने की इच्छा से विषयभोग के त्याग का उपदेश दिया जाय तो अन्तराय कर्म नहीं बँधता। मान लीजिए एक आदमी बीमार है। वैद्य समझता है कि अगर यह बीमार अन्न खाएगा तो इसका रोग बढ़ जायगा और असाध्य हो जायगा और अन्त में इसके प्राण चले जाएँगे। ऐसा समझ कर वह रोगी को अन्न नहीं खाने देता। दूसरा आदमी द्वेषभाव से, किसी को भूखा रख कर मार डालने के विचार से किसी को अन्न नहीं खाने देता। मोटे तौर पर दोनों का काम समान मालूम होता है। वैद्य भी अन्न खाने से रोकता है और द्वेषी भी रोकता है। पर इस रोक में आपको कोई भेद मालूम होता है या नहीं ? स्पष्ट है कि दोनों रोकने वालों की भावना में बड़ा अन्तर है। एक जीवित रखने की भावना से रोकता है और दूसरा मार डालने की भावना से रोकता है। जब दोनों की भावनाएँ बिलकुल भिन्न-भिन्न हैं—एक दूसरी से एकदम विपरीत हैं तो क्या दोनों को समान फल की प्राप्ति होगी ? नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। प्रकृति के राज्य में ऐसा अन्धेर नहीं है। "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी" अर्थात् जिस की जैसी भावना होती है उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। मुनिजन कल्याण-भावना से प्रेरित होकर, पापकर्मों के

त्याग का उपदेश देते हैं अतएव उन्हें अन्तराय कर्म का बन्ध नहीं होता, वरन उपदेश देने से उनके पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

इसी प्रकार बल को प्राप्त करने के लिए अगर कोई आदमी व्यायाम आदि करता है या बलवर्धक औषध का सेवन करता है और दूसरा दुष्ट बुद्धि से उसमें विघ्नबाधा डालता है तो विघ्न-बाधा डालने वाला वीर्यान्तराय कर्म का बन्ध करता है।

भाइयो! आठ कर्मों का जो स्वरूप संक्षेप में बतलाया गया है, उसका अभिप्राय यह है कि आप इनका स्वरूप समझकर इनसे बचने का प्रयत्न करें। किस प्रकार कर्मों का बन्ध होता है और किस प्रकार कर्मों से बचाव हो सकता है? इन बातों को समझ कर जो भव्य जीव कर्मबंध के कारणों से दूर रहता है, उसका परम कल्याण होता है।

एक बार कर्मबन्ध हो जाने के पश्चात् वह कितने समय तक ठहरता है, यह बात भी जान लेना चाहिए। जैसे किसी-किसी दवा का प्रभाव तीन वर्ष तक रहता है, अमुक शराब का नशा अमुक समय तक रहता है, इसी प्रकार कर्मों का प्रभाव भी भिन्न-भिन्न समय तक रहता है।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। आयु कर्म की तेतीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की और नाम तथा गोत्र कर्म की बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। जघन्य स्थिति वेद-

नीय कर्म की बारह मुहूर्त्त की नाम और गौत्र कर्म की आठ मुहूर्त्त की और शेष सब कर्मों की अन्तमुहूर्त्त की है।

तीर्थङ्कर प्रभु ने विस्तार के साथ कर्म सिद्धान्त का निरूपण किया है। उसका उद्देश्य यही है कि ससारी जीव उनके स्वरूप को समझ कर कर्म बंध से बच सके। यह आठों कर्म किस किस कारण से बधते हैं, यह बात भी आपको समझ लेनी चाहिए। प्रत्येक अलग-अलग कार्यों और भावनाओं से विशेष प्रकार के कर्म का बँध होता है, तथापि प्रत्येक कार्य और भावना से सात या आठ कर्म बँधते ही रहते हैं। उदाहरणार्थ अगर आपने किसी की ज्ञान प्राप्ति में विघ्न डाला तो मुख्य रूप से ज्ञानावरण कर्म का बध होगा, किन्तु साथ ही दूसरे छह या सात कर्मों का भी बध होगा। जैसे रोटी का एक कौर खाया जाता है तो वह पेट में जाकर रस, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, वीर्य आदि के रूप में परिणत होता है, उसी प्रकार आप जो हँसी करते हैं, झूठ बोलते हैं चोरी करते हैं, दूसरों का अहित सोचते हैं, परस्त्री की तरफ बुरी नीयत से ताकते हैं, क्रोध, मान माया, लोभ करते, है, तो इन सब से सात या आठ कर्मों का बध होता है। चाहे आप समझें या न समझें; कर्मों का बध तो अवश्य ही होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे आपकी समझ में न आने पर भी भोजन से रस, रक्त मास आदि बनते हैं। किसी के न समझने के कारण कर्मों का बँध रुक नहीं सकता। एक नासमझ आदमी अगर जहर खाले तो क्या उसकी मृत्यु नहीं होगी? अवश्य होगी। चोर चोरी करेगा तो उसे दंड भोगना ही पड़ेगा। उसकी कौन सुनेगा? वह कह सकता है कि भूल से मैंने चोरी की है—मुझे कानून मालूम नहीं था, फिर भी वह दंड से बच नहीं सकता।

उससे यही कहा जायगा कि तुम्हें कानून की जानकारी होनी चाहिए थी। यही बात कर्मों के संबंध में है। जिसे जानकारी नहीं है, वह हमसे पूछ ले, शास्त्र देख कर ज्ञान प्राप्त कर ले और कर्म-बंध के कारणों से बचता रहे।

कर्म दो तरह के हैं—शुभ कर्म और अशुभ कर्म। शुभ कर्म से जीव स्वर्ग में जाता है अथवा मनुष्य गति में उत्तम अवस्था प्राप्त करता है। शरीर का निरोग होना, भोगोपभोगों की सुन्दर सामग्री मिलना, साताकारी कुटुम्ब परिवार की प्राप्ति आदि शुभ कर्म का फल है। अशुभ कर्म के फल स्वरूप जीवन को नरक में जाना पड़ता है, तिर्यञ्च गति के दुःख भोगने पड़ते हैं और कदाचित् मनुष्य हो गया हो तो भी नाना प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ता है। जीव जैसे-जैसे कर्म करेगा वैसा ही उसे फल भोगना पड़ेगा। जैसे सेंध लगाते समय पकड़ा गया चोर अनेक प्रकार की यातनाओं का पात्र बनता है, उसी प्रकार जीव अशुभ कर्म करके अनेक प्रकार के दुःखों का पात्र बनता है। अशुभ कर्म हँसते-हँसते बांधे जा सकते हैं, मगर उसका फल रोते-रोते भोगना पड़ता है। मगर उस समय का रोना कोई लाभ नहीं पहुंचाता। उस रुदन से आगे के लिए और नवीन कर्म बँध जाते हैं। इस तरह कर्मों की परम्परा चालू ही रहती है।

कुछ चोर चोरी करने जा रहे थे। उन्हें रास्ते में एक खाती (बढ़ई) मिल गया। उसने पूछा—तुम कौन हो और कहां जा रहे हो? चोरों ने कहा—हम चोर हैं और किसी मालदार के घर चोरी करने जा रहे हैं और पांच पचास हजार का माल लाएँगे।

चोरों की बात सुन कर खाती के मुंह में पानी भर आया।

उसने सोचा-मैं दिन भर पसीना बहाता हूं, तब कहीं शाम को एक रुपया पाता हूँ। और यह लोग थोड़ा सा साहस करके मिनटों मे ही हजारों का माल पा लेंगे! मैं भी इनके साथ शामिल क्यों न हो जाऊँ? एक ही रात में मालामाल हो जाऊँगा। रोज-रोज मिहनत करने से बच जाऊँगा।

इस प्रकार सोचकर उन्होंने चोरों के मुखिया से कहा—मुझे भी साथ ले लो। मगर हिस्सा बराबर-बराबर करना। चोरों के मुखिया ने यह बात स्वीकार कर ली। सब मिलकर एक मालदार के घर पहुँचे। उसका घर लकड़ी का बना हुआ था। सेंध लगाते समय लकड़ी का एक पटिया आ गया। तब खाती ने धीरे से कहा—इस काम में तो मैं होशियार हूं। खाती सोचने लगा— इसे काट तो डालूं गा, लेकिन बादमें पता नहीं चलना चाहिए कि कोई चोर आये थे, अतः इसमें मोगरे भी बना दूं। इस तरह सोचकर खाती पाटिये को छिल-छिल कर मोगरे बनाने लगा। उसकी आवाज सुन कर घर की औरत और मर्द की नींद टूट गई। दोनों लाठियां लेकर घर में खड़े हो गये। इधर चोरों ने आपस में सलाह की कि जो पहले घुसेगा उसे आधा धन मिलेगा। खाती इस लोभ में फँस गया। उसने पहले घुसना कबूल किया। वह पहले पहल टांगे भीतर घुसेड़ कर घुसना चाहता था कि भीतर खड़े औरत-मर्द ने उसकी दोनों टांगे पकड़ लीं। जब खाती ने कहा कि किसी ने मेरी टांगे पकड़ ली हैं तो चोरों ने बाहर से मजबूती के साथ उसका सिर पकड़ लिया। दोनों ओर से खींचतान शुरू हो गई। कभी चोर जोर लगाकर उसे बाहर की तरफ खींचते और कभी अन्दर के लोग भीतर की तरफ घसीटते। खाती अपने बनाये हुए मोगरों से रगड़ रगड़ कर लोहू

लुहान हो गया। यों करते करते सुबह होने आया। खाती को कोई पूरी तरह अपनी ओर नहीं खींच सका। चोरों ने उसका सिर काट लिया और अपना रास्ता लिया।

भाइयो ! खाती ने जो मोगरे बनाये थे, वे उसी के लिए दुःखदायी हुए। इसी प्रकार जो लोग ब्लेक मार्केट करते हैं, रिश्वत लेते हैं, झूठ-कपट करके धन इकट्ठा करते हैं, वे भी अपने लिये मोगरे इकट्ठे कर रहे हैं। आज लोग कुटुम्ब-परिवार के लिये पाप का उपार्जन कर रहे हैं, मगर फल भोगते समय अकेले को ही छठी का दूध याद आएगा ! पाप से कमाई हुई दौलत के हिस्सेदार पाप भोग में हिस्सेदार नहीं बनेंगे। जैसे चोर सकुशल भाग गये ओर खाती को जान गँवानी पड़ी, उसी प्रकार कुटुम्बीजन अपने अपने कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न गतियों में चले जाएँगे और उनके लिए पापकर्म करने वाले को नरकनिगोद की असह्य यातनाएँ भुगतनी पड़ेगी।

परलोक की बात थोड़ी देर के लिए छोड़ भी दीजिए और सिर्फ इसी लोक का विचार कीजिए। चोरी करने वाले को जब सरकार की ओर से कारागृह का दंड दिया जाता है, तब क्या कुटुम्बी और रिश्तेदार लोग, जो चोरी के माल में हिस्सेदार बनते हैं, क्या दंड में भी हिस्सेदार बनते हैं ? भाईजी जेलखाने में रो रहे हैं और घर-पर मौज-मजा उड़ाया जाता है ! इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं कि अशुभकर्मों से बचो। सब धन, माल, हीरे पन्ने बंगला, कोठी आदि-आदि यहीं पड़ा रह जायगा ! परलोक में इनमें से एक भी वस्तु साथ नहीं जायगी, अलबत्ता इनको प्राप्त

करने के लिए किये हुए पापकर्म साथ जाएँगे और वे वहां दुखी बनाएंगे।

दूसरी तरह से भी कर्म दो प्रकार के हैं—(१) द्रव्यकर्म और भावकर्म। कार्मणवर्गणा के परमाणु जो समस्त लोकाकाश में भरे हैं, जब कषाय और योग का निमित्त पाकर आत्म प्रदेशों के साथ एकमेक हो जाते हैं, तब उनकी द्रव्य कर्म संज्ञा होती है। इन द्रव्यकर्मों से राग-द्वेष आदि विकारी भाव उत्पन्न होते हैं। यह भाव, भावकर्म कहलाते हैं। इस प्रकार द्रव्य कर्म और भावकर्म एक दूसरे के आश्रित हैं। द्रव्य कर्मों से भाव कर्मों की उत्पत्ति होती है और भाव कर्मों से द्रव्य कर्म बंधते हैं। जैसे मुर्गी से अण्डा होता है और अण्डा से मुर्गी होती है, अथवा बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज उत्पन्न होता है, उसी प्रकार द्रव्य कर्म और भाव कर्म में भी परस्पर कार्य-कारणभाव है।

जैसे बीज और वृक्ष की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है, उसी प्रकार द्रव्य कर्म और भाव कर्म की परम्परा भी अनादिकाल से चली आ रही है। अगर किसी बीज को जला दिया जाय तो अनादिकाल से चली आने वाली परम्परा खत्म हो जाती है। इसी प्रकार कर्मों की परम्परा को भी तपस्या आदि की आग में भस्म किया जा सकता है।

पहले बांधे हुए कर्म जब उदय में आते हैं तो जीव हर्ष या विषाद करता है। शुभ कर्म का उदय होने पर हर्ष से उछलने लगता है और अशुभ कर्म का उदय होने पर हाय हाय करने लगता है। इसी को राग और द्वेष कहते हैं। इसी राग द्वेष के कारण नये कर्मों का बंध हो जाता है।

किन्तु जो विवेकवान् पुरुष कर्म के मर्म को समझ लेते हैं और अपने मन पर तथा अपनी इन्द्रियों पर काबू पा लेते हैं, वे कर्म का उदय होने पर हर्ष या विषाद नहीं करते; अपने चित्त को राग द्वेष रूप में परिणत नहीं होने देते; किन्तु समभाव का सेवन करते हैं। समभाव में विचरने से पहले के कर्म उदय में आ कर खिर जाते हैं अर्थात् निर्जरा को प्राप्त हो जाते हैं और नवीन कर्मों का बंध नहीं होता है।

शुभ और अशुभ कर्मों से बचने के लिए समभाव महान् शक्तिशाली, यहां तक कि अमोघ कवच है। जिन्होंने अतीतकाल में निष्कर्म अवस्था प्राप्त की है, जो आज कल महाविदेह क्षेत्र आदि में निष्कर्म अवस्था प्राप्त कर रहे हैं और जो भविष्य में प्राप्त करेंगे वह समभाव की ही बदौलत है। समभाव के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती और समभाव के होने पर ही मुक्ति प्राप्त होती है। इसलिए आगम में कहा है—

समभाव भावियप्पा लहइ मुक्खं न संदेहो।

अर्थात्—जिसकी आत्मा समभाव से भावित हो गई है, वह मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है।

इस प्रकार समभाव के द्वारा नवीन कर्मों का बँध जब रुक जाता है और पहले के कर्म तपस्या के द्वारा क्षीण कर दिये जाते हैं, तब आत्मा को सहज ही छुटकारा मिल जाता है।

भाइयो ! कर्मों से मुक्त होने के लिए भगवान् ने जो उपाय बतलाया है, उसको अपना कर सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न करो। हमेशा इस बात को ध्यान में रक्खो कि—

सदा श्री वीर जिनन्द जपना, कौन यहां पर अपना ?

अर्थात्-इस संसार में कोई किसी का नहीं है; एक मात्र परमात्मा ही शरणभूत है; अतएव उन्हीं का जाप करो। और सब लोग स्वार्थ के प्रेमी हैं। दुनिया की प्रीति झूठी है। मोह का पर्दा ऐसा पड़ा हुआ है कि लोग सत्य को प्रत्यक्ष देखते हुए भी भूले से रहते हैं। जैसे काच में अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर मुर्गा समझता है कि कोई दूसरा मुर्गा है और उससे लड़ता है; इसी प्रकार के भ्रम में आप भी पड़े हुए हैं। आप समझते हैं कि दुनिया के पदार्थ मेरे हैं, छोरा-छोरी आदि मेरे हैं, मगर आंख मिचते ही सब बिराने बन जाते हैं, यहां कोई किसी का नहीं है। सब अपने अपने कर्मों के अनुसार आये हैं और अपने-अपने कर्मों के अनुसार जाएँगे। उनके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करना बुद्धिमत्ता नहीं है। अनादि काल से यह बाल-चेष्टा करते आ रहे हो ! अब विवेक पाया है तो इस खिलवाड़ का अन्त करो ! गभीरता के साथ सावधान होकर विचार करो। न मालूम कितना तीव्र पुण्य का उदय होने पर यह मनुष्य शरीर मिला है। वीतराग प्रभु का कहा हुआ धर्म सुनने का अपूर्व अवसर मिल जाना भी मामूली बात नहीं है। हे भव्य ! इस समय तुझे जो सामग्री मिली है, उसका महत्त्व भलीभांति समझले। अपने आपको भाग्यशाली मान कि आज तुझे शाश्वत कल्याण करने की सभी प्रकार की सुविधा मिली हुई है ! अगर तू इस सामग्री के महत्व को भलीभांति समझ जायगा तो इससे पूरा लाभ उठाने का भी प्रयत्न करेगा। अगर तू ऐसा नहीं करता तो समझ ले कि तू आप ही अपना अहित कर रहा है। कौन जानता है कि फिर

कब यह सब सुन्दर और अनुकूल सामग्री मिलेगी ?

जन्म लेने से पहले नौ महीने तक तू माता के पेट में रहा। वहां तूने विचार किया कि मैं इस दुःख से छूट जाऊँगा तो ईश्वर को याद करूँगा। मगर जब तेरा जन्म हो गया तो उस दुःख को भूल गया और ईश्वर को भी विसर गया ! भले मानुस ! सोच तो सही कि यहां तू किस उद्देश्य से आया है ? अपना कल्याण करने को आया है या अकल्याण करने को आया है ? लड़ने-झगड़ने को आया है, झूठी गवाहियां देने को आया है ? अरे ! तू निरंजन निराकार पद प्राप्त करने को आया था और बीच ही मे गुलाबबाई का सुख देखने में मस्त हो गया ! छोकरों और छोकरियों में अपना आपा भूल गया ? यह तेरी कितनी दयनीय दशा है ?

हे मुमुक्षु ! इन सब बातों पर एकान्त में विचार करना। अपने शुद्ध स्वरूप का चिन्तन करना। संसार की असली स्थिति पर विचार करना। और फिर पक्का संकल्प करना कि अब मैं आत्मकल्याण के प्रशस्त पथ पर ही चलूंगा। मोह-ममता के कण्टकाकीर्ण मार्ग पर अनादि काल से चलता आ रहा है और दुःखों का भाजन बनता रहा है। अब उस मार्ग का त्याग कर। कर्मों के बंध, संवर एवं निर्जरा के कारणों पर विचार कर। बंध के कारणों से बच और संवर एवं निर्जरा के उपायों को ग्रहण कर। कर्मकटक को चूर कर। ऐसा करेगा तो आनन्द ही आनन्द होगा।

ता० ११-६-४८



ज्ञान



स्तुतिः—

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि - हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! आपके कहां तक गुण गाये जाएँ ?

कल्पना कीजिए; कोई पुरुष किसी कार्यवश कहीं जा रहा है। रास्ते में उसे काला सांप मिल गया। लाल-लाल आंखों

---

* निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह का दूसरा व्याख्यान ।

वाला, मदोन्मत्त कोयल के समान नीले कंठ वाला, क्रोध के कारण उद्धत और ऊँचा फन फैलाये हुए वह सांप रास्ता रोक कर खड़ा है। ऐसी स्थिति में साधारण राहगीर क्या करेगा? वह मुँह मोड़ कर पीछे की तरफ भाग खड़ा होगा। जान चले जाने के भय से वह आगे नहीं बढ़ेगा। मगर जो भगवान् ऋषभदेवजी का सच्चा भक्त है, उसके चित्त में भगवान् का नाम रूपी नागदमनी बूटी मौजूद है, वह कदापि पीछे पैर नहीं रक्खेगा। वह निश्शङ्क-निर्भय हो कर आगे बढ़ता जायगा और अपने पैरों से सांप को लांघ कर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चल देगा।

कहा जा सकता है कि भगवान् आदिनाथ के भक्त में इस प्रकार की शक्ति किस प्रकार आ जाती है? भगवान् के नाम के प्रभाव से भक्त में कैसे यह निर्भयता आ सकती है?

इस प्रकार के उत्तर में अनेक बातें कही जा सकती हैं। सब से पहली बात यह है कि भगवद्भक्त का चित्त इतना निर्मल और निस्कषाय हो जाता है कि प्राणी मात्र को वह अपना मित्र समझने लगता है। किसी भी प्राणी को वह अपना शत्रु नहीं समझता और इसी कारण किसी पर उसका द्वेषभाव या वैरभाव नहीं होता। जब वह पूरी तरह निर्वैर हो जाता है तो प्रतिपक्षी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। जैसे किसी को क्रुद्ध देखकर सामने वाले के हृदय में भी क्रोध का आवेग आ जाता है, उसी प्रकार किसी को भी करुणाशील देखकर सामने वाले के हृदय में भी करुणा का सचार हो जाता है। कदाचित् करुणा का संचार न भी हो तो भी उसकी क्रूरता तो उपशान्त हो ही जाती है।

भगवान् ऋषभदेव का सच्चा भक्त सर्प को देखकर उस पर हिंसक भावना नहीं लाता। बल्कि वह उस पर भी करुणाशील रहता है, अहिंसक भाव जगाता हैं। इस भावना का प्रभाव सर्प पर भी पड़ता है और इस कारण वह उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ता। योग शास्त्र में कहा है:—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

अर्थात्—जहां अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है, उसके आस-पास के जीव भी वैर भाव को छोड़ देते हैं।

इस कथन में पूरी पूरी सचाई है। इस सचाई को समझने के लिए हमें कथानुयोग की तरफ ध्यान देना चाहिए। एक नहीं अनेकों महापुरुषों एवं सतों की जीवनी से आप समझ सकते हैं कि उनके पास हिरन और वाघ किस तरह पास पास बैठा करते थे! तीर्थङ्कर भगवान् के समवसरण में जन्म से ही विरोध समझे जाने वाले सब प्राणी एक साथ भाई-भाई की तरह प्रेम से बैठते हैं। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसक की अहिंसा-भावना हिंसक को भी अहिंसक बना देती है।

दूर क्यों जाते हो? रोजमर्रा के व्यवहार को ही अगर ठीक तरह देखोगे तो पता लग जायगा कि क्रोध से, विरोध से घृणा से, मारपीट से और डाट फटकार से जिस आदमी को झुकाना कठिन होता है, उसे हृदय के सच्चे स्नेह से, प्रेम से, दूसरों शब्दों में कहें तो अहिंसा के द्वारा शीघ्र और अनायास ही काबू में किया जा सकता है।

आप अगर रेल के तीसरे दर्जे के डिब्बे में सफर करते हो तो मेरी बात जल्दी समझ सकेंगे। जब डिब्बे में पहले से ही भीड़ होती है और पहले घुसे हुए मुसाफिर नये घुसने वालों का अपनी पूरी ताकत लगा कर प्रतिरोध करते हैं, उस समय हेकड़ी दिखलाने वाले ताकते रह जाते हैं और नम्रता दिखलाने वालों को बैठने की नहीं तो घुसकर खड़े रहने की जगह तो मिल ही जाती है।

तात्पर्य यह है कि अगर आपके अन्तःकरण में दया और प्रेम का स्रोत बहता होगा तो वह आपके विरोधी के अन्तःकरण को भी शीतल बना देगा। आपकी अहिंसा का झरना आपके प्रतिपक्षी के हृदय के वैर और क्रोध की आग को बुझा देगा। किसी ने कहा है—

> क्षमा शस्त्रं करे यस्य, दुर्जनः किं करिष्यति।
> अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥

अगर आपके हाथ में क्षमा की ठंडी तलवार है तो दुष्ट से दुष्ट जीव भी आपका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता। पानी में आग पड़ जायगी तो वह पानी को जला नहीं सकेगी, बल्कि स्वयं ही बुझ जायगी।

जिस भक्त के हृदय में भगवान् ऋषभदेव का नाम बसा हुआ है, समझ लेना चाहिए कि उसके हृदय मे भगवान् का उपदेश और आदर्श बसा हुआ है। भगवान् का उपदेश अहिंसा प्रधान है, अतएव यह भी मान लेना चाहिए कि उसके हृदय में अहिंसा बसी हुई है। इसीलिए तो शास्त्र मे अहिंसा को भगवती और सत्य को भगवान् कहा है। इस प्रकार भक्त के हृदय की

अहिंसा सर्प जैसे क्रूर समझे जाने वाले प्राणी को भी अहिंसक बना देती है।

यहां प्रासंगिक तौर पर इतना कह देना उचित है कि सांप को लोग क्रूर जन्तु समझते हैं, पर वास्तव में वह क्रूर नहीं है। क्रूर होता तो मनुष्यों और दूसरे प्राणियों को देखते ही वह डॅसने के लिए दौड़ता। मगर क्या कभी आपने सुना है कि कोई सांप किसी के पीछे पड़ा है? नहीं। वह बेचारा तो मनुष्य को देखते ही डर कर भागता है। अगर डॅसता है तो तभी जब आत्म-रक्षा के लिए डॅसना अनिवार्य हो जाता है। दरअसल वह किसी को डॅसता नहीं, केवल अपना बचाव भर करता है। जहर उसमें जरूर होता है, मगर सब प्रकार के सांपों में नहीं होता; किसी-किसी जाति के सांपों में ही होता है। लोग विषधर और निर्विष सांप का अन्तर नहीं समझते हैं और इस कारण सांप मात्र को देख कर ही डरते हैं। लोगों के इस डरपोकपन ने ही सांप को भयानक और क्रूर रूप दे दिया है। जैसे मनुष्य सांप से डरता है, वैसे ही सांप भी मनुष्य से डरता है। जिस मनुष्य के मन, वचन और काय में अहिंसा भरी हुई है, उसे देख कर सांप डरेगा नहीं और डरेगा नहीं तो अपने बचाव के लिए उसे डॅसने का प्रयत्न करेगा नहीं। ऐसी स्थिति में अगर भगवान् का भक्त उसे सहज ही लांघ कर चला जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

भगवान् के नाम में स्वतः भी अलौकिक महिमा है। एक दिन पहले ही बतलाया जा चुका है कि लोकोत्तर पुरुषों का सजीव और निर्जीव प्रकृति पर लोकोत्तर असर पड़ता है। उस असर के कारण भगवान् का नाम रूप मंत्र अमोघ औषध का काम करता

है। अतएव ईश्वर की महिमा में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

ऐसे महिमाशाली आदिनाथ भगवान् को हमारा वार-वार नमस्कार हो।

संसार में विष दो प्रकार के हैं—द्रव्यविष और भावविष। सांप, विच्छू, सिंह, वाघ आदि का जहर तथा संखिया, अफीम आदि का जहर द्रव्यविष कहलाता है क्यों कि उसका साक्षात् प्रभाव सिर्फ पुद्गल पर होता है। मनुष्य एवं अन्य प्राणियों में जो अज्ञान का भाव विद्यमान है, वह भावविष है, क्यों कि उसका साक्षात् प्रभाव चेतना पर पड़ता है। द्रव्यविष द्रव्य प्राणों का घात करता है तो भावविष भावप्राणों का विनाश करता है। द्रव्यविष के प्रभाव से जीव एक ही वार मृत्यु का शिकार होता है, जब कि भावविष के प्रताप से जीव को अनेक बार जन्म-जन्मान्तर में मृत्यु का सामना करना पड़ता है।

सांप का जहर चढ़ने पर जीव जैसे वेभान हो जाता है, उसी प्रकार अज्ञान का उदय होने पर जीव कृत्य-अकृत्य, सत्य-असत्य, हित अहित, शुभ-अशुभ और वाच्य-अवाच्य के विवेक से शून्य वन जाता है। जीव की यह विवेकहीनता उसे अधिकाधिक गहरे अज्ञान की ओर खींचती चली जाती है। इस प्रकार अनेक जीव अज्ञान ही अज्ञान में अनादिकाल से चक्कर काट रहे हैं। उन्हें इस सुदीर्घतर काल में एक बार भी, एक क्षण के लिए भी विवेक का प्रकाश नहीं प्राप्त हो सका है।

प्रश्न हो सकता है कि जीव में अज्ञान का भाव आया कहां से है। जब आत्मा स्वभाव से प्रकाशमय है, अनन्त प्रकाश

की अक्षय निधि है और उसी के प्रकाश से अखिल विश्व आलोकित है, तो उसमें अज्ञान के अंकुर कहां से फूटे ? जीव प्रकाश से वंचित कैसे हो गया ? अज्ञान की अत्यन्त गहरी गुफा में किस प्रकार चला गया ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मोहकर्म के कारण ही जीव अपने असली स्वरूप से गिरकर अज्ञानमय विरूपता को प्राप्त हुआ है। मोहनीय कर्म की प्रबलतम प्रकृति जो मिथ्यात्व है, उसका सामर्थ्य बड़ा जबर्दस्त है ! इसी मिथ्यात्व की बदौलत चेतन रूपी राजा आज रंक बना हुआ है। मिथ्यात्व के घने और काले बादलों ने आत्मा के सहज प्रकाशमय स्वरूप को विलुप्त कर दिया है। उसने मनुष्यों को पशुओं की श्रेणी से भी गिरा दिया है। कहा है—

नरत्वेऽपि पशूयन्ते मिथ्यात्वग्रस्तचेतसः ।

अर्थात्—जिनका चित्त मिथ्यात्व ने ग्रस लिया है, वे मनुष्य होने पर भी पशु सरीखे बन जाते हैं।

न केवल पशुओं और पक्षियों पर ही, बल्कि मनुष्यों और यहां तक कि देवों पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। मिथ्यात्व चारों गतियों के जीवों को अपने चंगुल में फंसाता है। नौ ग्रैवेयक तक के देवता भी मिथ्यात्व के शिकार होते हैं। नौवें ग्रैवेयक में रहने वाले मिथ्यात्वी देवता की अपेक्षा सातवें नरक का सम्यक्त्वी नारकी जीव अधिक भाग्यशाली है। नरक से निकल कर सम्यक्त्व के प्रताप से वह जल्दी ही अच्छी और ऊँची स्थिति प्राप्त कर लेगा, मगर नौवें ग्रैवेयक का देवता मिथ्यात्व की बदौ-

लत ऊँची स्थिति प्राप्त नहीं कर सकेगा, उलटे उसे हीन और हीनतर स्थिति ही प्राप्त होगी। सम्यक्त्व प्राप्त होते ही जीव का संसार परिभ्रमण परिमित हो जाता है जब कि मिथ्यात्वी के परिभ्रमण की कोई सीमा ही निश्चित् नहीं हो पाती।

मिथ्यात्व से ही अज्ञान अर्थात् कुज्ञान का उद्भव होता है। जो मनुष्य अज्ञान से घिर जाता है, वह सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझने लगता है। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि उसमें इतना भी भान नहीं रहता कि वह अपनी भूल को समझ सके। वह अपने असत्य को सत्य समझकर सत्य का विरोध करता है। अज्ञान के कारण जीव ऊँची-ऊँची और बड़ी चीजों में जो भूलें करता है, उन्हें आप सब समझ नहीं सकते। अतएव उन बातों पर मैं इस समय प्रकाश नहीं डालूंगा। मैं प्रतिदिन अनुभव में आने वाली कुछ साधारण बातें उदाहरण के तौर पर बतलाना चाहता हूँ। उनसे आप अन्दाज कर सकेंगे कि जीव किस प्रकार अज्ञान के कारण बेभान हो जाता है।

कल्पना कीजिए, एक स्त्री पानी भरने के लिए कुए पर गई उसका बालक जिद करने लगा कि मैं तो मां के पास जाऊंगा। पिता उसे खिलाता है, पुचकारता है, बहलाता है, किन्तु बालक मचल पड़ा है। वह मानता नहीं है और मां–मां की पुकार कर रहा है। इतने में ही उसकी मा पानी भर कर लौट आई। तब बालक का पिता कहता है—'देख, आपणी मां आगई न ।' यहां यह समझने योग्य है कि वह मा सिर्फ बालक की है, बालक के पिता की नहीं है। फिर भी वह कहता है—अपणी मां आगई! यह बोलने के अविवेक का एक नमूना है।

किसी औरत को बुखार चढ़ता है। वह कहती है—मेरा जीव घबराता है तब मोह में आकर उसका पति कहता है—हे म्हांरी मां, ताव (ताप-बुखार) तो इसोई होवे है। यह भी अविवेक की एक बानगी है। अज्ञानी जीव जैसे छोटी बातों में अपने विवेक को जागृत नहीं रख सकता, उसी प्रकार बड़ी-बड़ी बातों में भी जागृत नहीं रख सकता है। संसार में जो असंख्य मत मतान्तर दिखलाई पड़ते हैं और एक दूसरे का विरोध करते हैं, उसका प्रधान कारण क्या है ? अज्ञान ही। अधिकांश मतभेद अज्ञान के कारण ही उत्पन्न होते हैं। अज्ञान के कारण उनमें एकान्तवाद आता है और आपसी विरोध की उत्पत्ति होती है। अज्ञान जन्य इस एकान्तवाद और पारस्परिक विरोध ने धर्म को भी उपेक्षणीय वस्तु बना दिया है। आजकल के अनेक लोग धर्म से जो नफरत करने लगे हैं, उसका कारण दुतरफा अज्ञान है। धर्म के ठेकेदार लोगों ने अपने अज्ञान के कारण धर्म के मंगलमय स्वरूप को बिगाड़ कर अमंगलमय बना दिया है; प्रशस्त से अप्रशस्त बना दिया है। और लोग धर्म के विकार को अपने अज्ञान के कारण धर्म ही समझ बैठते हैं। इस तरह के दुहरे अज्ञान का ही यह प्रताप है कि जिस धर्म के बिना जगत् की स्थिति नहीं रह सकती, जिस धर्म के अभाव में संसार नरक सरीखा बन जायगा, उसी धर्म को कुछ लोग हेय समझते हैं। इस प्रकार अज्ञान का प्रभाव सर्वत्र व्यापक रूप से दिखलाई दे रहा है।

भाइयो ! अज्ञान का जनक मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व बड़ा भारी पाप है। और-और पाप अगर डाल या पत्ते के समान हैं तो मिथ्यात्व रूप पाप मूल के समान हैं। इसका छूटना बहुत कठिन है। बरसों मुंहपत्ती बांधते-बांधते हो गए, पर किसी पाषाण

पर सिन्दूर या पन्नी-पत्ता लगा देखा कि झटपट सिर झुका दिया! यह बहिनें छोरा-छोरी खोजती और मांगती फिरती हैं। परन्तु छोरा-छोरी क्या यों खोजने से मिला करते हैं? हां, रबर के छोरा-छोरी तो बाजार में बहुत मिल जाते हैं! भैरों और भवानी और वह भी पाषाण में कल्पित की हुई! क्या उनसे सन्तान मिलेगी? मगर अज्ञान के प्रताप से मनुष्य की विवेक बुद्धि सो जाती है और वह सचाई का अनुभव नहीं कर पाता।

जब जीव चौथे गुणस्थान में पहुँचता है, तब उसका मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है और उसके स्थान पर सम्यग्दर्शन का शीतल और निर्मल प्रकाश उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन के होने पर जीव का अन्तःकरण एक लोकोत्तर आलोक से उद्भासित हो उठता है। वर्षों से एक आदमी घोर अंधकारमयी गुफा में कैद हो और उसे प्रकाश की एक छोटी-सी किरण भी कभी नजर न आई हो फिर कभी उसे पूर्णिमासी के विमल प्रकाश में लाकर खड़ा कर दिया जाय तो उस समय उसे कितना आनन्द होगा? अथवा कल्पना कीजिए कि कोई जन्म का अंधा मनुष्य है। उसने अपनी जिंदगी के लम्बे-लम्बे बहुत से वर्ष अंधेपन में गुजारे हैं। चन्द्रमा और सूर्य की कहानी उसने अवश्य सुनी है परन्तु उन्हें कभी देखा नहीं है। उनके प्रकाश की उसे कल्पना भी नहीं है। ऐसी स्थिति में कोई भी सिद्ध पुरुष उसे मिल जाते हैं और वे एक अंजन उसके नेत्रों में आंज देते हैं। अंजन आंजते ही उसके नेत्रों का प्रकाश फैल जाता है। कहिए, उस समय उसे कितनी प्रसन्नता होगी? उसे सारा संसार अद्भुत प्रतीत होगा। वह जिन चीजों के विषय में इच्छानुसार कल्पना किया करता था, उनका सच्चा रूप अपनी

आंखों से देखता है। उसके आनन्द और उल्लास की सीमा नहीं रहती।

यही स्थिति मिथ्यात्व के हटने और सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर होती है! सम्यग्दर्शन एक अलौकिक ज्योति है। उस ज्योति को पाकर अनादि कालीन या सादि मिथ्यात्व के अन्धकार में भटकने वाला जीव निहाल हो जाता है। उसका अन्तरतर कल्पनातीत प्रकाश से उद्भाषित हो उठता है। वह आत्मा के भीतर रहे हुए असीम आलोक को देखकर उल्लसित हो उठता है। उसे आसपास के समस्त पदार्थों का सच्चा स्वरूप मालूम होने लगता है। उसके आन्तरिक नेत्र खुल जाते हैं। तत्त्वों का जो यथार्थ स्वरूप अब तक उसकी समझ में नहीं आया था, वह समझ में आने लगता है।

सम्यग्दर्शन के प्रताप से ज्ञान भी मिथ्याज्ञान न रह कर सम्यग्ज्ञान बन जाता है। अगर वह जीव चारित्र का पालन करता है तो उसका चारित्र भी सम्यक् चारित्र होता है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में आपस में कार्य-कारण भाव भी है और सहचरभाव भी है। जहां सम्यग्दर्शन है वहां सम्यग्ज्ञान है। जहां सम्यग्दर्शन का अभाव है वहां सम्यग्ज्ञान का भी अभाव है। जैसे सूर्य के उदय होने पर प्रकाश और प्रताप एक ही साथ प्रकट होते हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्व का अन्त होते ही एक साथ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का आविर्भाव होता है।

निर्ग्रन्थ प्रवचन के पांचवें अध्याय में सम्यग्ज्ञान का वर्णन किया गया है। ज्ञानों के विषय मे यद्यपि एक दिन कहा

जा चुका है, फिर भी निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह के सिलसिले में जो वाचन चल रहा है, उसके अनुसार आज फिर ज्ञान के संबध मे ही कुछ प्रकाश डाला जाता है।

असल में ज्ञान में रुकावट डालने वाला कर्म ज्ञानावरण है। ज्ञानावरण कर्म के उदय से अज्ञान उत्पन्न होता है। मगर क्योंकि ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, अतएव वह पूरी तरह कभी भी आच्छादित नहीं होता। जीव की सबसे अधिक हीन अवस्था निगोद-अवस्था है। उस अवस्था में ज्ञान न्यूनतम रहता है। पर वहां भी कम से कम अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान का अंश उघाड़ा रहता है। ज्ञानावरण कर्म उसे आच्छादित नहीं कर सकता। फिर ज्यों-ज्यों ज्ञानावरण का क्षयोपशम बढता जाता है, त्यों-त्यों ज्ञान की मात्रा भी बढ़ती जाती है। इस प्रकार ज्ञानावरण कर्म के उदय से अज्ञान और क्षयोपशम से ज्ञान की वृद्धि होती है।

प्रश्न किया जा सकता है कि अगर अज्ञान, ज्ञानावरणकर्म के उदय से होता है तो फिर मिथ्यात्व को अज्ञान का कारण क्यों बतलाया गया है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि अज्ञान दो प्रकार का है—औदयिक अज्ञान और क्षायोपशमिक अज्ञान। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अज्ञान की गणना औदयिक भावों में भी की गई है और क्षायोपशमिक भावों में भी की गई है। औदयिक भावों में जिस अज्ञान की गिनती की गई है वह ज्ञानावरण कर्म के उदय से होता है। उसका अर्थ है ज्ञान का अभाव होना। और क्षायोपशमिक भावों में जिस अज्ञान की गणना की गई है उसका अर्थ है मिथ्याज्ञान। ज्ञान में यह

मिथ्यापन मिथ्यात्व कर्म के उदय से आता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान को न उत्पन्न होने देना ज्ञानावरण का कार्य है और उत्पन्न हुए ज्ञान में मिथ्यापन, विपरीतता, मलीनता उत्पन्न कर देना मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का कार्य है। इस प्रकार अज्ञान ज्ञानावरण के उदय से भी उत्पन्न होता है और मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से भी होता है। मगर दोनों से उत्पन्न होने वाले अज्ञान के अर्थ में अन्तर है। एक जगह अज्ञान का अर्थ है ज्ञान का अभाव और दूसरी जगह अज्ञान का अर्थ है कुत्सित ज्ञान या मिथ्याज्ञान।

सम्यग्दर्शन होने से पहले भी जीव में ज्ञानगुण तो विद्यमान रहता ही है, परन्तु मिथ्यात्व के संसर्ग से वह मिथ्याज्ञान या अज्ञान कहलाता है। मिथ्यात्व की मलीनता हटते ही ज्ञान निर्मल हो जाता है। तब वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

निर्ग्रन्थप्रवचन के पांचवें अध्याय में जिक्र चला है कि—भगवान् महावीर स्वामी; गौतम स्वामी को फरमाते हैं कि ज्ञान पांच प्रकार का है (१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मनःपर्ययज्ञान और (५) केवलज्ञान।

योग्य देश में स्थित वस्तु को इन्द्रिय और मन की सहायता से जानना मतिज्ञान कहलाता है। मतिज्ञान के अनेक अपेक्षाओं से अनेक भेद कहे गये हैं। इसके मूल भेद चार हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। दर्शनोपयोग से पश्चात् सर्वप्रथम जो ज्ञान होता है और जिससे कुछ सामान्य और कुछ विशेष (अपर सामान्य-जैसे मनुष्यत्व) की प्रतीति होती है वह अवग्रह ज्ञान कहलाता है। अवग्रह के बाद विशेष जानने की इच्छा को ईहाज्ञान कहते हैं, जैसे यह मनुष्य दक्षिणी होना चाहिए।

ईहाज्ञान के अनन्तर विशेष का निश्चय हो जाना अवाय कहलाना है, जैसे यह मनुष्य दक्षिणी ही है। अवाय के पश्चात् धारणा ज्ञान होता है। यह ज्ञान इतना दृढ होता है कि आत्मा पर अपनी एक प्रकार की छाप लगा देता है, जिसके कारण कालान्तर में भी आत्मा उस जानी हुई वस्तु को याद कर सकता है।

मतिज्ञान के यह चारों भेद पांचों इन्द्रियों से उत्पन्न होते हैं और मन से भी उत्पन्न होते हैं। इस कारण चारों के छह छह भेद हो जाते हैं जैसे—(१) स्पर्शनेन्द्रिय से उत्पन्न होने वाला अवग्रह (२) रसना इन्द्रिय से होने वाला अवग्रह (३) घ्राणेन्द्रिय से होने वाला अवग्रह (४) चक्षुइन्द्रिय से होने वाला अवग्रह (५) श्रोत्र-इन्द्रिय से होने वाला अवग्रह और (६) मन से होने वाला अवग्रह। इसी तरह छह छह भेद ईहा अवाय और धारणा के भी हैं। इन सब को मिला देने से मतिज्ञान के चौवीस भेद बन जाते हैं।

अवग्रह दो प्रकार का है—व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह। अर्थावग्रह के पूर्वोक्त छह भेद हैं, पर व्यंजनावग्रह चक्षुइन्द्रिय और मन से नहीं होता। वह सिर्फ चार इन्द्रियों से ही होता है। अतएव उसके चार ही भेद हैं। इन चार भेदों को पूर्वोक्त चौवीस भेद में सम्मिलित कर देने से मतिज्ञान २८ प्रकार का हो जाता है।

अट्ठाईस प्रकारों में से प्रत्येक ज्ञान बारह तरह के पदार्थों को जानता है। बहु, बहुविध, एक, एकविध, आदि बारह पदार्थ हैं। अतएव २८×१२=३३६ भेद मतिज्ञान के होते हैं। इन तीन

सौ छत्तीस भेदों में चार प्रकार की बुद्धियों को भी अगर सम्मिलित कर दें तो मतिज्ञान के तीन सौ चालीस भेद हो जाते हैं।

चार प्रकार की बुद्धियां यह हैं—(१) औत्पातिकी बुद्धि (२) वैनयिकी बुद्धि (३) कार्मिकी बुद्धि और (४) पारिणामिकी बुद्धि।

इनमें से औत्पातिकी बुद्धि का लक्षण शास्त्र में इस प्रकार बतलाया है—

पुव्वं अदिट्ठमस्सुअमवेइयतक्खणविसुद्धगहिअत्था।
अव्वाहयफलजोगा, बुद्धि उप्पत्तिआ नाम॥

—श्रीमन्नन्दीसूत्र

जो विषय पहले देखा न हो, सुना न हो, समझा हुआ भी न हो, फिर भी उसके तत्त्व को फौरन ग्रहण कर लेना, हाजिर जवाब होना, तत्काल कोई बात सूझ जाना, तत्काल किसी के सवाल का माकूल जवाब दे देना, औत्पातिकी बुद्धि का काम है। किसी किसी बच्चे मे भी ऐसी बुद्धि होती है कि इधर प्रश्न किया नहीं कि उधर उत्तर मिला नहीं। ऐसी शक्ति मतिज्ञानावरण-कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होने वाली औत्पातिकी बुद्धि के प्रताप से ही प्राप्त होती है। श्रीनन्दीसूत्र में इस बुद्धि का स्वरूप समझाने के लिए छब्बीस उदाहरण दिये हैं। वे सब उदाहरण कथाओं के रूप मे हैं और रोचक भी हैं। पर इस समय उन्हें बतलाना संभव नहीं है, क्योंकि उन सब उदाहरणों को कहने के लिए लम्बा समय चाहिए। अतएव यहां एक दो उदाहरण ही दिये जाते हैं।

एक राजा ने जमीन पर एक लकीर खींच दी। उसने घोषणा करवा दी कि जो मनुष्य लकीर को हाथ लगाये बिना ही इसे छोटी कर देगा, उसे मैं दीवान के पद पर नियुक्त कर दूंगा। भला दीवान बनना कौन नहीं चाहता? कइयों ने मंसूबे किये, मगर लकीर को छुए बिना छोटी करने का कोई उपाय न सूझा। वे मन मारे ही रह गये। तब एक बुद्धिमान् मनुष्य वहां आया। उसने कहा मैं इस लकीर को छुए बिना ही छोटी कर दूंगा। उसने क्या किया कि उस लकीर के पास एक दूसरी, उससे बड़ी लकीर खींच दी। राजा से उसने कहा—सरकार, देखिए, आपकी लकीर छोटी हो गई है। राजा ने कहा—कैसे? तब उसने दूसरे आदमी को बुला कर उससे पूछा-बताओ, कौन-सी लकीर छोटी है? उस आदमी ने राजा की लकीर छोटी बतला दी। यह औत्पातिकी बुद्धि है।

उज्जैन के राजा ने कहा-तालाब के बीच में एक थंभा है। जो मनुष्य थंभे के पास गये बिना ही उसे रस्से से बांध देगा, उसे मैं अपना दीवान बना लूंगा।

भाइयो, यह अक्ल का काम है। क्या किसी स्कूल को तुड़वा देने से ऐसी अक्ल आयगी? किसी की पुस्तकों को जला देने से ऐसी बुद्धि आ सकती है? अरे, ऐसे काम करने से तो जन्म-जन्मान्तर मे भी ज्ञान की प्राप्ति हो जाना कठिन हो जायगा? कोई-कोई लड़का कड़ी से कड़ी मिहनत करने पर भी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है। यह उसके पूर्वकृत कर्मों का ही फल समझना चाहिए। उसने पूर्व जन्म में विद्याध्ययन करने वाले को हानि पहुँचाई होगी। ज्ञानवानों, विद्वानों की असातना की होगी

विद्यार्थियों के पढ़ने में बाधा डाली होगी, ज्ञानवानों को अपमानित किया होगा, किसी की पुस्तक फाड़ फैंकी होगी। मतलब यह है कि जो ज्ञान और ज्ञानवन्त की आसातना करता है और किसी की ज्ञान प्राप्ति मे विघ्न डालता है, वह ज्ञानावरण कर्म का उपार्जन करता है। ज्ञानावरण कर्म बांधने से बुद्धि में जड़ता आती है, मस्तिष्क में स्फूर्ति का अभाव होता है और सहज सूझ-बूझ नहीं प्राप्त होती।

हां, तो राजा की घोषणा सुनकर एक नवयुवक वहां पहुँचा। उसका नाम धन्ना था। उसने कहा—मैं तालाब में घुसे बिना ही, किनारे पर रहते हुए इस खभे को बाध दूंगा। राजा अपनी सवारी पर बैठ कर वहां आया। हजारों दर्शकों की भीड़ लग गई। नवयुवक ने एक बड़ा लम्बा रस्सा मॅंगवाया। रस्सा आने पर उसने एक जगह खूंटी गाड़ कर एक सिरा वहीं बांध दिया। रस्से का दूसरा सिरा पकड़ कर वह तालाब के किनारे-किनारे गया और तालाब की परिक्रमा करके वहीं आ पहुँचा जहां खूंटी गाड़ कर रवाना हुआ था। इस प्रकार करने से रस्सा खभे के चारों तरफ आ गया। फिर उसने उस रस्से में गांठ लगाई और रस्से के दोनों सिरों को विरोधी दिशाओं में खींचना शुरु किया। इस तरह थंभे में गांठ लग गई। इसके पश्चात नवयुवक ने कहा—भाइयो! देखो, खंभा रस्से से बंध गया है या नहीं?

सब दर्शकों ने एक स्वर से कहा—बँध गया है

एक बार बादशाह ने मेवाड़ के दीवान से पूछा—तुम्हारी मेवाड़-भूमि कैसी है? मेवाड़ का दीवान नहीं चाहता था कि

बादशाह को मेवाड़ में लाया जाय और मेवाड़-प्रदेश दिखलाया जाय। अतएव आधा मन मूंग मंगवाकर उसने दाल बनवाई। दाल को पिसवाया। फिर उसमें सज्जी का पानी और यथायोग्य मसाला मिलवाकर उसका एक पापड़ बनवाया। आधा मन का वह पापड़ अगारों पर सिकवाया गया। उसमें कई जगह बड़े-बड़े और कई जगह छोटे-छोटे फफोले पड़ गये। तब दीवान ने बादशाह को वह पापड़ दिखलाकर कहा—हुजूर, इसे मेवाड़ का नक्शा समझिए। इसमें जो बड़े-बड़े फफोले हैं, उन्हें बड़े-बड़े पहाड़ समझिए, छोटे-छोटे फफोलों को डूंगरियां समझिए और बीच-बीच में पड़ी हुई लकीरों को नदियां समझिए।

बादशाह ने वह अजीब नक्शा देखकर कहा—ओह! ऐसे मेवाड़ मे तो हम नहीं आ सकते। यह भी औत्पातिकी बुद्धि का उदाहरण है।

किसी अंगरेज ने एक हिन्दुस्तानी से कहा—हम गोरे गट्ट हैं और तुम काले कट्ट हो। फिर भी तुम अक्ल में मुझसे आगे रहते हो। इसका क्या कारण है?

अंगरेज प्रायः मांसाहारी होते हैं और हिन्दुस्तानी प्रायः शाकाहारी होते हैं। मांसाहार से प्रकृति तमोगुण वाली होती है। शाकाहारी की बुद्धि में तीव्रता होती है। अतएव उस हिन्दुस्तानी ने कहा—सुनो साहब, जब खुदा ने सृष्टि बनाई तो दो चीजें सामने रक्खी—रूप और अक्ल। खुदा ने कहा—जिसे जो चाहिए सो ले लो। आप आगे थे, मैं पीछे था। आपने पहले रूप पसद कर लिया, आपको गोरा रूप मिल गया। मैं पीछे था। अक्ल बच रही थी सो मेरे पल्ले पड़ी।

इस प्रकार तत्काल उत्तर की कल्पना कर लेना भी औत्पातिकी बुद्धि का ही फल है। और लीजिए—

एक ठाकुर साहब काणे थे। उसके पास एक चारण आया। उसके शरीर में भी ऐब थी। ठाकुर ने चारण से कहा—साले, मां के पेट से निकलने की इतनी जल्दी क्या पड़ी थी कि शरीर भी पूरा नहीं बनने दिया! यह सुन कर चारण बोला—हुजूर, मैं तो आपकी देखादेखी जल्दी बाहर आगया।

एक आदमी ने अपने लड़के से पूछा—तू शादी किससे करेगा?

लड़के ने उत्तर दिया—अपनी दादी से।

आदमी ने कहा—बेईमान ऐसा क्यों कहता है?

लड़का बोला—तुमने मेरी मां से शादी की है तो मैं तुम्हारी मां से क्यों नहीं करूंगा?

दिल्ली में बाहर के लोग गये और एक दुकानदार से बोले-आपके शहर में गधे बहुत हैं। तब दुकानदार ने उत्तर दिया—यहां तो बहुत गधे नहीं हैं, बाहर के बहुत आ गये हैं।

यह सब औत्पातिकी बुद्धि के उदाहरण हैं। इन उदाहरणों से इस बुद्धि का स्वरूप समझ में आ जायगा।

दूसरी वैनयिकी बुद्धि है, जो गुरुजनों की विनय भक्ति करने से उत्पन्न होती है। इसका स्वरूप बतलाने के लिए भी अनेक उदाहरण दिये गये हैं। उनमे से एक यहां दिया जाता है:—

एक विद्वान् के पास दो शिष्य निमित्तशास्त्र पढ़ते थे। उनमें एक बहुत विनीत था। वह गुरू की सेवाभक्ति किया करता था। और हृदय से गुरु की आज्ञा का पालन करता था। दूसरा अविनीत था। वह कभी गुरुजी की आज्ञा की परवाह नहीं करता था। नतीजा यह हुआ कि पहला विद्या में पारंगत हो गया और दूसरा ठोठ ही रह गया।

एक बार गुरु की आज्ञा से दोनों शिष्य पास के किसी गांव को चले। रास्ते में उन्हें किसी जानवर के बड़े-बड़े पैरों के निशान दिखाई दिये। विनीत शिष्य ने पूछा—बताओ यह निशान किसके हैं? तब अविनीत बोला—वाह रे बुद्धू इसमें पूछने की बात ही क्या है! साफ मालूम हो रहा है कि यह हाथी के पैरों के निशान हैं! विनीत ने कहा—ऐसा न कहो। यह निशान हाथी के नहीं, हथिनी के पैरों के हैं। वह हथिनी भी बांई आंख से कानी है। उसपर कोई रानी सवार है। रानी सुहागिन है और शीघ्र ही वह सन्तान का प्रसव करने वाली है।

यह सब ब्यौरा सुनकर अविनीत ने कहा—यह सब कैसे समझ लिया आपने? मेरे सामने ही गप्पें हांकने लगे?

विनीत ने कहा—मेरे कहे पर तुम्हें विश्वास नहीं आता तो रहने दो। आगे चलकर मेरी बात सही साबित हो जायगी।

दोनों आगे बढ़े और उसी गांव में पहुँचे, जहां वे जाना चाहते थे। वहां उन्होंने तालाब के किनारे रानी को देखा और बांई आंख से कानी हथिनी को भी देखा। उन्हें यह भी पता चल गया कि रानी ने कुमार का प्रसव किया है। तब विनीत

शिष्य ने अपने साथी से कहा–बोलो मेरी बात सच्ची है या नहीं दूसरे ने उसके कथन की सत्यता स्वीकार की।

इसके बाद दोनों तालाब में हाथ पैर धोकर विश्राम करने लगे। वहां एक बुढिया पानी भरने आई थी। उसका लड़का परदेश गया हुआ था। बुढिया ने दोनों के चेहरे की तरफ देखा और सोचा—यह दोनों पण्डित जान पड़ते हैं। इनसे क्यों न पूछ देखूं कि मेरा लड़का कब परदेश से लौटेगा ?

बुढिया यह प्रश्न कर रही थी कि उसी समय उसके सिर से पानी का घड़ा जमीन पर गिर पड़ा। घड़े के सैकड़ों टुकड़े हो गये। यह देखकर अविनीत ने बुढिया से कहा—मांजी, जो हालत इस घडे की हुई है, वही हालत तुम्हारे लड़के की हुई है। अब वह तुम्हें कहा मिलेगा ?

विनीत ने तत्काल प्रतिवाद करते हुए कहा – मित्र ! ऐसा न कहो। इस मांजी का लड़का तो इसके घर आ पहुँचा है। जाओ मां जी, घर जाकर अपने बेटे का मुँह देखो।

वृद्धा विनीत को सौ-सौ आशीष देती हुई जल्दी-जल्दी घर की तरफ दौड़ी। सचमुच उसका लड़का घर पर आ पहुँचा था। वृद्धा ने दोनों की बात अपने बेटे से कही। वह उसी समय वस्त्र और कुछ रुपये लेकर चला और विनीत को भेंट कर उसका बड़ा आदर किया।

अविनीत अपने मन में बहुत खिन्न हुआ। उसने सोचा–मुझे गुरुजी ने अच्छी तरह नहीं पढ़ाया है और इसे अच्छी

तरह पढाया है ! नहीं तो क्या कारण है कि जो बात यह जान लेता है, उसे मैं नही जान पाता !

गुरुजी का काम समाप्त करके दोनों वापिस लौटे । विनीत ने अत्यन्त आदर के साथ गुरुजी के चरणों में झुक कर नमस्कार किया । अविनीत खम्भे की भांति सीधा खड़ा रहा । गुरुजी उसका व्यवहार देख कर चकित रह गये । उन्होंने पूछा—क्यों रे पैर क्यों नहीं छूता है ? तब वह गुस्से से जलता हुआ बोला—जिसे आपने अच्छी तरह पढ़ाया है, वही आपके पैर छुएगा । मैं क्यों पैरों में पड़ूं ?

गुरुजी ने कहा—तुझे अच्छी तरह नहीं पढ़ाया मैंने ? कैसे समझा तू ? तब उसने पिछला सारा वृत्तान्त सुनाया । कहा- इसकी सब बातें सच्ची और मेरी सब बातें झूठी निकलती हैं । आप एक-सा पढाते तो यह अन्तर क्यों पड़ता ?

तब गुरुजी ने अपने विनीत शिष्य से पूछा—वत्स, बताओ, तुमने वह सब बातें किस प्रकार जानी ?

विनीत शिष्य ने कहा—गुरुदेव, आपके चरणकमलों की कृपा से मैंने सोचना आरम्भ किया । हाथी-जाति के पैर तो साफ मालूम होते ही थे; मैंने उसमें भी हाथी या हथिनी का विचार किया । उसके पेशाब के निशान देखे तो पता चला कि वह हाथी नहीं, हथिनी होनी चाहिए । फिर मैंने देखा कि रास्ते के दोनों ओर बेलें खड़ी हैं, मगर दाहिनी ओर की बेलें उखडी हुई और अधखाई हुई हैं । बाईं तरफ की ज्यों की त्यों खडी हैं । इससे अनुमान लगाया कि हथिनी बाईं आंख से कानी होनी

चाहिए। फिर सोचा-हथिनी पर सवार होकर इतने लवाजमे के साथ जाने वाला कोई राजपुरुष ही हो सकता है, साधारण आदमी नहीं। फिर और-और निशान देखकर मैंने यह समझ लिया कि वह रानी है, सुहागिन है और आसन्नप्रसवा है।

बुढ़िया के प्रश्न करने पर मैंने विचार किया—जैसे घट मिट्टी से उत्पन्न हुआ है और मिट्टी में ही मिल गया, इसी प्रकार पुत्र भी अपनी माता से मिल गया है, अर्थात् घर आ पहुंचा है।

विनीत का स्पष्टीकरण सुन कर गुरु को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने अविनीत शिष्य से कहा—वत्स, यह तेरा ही दोष है जो तू विचार नहीं करता। इसमें मेरा क्या अपराध है? शास्त्र का अर्थ बताना मेरा काम है, उस पर लम्बा और गहरा विचार करना तुम्हारा काम है, मेरा नहीं।

यहां विनीत शिष्य की जो बुद्धि है, वह वैनयिक बुद्धि है, क्यों कि वह गुरुजी का विनय करने से उत्पन्न हुई है।

तीसरी बुद्धि कार्मिकी है। काम करते-करते जो बुद्धि विकसित होती है, वह कार्मिकी बुद्धि कहलाती है किसी भी विषय का ग्रथों के सहारे अध्ययन करना और बात है तथा अभ्यास करते-करते उस विषय का ज्ञान हो जाना और बात है। कई लोग कृषि का विपय लेकर बी ए परीक्षा पास करते हैं। उन्हें बी. ए-जी. की डिग्री मिलती है। मगर गांव में रहकर खेती का काम करने वाला किसान, जो अपना नाम भी लिखना नहीं जानता, जिसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है, वह उस डिग्रीधारी की अपेक्षा खेती के विषय में अधिक जानकारी रखता

है। प्राचीनकाल में जो शिक्षा दी जाती थी, उसमें प्रयोग अर्थात् अभ्यास का भी अनिवार्य स्थान था। इसी कारण पहले के शिक्षित लोग सभी कलाओं में कुशल होते थे। खास तौर से कला ऐसा विषय है जो अभ्यास के बिना आ ही नहीं सकता। आज की शिक्षा में अभ्यास को वैसा स्थान न होने से वह पोच होती है। अस्तु

तात्पर्य यह है कि अभ्यास करते-करते उत्पन्न होने वाली बुद्धि कार्मिकी कहलाती है। इसके लिए एक आधुनिक उदाहरण लीजिए —

मेवाड़ के स्वर्गीय महाराणा फतहसिंहजी पढ़े-लिखे ज्यादा नहीं थे, लेकिन कार्य करते-करते उनकी बुद्धि इतनी विकसित हो गई थी कि बड़े-बड़े एम ए. और एल-एल बी भी उनके सामने पानी भरते थे। मेवाड़ में एक पुराना कस्बा है-मांडल। एक बार वहां का तालाब टूट गया। तालाब के टूटने से रेल्वे-लाइन और खंभे पानी में बह गये। रेल्वे कंपनी के अधिकारियों ने मेवाड़ सरकार को लिखा कि आपका तालाब टूटने से कंपनी को इतना नुकसान पहुँचा है। यह हर्जाना कंपनी को मिलना चाहिए। महाराणा के सब ऊँचे-ऊँचे पदाधिकारियों को इस संबध में विचार करने का समय दिया गया। लेकिन सब ने कहा—हर्जाना तो देना ही पड़ेगा! आखिर गोरी चमड़ी वालों का लिहाज तो रखना ही पडता है। मगर महाराणा साहब प्रथम तो काफी निर्भीक थे और फिर बड़े बुद्धिशाली भी थे। अपने अधिकारियों की सलाह के बावजूद उन्होंने एक बड़ा ही सुन्दर और सबल तर्क खोज निकाला। महाराणा बोले—कंपनी को

लिख दो कि तालाब पहले बना था या रेलवे-लाइन पहले बनी थी ? अगर रेलवे लाइन पहले बनी हो तो हम हर्जाना देने को तैयार हैं। अगर हमारा तालाब पहले का है तो आपकी अक्ल कहां गई थी जो ऐसी जगह लाइन डाली ? आखिर कंपनी को चुप रह जाना पड़ा।

इस तरह की काम करते-करते उपजने वाली बुद्धि कम्मिया या कर्मजा या कार्मिकी बुद्धि कहलाती है। शास्त्र में भी इस बुद्धि के कई दृष्टान्त हैं।

किसी चोर ने किसी वैश्य के घर में, रात्रि के समय कमल के आकार की बड़ी ही सुन्दर सेंध लगाई। प्रातःकाल वह चोर वहां आकर अपनी सेंध को लोगों द्वारा की जाने वाली प्रशंसा को सुनने लगा। वहां जो बहुत से लोग मौजूद थे, उनमें एक किसान भी था। सेंध की प्रशंसा सुन कर किसान ने कहा—सीखे हुए आदमी के लिए कठिन क्या है ? जो आदमी जिस काम को सदा किया करता है, वह उसमें कुशल हो ही जाता है। इसमें बड़ाई या आश्चर्य की बात ही कौन-सी है ?

चोर किसान की बात सुन कर बहुत कुपित हुआ। उसने किसी से पूछ लिया—यह कौन है और कहा रहता है ? इस प्रकार किसान का परिचय पूछ कर वह दूसरे दिन हाथ में छुरी लेकर किसान के खेत पर पहुंचा। बोला-क्यों बे, तूने उस समय मेरी लगाई सेंध की तारीफ क्यों नहीं की थी ? अब मैं तेरी जान लेता हूं।

किसान भीरु नहीं था। उसने दृढ़ता के साथ कहा—मैं ने उस समय जो कुछ भी कहा था, बावन तोला पाव रत्ती सच ही

कहा था। जो आदमी हमेशा जिस काम का अभ्यास किया करता है, वह उस विषय में तरक्की कर लेता है। इस सचाई का उदाहरण मैं स्वयं हूँ। देखो, मेरी मुट्ठी में यह मूंग के दाने हैं। कहो तो इन्हें खेत में इस तरह फेंकूं कि सब के सब औंधे मुंह गिरें—सब का मुख नीचे की ओर हो; कहो तो ऐसे फेंकूं कि सब का मुंह ऊपर की तरफ हो और कहो तो इस तरकीब से फेंकूं कि सब का मुंह बगल में हो!

किसान की बात सुन कर चोर चकित रह गया। उसने कहा—अच्छी बात है, इन्हें ऐसे फेंक कि सब के सब औंधे मुंह गिरें।

बस, फिर क्या था। जमीन पर कपड़ा बिछा दिया गया। किसान ने ऐसी चतुराई से मूंग के दाने फेंके कि सब औंधे मुंह गिरे। यह देख कर चोर को बड़ा विस्मय हुआ। उसने मुक्त कंठ से किसान की तारीफ की। कहा—अगर तुमने यह चतुराई न दिखलाई होती तो अवश्य ही मैं तुम्हारी जान ले लेता।

यहां चोर और किसान दोनों की कर्मजा बुद्धि समझनी चाहिए।

चौथी बुद्धि पारिणामिक है। इसका लक्षण इस प्रकार है—

अणुमाणहेउदिट्ठंतसाहिआ वयविवागपरिणामा।
हिअ-निस्सेअसफलवई, बुद्धी परिणामिआ नाम॥

—श्रीनन्दीसूत्र।

अर्थात्—जो बुद्धि अनुमान, हेतु और दृष्टान्त के द्वारा अपने साध्य को सिद्ध करती है; उम्र के पकने से जिसका परिपाक

होता है और हित एवं मोक्ष रूप फल को जो उत्पन्न करती है, वह पारिणामिकी बुद्धि कहलाती है।

उस बुद्धि को समझाने के लिए भी शास्त्रों में बहुत-से उदाहरणों की भी योजना की गई है। विस्तारभय से यहां सिर्फ एक उदाहरण कहता हूं।

एक राजा था। उसे तरुण लोगों ने अपने चक्कर में फँसाने के लिए बहकाना शुरु किया। कहा—महाराजा साहब, आप स्वय बुद्धिमान हैं, फिर भी आप तरुणों को ही अपने पास रखा कीजिए। बुड्ढों की तो अक्ल सठिया जाती है। उन्हें पास रखने से क्या फायदा?

राजा चतुर था। उसने परीक्षा करने के अभिप्राय से उन तरुणों से प्रश्न किया—अच्छा बतलाओ, अगर कोई मेरे सिर में लात मारे तो उसे क्या दण्ड मिलना चाहिए?

तरुण बिना ही सोचे-समझे चट बोले—तिल के बराबर-बराबर टुकड़े करके उसे मार डालना चाहिये।

राजा ने यही प्रश्न बुड्ढों से किया। उन्होंने कहा—देव, सोच समझ कर इस प्रश्न का उत्तर देंगे। इसके बाद वे एकान्त मे गये। वहां जाकर उन्होंने विचार किया—महाराजा की हृदयेश्वरी महारानी के सिवाय किसकी हिम्मत हो सकती है जो महाराजा के सिर में लात लगा सके? और हृदयेश्वरी तो विशेष सम्माननीय होती है।

इस प्रकार सोचकर सब बूढे राजा के पास आये। उन्होंने कहा—देव, आपके प्रश्न का उत्तर यह है कि उसका और अधिक सत्कार करना चाहिए।

वृद्धों के इस निर्णय से राजा को बहुत सन्तोष हुआ। उसने बुड्ढों की पकी हुई बुद्धि की प्रशंसा की और कहा—वृद्धों के सिवाय और किसमे ऐसी दूरदर्शिनी बुद्धि हो सकती है ? राजा ने तरुणों के बदले, बूढों को ही अपना सलाहकार बनाया।

इस दृष्टान्त में राजा और वृद्ध पुरुषों की पारिणामिक बुद्धि है।

भाइयो ! पांच ज्ञानों में से यह मतिज्ञान का ही वर्णन आपके सामने किया जा रहा है। शास्त्रों में पांच ज्ञानों का बड़ा विस्तार है। एक व्याख्यान में एक ज्ञान का भी पूरा वर्णन नहीं हो सकता। मतिज्ञान का विषय बहुत व्यापक है। अतएव सक्षेप में ही कहता हूं।

आपने सुना होगा कि कई लोगों को अपने पूर्वजन्म की बातों का स्मरण हो जाता है। हम विचरते-विचरते एक बार जमना पार गये। वहां कांधला एक अच्छा कस्बा है। कांधला में एक वकील व्याख्यान सुनने को आये। व्याख्यान समाप्त हो जाने के बाद उन वकील ने और उनके बच्चे ने नमस्कार किया। बातचीत आरम्भ हुई। वकील ने बतलाया कि जब यह बालक ५–६ वर्ष का था तो एक दम रोने लगा और किसी तरह भी नहीं माना। वह एकदम उठ कर भागा और पुल पर होकर जाने

लगा। मैंने पीछे दौड़कर इसे पकड़ लिया। तब वह बोला—मैं अपने घर जाता हूं। मेरा घर यह नहीं है। मेरा घर तो उस .. गांव में है। मैं अग्रवाल वैश्य हूं। मेरे घर गायें हैं भैसें हैं।

मैं इस बालक को किसी प्रकार घर ले आया। बालक की बतलाई हुई बातें मैंने सब लिख ली थी। उसकी जांच करवाई तो पता चला कि बालक ने जो कुछ भी कहा, वह सब सत्य था।

बालक की पूर्व जन्म की औरत आई। उसने दो चार बातें पूछीं तो वे सब सच्ची निकली। इससे उस औरत को भी विश्वास हो गया। औरत ने मुझसे बालक मांगाकर ले लेना चाहा। पर मैं उसकी मांग को कैसे स्वीकार कर सकता था? आखिर उसने इसके लिए दूध पीने को एक भैंस भेज दी। भैंस मैंने स्वीकार कर ली।

भाइयों! यह भी मतिज्ञान है। पहले पहल मतिज्ञान के जो चार भेद बतलाये गये हैं, उसमें से यह ज्ञान धारणा से अन्तर्गत है। एक बार किसी विषय को अगर भलीभांति धारण कर लिया जाय और मतिज्ञानवरण का क्षयोपशम अगर उत्कृष्ट हो तो एक, दो, चार ही नहीं, ९०० जन्मों की बात भी स्मरण हो आती है।

सामान्य रूप से मतिज्ञान सभी संसारी जीवों को होता है एकेन्द्रिय से लेकर पंचेंद्रिय तक कोई भी जीव ऐसा नहीं, जिसे मतिज्ञान न हो। मनन, चिन्तन, स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, अनुमान, उपमान आदि मतिज्ञान में ही गर्भित होते हैं।

अब दूसरे श्रुतज्ञान की बात लीजिए। मान लीजिए कि आपने किसी शब्द को कानों से सुना। सुनकर आपको उस शब्द का ज्ञान हुआ। यह ज्ञान मतिज्ञान कहलाया। इसके बाद आपको उस शब्द के अर्थ का बोध हुआ। वह अर्थ का बोध श्रुतज्ञान कहलाता है। सरल शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि शब्द सुनने से जो ज्ञान होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। यह श्रुतज्ञान भी आंशिक रूप से एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी प्राणियों को होता है। शास्त्रों में इसका भी बड़े विस्तार के साथ विवेचन है।

श्रुतज्ञान के मूल में दो भेद हैं—अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा उपदिष्ट और गणधरों द्वारा ग्रथित आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, उपासकदशांग, ज्ञातृधर्मकथांग आदि बारह शास्त्र—जिन्हें अङ्ग भी कहते हैं, अङ्गप्रविष्ट कहलाते हैं। इन अङ्गों से अतिरिक्त दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, प्रज्ञापना, नन्दी आदि-आदि विशिष्ट आचार्यों द्वारा, अङ्गों के आधार पर रचे गये शास्त्र अङ्गबाह्य कहलाते हैं।

सर्वज्ञ और वीतराग तीर्थङ्कर भगवान् का कथन स्वतः प्रमाणभूत है और उनके कहे हुए होने से बारह अङ्ग भी प्रमाणभूत है। मगर अङ्गबाह्यश्रुत की प्रमाणता का निश्चय करना कठिन हो जाता है। आचार्यों की कृतियां अनेक हैं और कहीं-कहीं वे परस्पर विरोधी भी हैं। ऐसी स्थिति में किसे प्रमाण मानें और किसे अप्रमाण करार दे दें? इस प्रश्न का समाधान यही है कि जो अंगबाह्य श्रुत, द्वादशांगी से विरुद्ध न हो उसे ही अङ्गबाह्य श्रुत के रूप में प्रमाण मानना चाहिए। बारह अंग सूत्र रूप हैं

और उनमें संक्षेप में ही तत्वों का निरूपण पाया जाता है। उसके आधार पर बाद के बुद्धिशाली आचार्यों ने विस्तार के साथ कई विषयों में तत्व की विवेचना की है। यहां तक कि एक एक विषय पर बड़े-बड़े ग्रन्थ रच डाले हैं। उन्हें अप्रमाणिक नहीं कह सकते, क्योंकि वे सूत्र ग्रन्थों से विरुद्ध नहीं हैं। हां, अगर कोई विवेचना मूल शास्त्रों के विरुद्ध हो तो वह प्रमाण नहीं, अप्रमाण ही समझना चाहिए।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान—दोनों परोक्ष कहलाते हैं; क्योंकि यह इन्द्रियों और मन की सहायता से उत्पन्न होते हैं। आगे के तीन ज्ञान, अर्थात् अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष में गिने जाते हैं। यह न इन्द्रियों की सहायता से ही अपने विषय को जानते हैं और न मन की ही सहायता लेते हैं। यह लोकोत्तर ज्ञान हैं। सीधे आत्मा से ही होते हैं।

अवधिज्ञान अमुक दूरी तक के और अमुक समय तक के रूपी पदार्थों को इन्द्रिय-मन की सहायता के बिना ही जानता है। इसके दो भेद हैं:-भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय। भवप्रत्यय अवधिज्ञान समस्त देवों, समस्त नारकों और तीर्थङ्करों को होता है। गुणप्रत्यय अवधिज्ञान किसी-किसी मनुष्य को और किसी-किसी तिर्यंच को हो जाता है। अवधिज्ञान के छह भेद भी शास्त्रों में बतलाये गये हैं। परन्तु उनका विवेचन करने का समय नहीं है।

चौथा ज्ञान मनःपर्याय है। यह बड़े-बड़े ऋद्धिधारक और उत्कृष्ट चारित्र वाले मुनीश्वरों को ही होता है। इसके द्वारा दूसरे के मन की बात जानी जा सकती है। यह ज्ञान भी दो प्रकार का है—ऋजुमति और विपुलमति। दूसरे के मन की साधारण-सरल

वात को जानने वाला ऋजुमति ज्ञान कहलाता है और बांकी टेढ़ी वात को भी जान लेने वाला विपुलमतिज्ञान कहलाता है। विपुलमति मनःपर्यायज्ञान उत्पन्न हो जाय तो उसी भव में केवल ज्ञान की प्राप्ति अवश्य होती है। केवलज्ञान उत्पन्न होने से पहले विपुलमति जाता ही नहीं है।

जब संसार की कोई भी वात छिपी न रह जाय तो केवलज्ञान होता है। केवलज्ञान के आड़े कोई भी पर्दा नहीं रह जाता अथवा यों कहना चाहिए कि जब आत्मा के ज्ञान गुण के ऊपर पड़े हुए सब पर्दे अलग हट जाते हैं, केवलज्ञान उत्पन्न होता है। कोई भी पर्दा शेष न रह जाने के कारण केवलज्ञान परिपूर्ण ज्ञान होता है। ऐसा कोई द्रव्य नहीं पर्याय नहीं या गुण नहीं है जो केवलज्ञान के द्वारा जाना न जाय। तीन काल और तीन लोक में जितने भी पदार्थ थे, है या होंगे, उन सब को केवलज्ञान, एक साथ पूर्ण रूप से जानता है।

केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर आत्मा सर्वज्ञ–सर्वदर्शी हो जाता है। 'सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्ना' अर्थात् जैसे हाथी के पैर में सभी पैर समा जाते हैं, उसी प्रकार सभी ज्ञान इस ज्ञान में समा जाते हैं। इसीलिए केवली मे मतिज्ञान आदि चार ज्ञानों का अस्तित्व नहीं रह जाता है। केवलज्ञान होने पर ही मुक्ति होती है, और जिसे केवलज्ञान नहीं होता उसे मुक्ति भी प्राप्त नहीं हो सकती।

ज्ञानी जनों ने ज्ञान की वड़ी महिमा वतलाई है। सच पूछिए तो आत्मा का जो उत्थान या विकास होता है, उसका प्रारंभ ज्ञान से ही होता है। 'पढ़म नाणं तओ दया' यह आगम

का विधान है। अर्थात् सब से पहले ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ज्ञान के अभाव में दया का अथवा चारित्र का ठीक तरह पालन नहीं हो सकता। जो जीव ज्ञान के अभाव में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, बंध, निर्जरा और मोक्ष के वास्तविक स्वरूप को ही नहीं समझेगा, वह कर्मबंध के कारणों से कैसे बचेगा? आस्रव से कैसे दूर रह सकेगा? संवर और निर्जरा की क्रिया किस प्रकार कर सकेगा? और फिर इनके फलस्वरूप मोक्ष को भी कैसे प्राप्त कर सकेगा? अज्ञानी जीव संयम का पालन नहीं कर सकता। संयम का पालन करने के लिए जीव हिंसा से बचना पहली शर्त है। अज्ञानी जीव जीव को अजीव और अजीव को जीव समझता है। ऐसी स्थिति में वह जीवहिंसा से नहीं बच सकता और संयम का भलीभांति पालन भी नहीं कर सकता।

अज्ञानी जीव दया का स्वरूप नहीं समझते। ज्ञानी समझते हैं कि कोई जीव अपने पूर्वकृत कर्मों के उदय से दुःख पा रहा है, मगर मेरा फर्ज उसे सुख पहुँचाने का है।

कई लोग कहा करते हैं कि अगर हम सांप, बिच्छू, शेर बाघ आदि विषैले और हिंसक जीवों को मार डाले तो क्या हर्ज है? वे दूसरे जीवों को मारते हैं, अतएव उन्हें मार देने से हिंसा रुक जायगी। परन्तु यह विचारधारा अत्यन्त भ्रमपूर्ण है और उलटी है। ऐसे लोगों से पूछना चाहिए कि दूसरे प्राणियों को मार डालने के कारण अगर सिंह आदि मार डालने योग्य हैं तो सिंह आदि को मार डालने के कारण मनुष्य भी मार डालने योग्य क्यों नहीं साबित हो जायगा? इस प्रश्न का वे क्या उत्तर देंगे?

भाइयो ! इस तरह हिंसा पर उतारू हो जाने से अनवस्था हो जायगी। चूहों को मार डालने के कारण बिल्ली मार डालने योग्य होगी; बिल्ली को मारने के कारण कुत्ता मार डालने लायक साबित होगा, कुत्ते को मार डालने से भेड़िया मार डालने योग्य सिद्ध होगा और भेड़िये को भी मारने के कारण सिंह मार देने योग्य हो जायगा। सिंह को मार डालने की वजह से मनुष्य हिंसा का पात्र बन जायगा। मतलब यह है कि अगर आपने हिंसा को योग्य मानना शुरु कर दिया तो कहीं ठहरने का ठिकाना ही नहीं रह जायगा।

अतएव इस प्रकार की विचारधारा अज्ञान का ही फल है। अज्ञान के कारण ही ऐसे-ऐसे अनेक विचार दुनियां में फैलते हैं। इनका निवारण करने के लिए सम्यग्ज्ञान का प्रचार करने की बहुत आवश्यकता है।

भगवान् ने ज्ञान का महत्व बतलाते हुए कहा है—

जहा सुई ससुत्ता, पडिया वि ण विणस्सइ।
तहा जीवो ससुत्तो, संसारे वि ण विणस्सइ ॥

सुई छोटी-सी चीज है। अगर वह हाथ में से खिसक जाय तो उसका मिलना कठिन हो जाता है। अगर उसमें दो हाथ का धागा लगा हो—वह सूत्र सहित हो तो वह गुम कर भी झट मिल जाती है। इसी प्रकार ससूत्र जीव अर्थात् श्रुतज्ञानी आत्मा संसार मे रहता हुआ भी लुप्त नहीं होता।

भाइयो ! आत्मा मे ज्ञान होगा तो चौरासी में गोते नहीं

खाओगे और जल्दी तिर जाओगे। ज्ञान ही आत्मा के लिए हितकारी है।

ज्ञानों का विवेचन और ज्ञान का महत्व दिखलाने के बाद भगवान् (निर्ग्रन्थ प्रवचन में) फर्माते हैं कि ज्ञान के साथ चारित्र का होना भी आवश्यक है। कहा भी है—

भणियां भव सुधरे नहीं, जो नहिं आतमलक्ष।
सीधी चित्री शिलीका, दोनों डुबन्त पक्ष ॥१॥

अगर आत्मा की ओर लक्ष्य नहीं गया तो पढ़ने से भी क्या लाभ होने वाला है? पोथे के पोथे कंठस्थ कर लिए मगर आचरण कुछ भी नहीं सुधारा, यानी ब्रांडी आई तो गटागट, मांस आया तो हड़प और अडे आये तो चूस गये, तो वह ज्ञान निरर्थक है। कोई कितनी ही भाषाओं का जानकार हो और कई किस्म की लिपियां जानता हो, किन्तु अगर बुरे कामों से वह नहीं बचता तो उसका त्राण होने वाला नहीं है। जब वह मरेगा तो उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाएँ उसके साथ जाने वाली नहीं है। परलोक में इनसे सुख नहीं मिल जायगा। ज्यादा पढ़ जाओगे तो कदाचित् अच्छा भोजन मिल जायगा, कुर्सी पर बैठ जाओगे, मगर मरे बाद कोई पूछने वाला नहीं है। पूछ उसी की होगी जिसने भला काम किया होगा। उसके लिए आगे भी सिंहासन तैयार मिलेगा।

आगे बतलाया गया है कि ज्ञानी का लक्षण क्या है? सच्चा ज्ञानी वह है जिसने दुनिया से अपनी ममता हटा ली है, जो अभिमान नहीं करता और संसार संबंधी संसर्गों से बचते रहने

की कोशिश करता रहता है। जिसे खाने को अच्छा मिले तो खुशी नहीं और खराब मिले तो नाराजी नहीं, सब पर जिसका समभाव है और जो सदैव आत्मा की ओर खयाल रखता है।

ज्ञानी पुरुष गरीब और अमीर के प्रति समान भाव से व्यवहार करता है। ऐसा नहीं कि—

माया से माया मिले, कर-कर लम्बा हाथ।
तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे बात॥

ज्ञानी अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या, त्याग और प्रत्याख्यान करता है वह अपनी शक्ति को छिपाने का प्रयास नहीं करता। इसके विपरीत अज्ञानी कदाचित् तपस्या करता भी है तो यही सोचता रहता है कि कब दिन उगे और भोजन पर हाथ साफ करूँ ? एक जगह की बात है। किसी आदमी को उसकी स्त्री ने उपवास करवाना चाहा। उसने अपने पड़ौसियों से कहा—आज इन्हें व्याख्यान में सबसे आगे बिठलाना और उपवास पचखा देना। ऐसा ही हुआ। वह व्याख्यान में गया, आगे की कतार में बैठा और लाज-शर्म के वश होकर उसने उपवास कर लिया। मध्याह्न में दो बजे वह लौटकर घर आया। अपनी स्त्री से कहा—आज उपवास कर ही लिया। किसी तरह दिन निकल गया। रात्रि के चौथे पहर में उठा तो पड़ौस के किसी बीमार ने हाय-हाय किया। वह सुनकर वह स्त्री से कहने लगा—देखो, एक उपवास करने वाला तो मर रहा है!

इसी बीच एक लड़की सासरे जाने लगी तो रोने लगी। उसका रोना सुनकर उसने अपनी स्त्री से फिर कहा—देख, एक उपवास करने वाला तो मर ही गया है !

इस तरह बड़ी कठिनाई से उसने रात्रि बिताई। सुबह होने पर जब वह पारणा कर चुका तब उसके जी में जी आया। बोला—अब मैं नहीं मरूंगा।

भाइयो ! अज्ञानियों के लिए एक उपवास भी बड़ा मुश्किल होता है। उपवास करना कोई छोटी चीज नहीं है। कहा है—

जीवन सफल बनाना हो तो तपस्या करो।
जप-तप के हित नर-तन पाया,
भूल से भोगों में ललचाया।
काम विजयी कहलाना हो तो तपस्या करो ॥१॥

हे भव्य जीव ! तुझे मनुष्य शरीर तप करने को मिला है। इसे सफल बनाना हो तो तपस्या कर। यह तन खाने पीने को नहीं मिला है। मगर तू इस बात को भूलकर भोग-विलास में ललचा गया है।

याद रखना, काम को वश में करने का सबसे अधिक कारगर और श्रेष्ठ उपाय तपस्या करना ही है। तपस्या किये बिना इन्द्रियों पर काबू नहीं पाया जा सकता और न मन को ही वश में किया जा सकता है। देखो.—

किसी सेठ के एक लड़का था। शादी होने के बाद वह मद्रास चला गया। उसकी पत्नी और बूढा बाप घर रह गये।

लड़के की स्त्री बुद्धिमती और संस्कारवाली थी। श्वसुर को भोजन कराने के बाद ही वह भोजन करती थी। इतना होने पर भी उसकी उम्र ने उसे बेकाबू कर दिया। काम-वासना का वेग बड़ा प्रबल होता है। इस स्त्री की बुद्धि बिगड़ गई। अतः उसने श्वशुर से कहला दिया-मुझसे घर का सारा काम नहीं होता है। किसी अवस्था वाले को रख दीजिये, जिससे मुझे सहायता मिल सके।

सेठ बहू का आशय समझ गया। उसने सोचा-मेरा भाग्य फूटना चाहता है! अब मेरी इज्जत कैसे आबाद रहेगी!

दूसरे दिन सेठ मुनि का उपदेश सुनने गया। वहां उसने उपवास कर लिया। घर कहला भेजा कि आज मैं भोजन नहीं करूँगा। बहू ने यह समाचार सुना तो उसने भी उपवास कर लिया। दूसरे दिन सेठ ने कहला दिया—आज मैं बेला करूँगा। बहू ने भी बेला कर लिया। तीसरे दिन सेठजी ने घर पर तेला करने का समाचार भेज दिया और बहू ने भी तेला कर लिया। तेला की तपस्या से शरीर मे निर्बलता आ गई और इन्द्रियां भी ठिकाने आ गई।

चौथे दिन प्रातःकाल सेठ ने कहलाया—आज मैं पारणा करूँगा। बहू ने अपनी पड़ोसिन को बुलवा कर पारणा बनवाया। पारणा तैयार हो गया तो सेठजी को बुलावा भेजा गया। लेकिन सेठजी ने कहा—एक नौकर रखना है। वह अभी आने वाला है। उसके आने पर पारणा करूँगा। बहू ने कहलाया—मुझे नौकर की आवश्यकता नहीं है। आप पारणा करने पधारिये।

तपस्या से होने वाली कर्मों की निर्जरा की बात को थोड़ी देर के लिए रहने भी दिया जाय और सिर्फ तात्कालिक तथा

प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले लाभों पर ही विचार किया जाय तो भी तपस्या का महत्त्व कुछ कम नहीं है। एक तेला करने से ही उस स्त्री की वुद्धि ठिकाने आ गई। अनशन तप से क्या क्या लाभ होते हैं और आरोग्य से भी उसका कितना घनिष्ठ संबंध है, इस विषय में फिर किसी दिन बतलाऊँगा। आज तो सिर्फ यही कहना है कि ज्ञानी जन ही तपस्या की उपयोगिता और महत्ता को समझते हैं। जो लोग वलवर्धक और उन्मादकारी भोजन करते हैं और कभी तपस्या नहीं करते, वे अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं कर सकते। कहा है—

> कंकर-पत्थर जो चुगें, उन्हें सतावे काम।
> सीरा-पूड़ी नित भखे, उनकी जाने राम॥

भाइयो! तपस्या की महिमा अपार है। कहा है—

> तप से कई लब्धि प्रगटावे, क्रोड़ों भव के पाप नशावे।
> संकट दूर भगाना हो तो तपस्या करो॥

तपस्या करने से वड़ी-वड़ी विलक्षण और आश्चर्यजनक लब्धियां प्रकट हो जाती हैं। अरे तपस्वी की हवा भी लग जाय तो कोढ़ियों का कोढ़ दूर हो जाते हैं तपस्या के प्रभाव से करोड़ जन्म के पाप भी नष्ट हो जाते हैं। घोर से घोर संकट भी सहज ही टल जाता है। जव जव काम पड़ा तो गांधीजी ने भी तपस्या की। प्रारंभ में तो सरकार ने उपेक्षा की, मगर तपस्या के प्रभाव को वह अन्त तक बर्दाश्त नहीं कर सकी। यह तपस्या

का प्रत्यक्ष प्रभाव है। जबर्दस्त सरकार को भी तपस्या ने पराजित कर दिया!

तपस्या से इन्द्रियों का दमन होता है और मन काबू में आ जाता है। इस स्थिति में ध्यान अच्छा, स्थिर और अखंड होता है। इस प्रकार तपस्या की महिमा का बखान कहां तक किया जाय?

दुष्कर कार्य सरल हो जावे, इन्द्रों का आसन हिल जावे।
तीर्थंकर पद पाना हो तो तपस्या करो।

भाइयो! तपस्या से मुश्किल से मुश्किल कार्य भी आसान हो जाता है, बड़े-बड़े देवताओं के आसन भी डिग जाते हैं। जब सीता को रावण अपनी अशोक वाटिका में ले गया तो उन्होंने अन्न-पानी का त्याग कर दिया था। इस तपस्या के प्रताप से २१ दिन बाद हनुमानजी पता लगाते-लगाते वहां जा पहुँचे। जब द्रौपदी को धातकीखंड में अपहरण करके ले जाया गया तो उसने वहां छह महीने की तपस्या की। तपस्या के प्रभाव से श्रीकृष्ण और पाण्डव वहां जा पहुँचे और उन्होंने द्रौपदी का उद्धार किया। तपस्या में लौकिक और लोकोत्तर दोनों प्रकार का फल प्रदान करने की प्रबल शक्ति है। लौकिक प्रयोजन के लिए की गई तपस्या लौकिक कार्य को सिद्ध करती है और लोकोत्तर-आध्यात्मिक प्रयोजन के लिए की जाने वाली तपस्या से लोकोत्तर प्रयोजन की सिद्धि होती है।

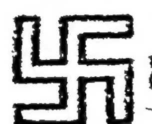
भगवान् महावीर जैसे लोकोत्तर पुरुषों ने भी छह-छह महीने की घोर तपस्या की थी। हमें उनकी जीवनी से शिक्षा ग्रहण

करनी चाहिए और अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या करनी चाहिए। मगर तपस्या करने से पहले सम्यग्ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। अज्ञान पूर्वक की जाने वाली तपस्या से मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

भाइयो ! ज्ञान का स्वरूप समझो और ज्ञान प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करो। ऐसा करने से आनन्द ही आनन्द होगा।

ता० १२-६-४८





पं० बालकृष्ण उपाध्याय के प्रबन्ध से—

श्री नारायण प्रिंटिंग प्रेस, ब्यावर में मुद्रित ।